''दूधनाथ सिंह की कहानियों का आलोचनात्मक विश्लेषण'

(एम० फिल० उपाधि के लिए प्रस्तुत लघु शोध -प्रबंध)

शोध-निर्देशक

प्रो० केदारनाथ सिंह

शोधकर्ता

शिवकुमार सिंह

भारतीय भाषा केन्द्र

भाषा संस्थान

जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय

नई दिल्ली-११००६७

१९९७

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
NEW DELHI - 110067

भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा संस्थान

दिनांक : 14 जुलाई 1997

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री शिवकुमार सिंह द्वारा प्रस्तुत 'धूमिल की कहानियों का आलोचनात्मक विश्लेषण' शीर्षक लघु शोध-प्रबन्ध में प्रयुक्त सामग्री का इस विश्वविद्यालय अथवा अन्य विश्वविद्यालय में इसके पूर्व किसी भी प्रदेय उपाधि के लिए उपयोग नहीं किया गया है। यह सर्वथा मौलिक है।

(प्रो० मैनेजर पाण्डेय)
अध्यक्ष
भारतीय भाषा केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110067

(प्रो० केदारनाथ सिंह)
निर्देशक
भारतीय भाषा केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110067

GRAM : JAYENU TEL. : 667676, 667557 TELEX : 031-73167 JNU IN

समर्पण

स्वर्गीय अनुज 'राजा भैया' को

विषय सूची

		पृष्ठ संख्या
1.	पीठिका	अ - ई
2.	प्रथम अध्याय दूधनाथ सिंह की कहानी विकास यात्रा	1 - 56
3.	द्वितीय अध्याय आधुनिक जीवन की विडम्बनाओं और विसंगतियों के कहानीकार :	57 - 77

(क) मोह भंग की स्थिति और अन्तर्मुखता का दबाव
(ख) वैयक्तिकता का उभार
(ग) सम्बन्धों में औपचारिकता और दिखावा
(घ) मूल्यहीनता का दावा
(ङ) संघर्षपूर्ण जटिल जीवन की अभिव्यक्ति
(च) सम्बन्धों में बिखराव
(छ) अलगावबोध और अजनबीपन
(ज) नयी परिस्थितियों में दाम्पत्य जीवन के बदलते स्वरूप
(झ) नये पुराने मूल्यों का संघर्ष और उभरती स्वार्थपरता
(ञ) झुकाव अस्तित्ववादी दर्शन की ओर
(ट) व्यर्थता और खालीपन
(ठ) अवसंगत की स्थिति
(ड) अन्तर्विरोध की पीड़ा
(ढ) नग्नता और अश्लीलता का खुला प्रदर्शन

(ण) भय और संत्रास

4. तृतीय अध्याय 78 - 113

कहानी कला

1. कथ्य दृष्टि

(क) वैयक्तिकता का आग्रह
(ख) नये बने रहने की कोशिश
(ग) मानवीय सहानुभूति का एक और रूप
(घ) स्वतंत्रता और मुक्ति का आग्रह
(ड) विशिष्ट बौद्धिकता की माँग
(च) मामूली ज़िंदगी के पात्र
(छ) संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व की प्रधानता
(ज) व्यक्तिगत अनुभूति पर जोर
(झ) बंधी-बंधाई विचार धारा से मुक्ति
(ञ) लीक से हटने का प्रयास
(ट) विशिष्ट लेखन शैली

2. शिल्प विधान

(क) नवीन सौन्दर्य-बोध और भाषिक संवेदना
(ख) व्यंग्य का एक और रूप
(ग) स्थिति के स्वाभाविक चित्रण के साथ सपाटबयानी
(घ) बिम्ब प्रयोग
(ड) प्रतीक विधान
(च) फंतासी
(छ) फ्लेश बैक तकनीक
(ज) चेतना प्रवाह शैली

5. चतुर्थ अध्याय 114 - 173

विश्लेषण की प्रक्रिया में प्रमुख कहानियाँ

(क) `रिक्त`

(ख) `रक्तपात`

(ग) `कोरस`

(घ) `स्वर्गवासी`

(ङ) `आश्चर्य`

(च) `प्रतिशोध`

(छ) `धर्मक्षेत्रे: कुरुक्षेत्रे`

6. साक्षात्कार 174 - 204

साठोत्तरी कहानियाँ ; कहानीकार दूधनाथ सिंह की दृष्टि में : कुछ प्रश्न और विचार

7. परिशिष्ट 205 - 207

(क) आलोच्य कहानी संग्रह

(ख) सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(ग) पत्रिकाएँ

पीठिका

कहानियों के निरंतर बदलते हुए स्वरूप के चलते, साथ ही जीवन की सचाइयों से अधिकाधिक रूबरू होने की क्षमता के विकास के साथ-साथ आज के युग में उनकी प्रासंगिकता अधिकाधिक बढ़ रही है। यही कारण है कि कहानियाँ शोध का विषय अधिक बनती जा रही हैं। वास्तव में जीवन की विसंगतियों, उसकी सुन्दरता और कुरूपता को प्रत्येक कोण से देखने और परखने की जितनी गुंजाइश कहानी विधा में है, उतनी अन्य विधाओं में नहीं, इसीलिए ये हमको भीतर तक छूती हैं। ये कहानियाँ प्राय: कहानीकार का भोगा हुआ सच होती हैं जिसमें मार्मिकता के साथ-साथ पीड़ा का भी पुट आ जाता है। 'नई कहानियाँ', खासकर साठोत्तरी कहानियों में यही सच हल्की कल्पना के साथ अभिव्यक्त होता है परन्तु जो हमें भीतर तक झकझोर देता है। दूधनाथ सिंह की कहानियाँ ऐसी ही हैं जो हमें जिंदगी के अनछुवे पहलुओं तक का भी सफर कराती हैं।

यद्यपि कहानियों में मेरी रुचि बचपन से ही थी ; मैं और मेरा छोटा भाई 'राजा भैया' (जो अब इस दुनिया में नहीं रहे) अक्सर गर्मी की छुट्टियों में पिता जी की चोरी छुपे ढेरों सारी कहानियों के बीच उलझे रहते थे, खास कर 'पाकेट बुक्स' और 'कॉमिक्स' में। इसके लिए हम दोनों कई बार प्रताड़ित भी हुए। परन्तु आगे चल कर इस बाल रुचि का एक नई दिशा में विकास हुआ। इसी बीच 'हंस' पत्रिका अगस्त 1995 अंक में दूधनाथ सिंह की कहानी 'धर्म क्षेत्रे : कुरुक्षेत्रे' पढ़ने को मिली। परिणामस्वरूप उसकी संवेदनशीलता, अनुभूति की सचाई और खास कर भाषिक बुनावट ने मुझे इतना अधिक प्रभावित किया कि मैंने उनकी कहानियों को शोध का विषय बनाने का निश्चय कर लिया, जिसका परिणाम आज यह लघु शोध-प्रबन्ध है।

प्रथम अध्याय में दूधनाथ सिंह की कहानी विकास यात्रा को उसकी खूबियों-कमियों और आने वाले बदलाव के साथ दिखाया गया है। इनकी बहुत अधिक कहानियों न होने के कारण दो-एक कहानी को छोड़कर लगभग सारी उपलब्ध कहानियों को हल्की परिचयात्मक समीक्षा के रूप में प्रस्तुत किया गया है जिसमें चारों संग्रहों के साथ-साथ पत्र-पत्रिकाओं में उपलब्ध होने वाली अन्य कहानियाँ भी सम्मिलित हैं। इस प्रयास में यह अध्याय कुछ ज्यादा लम्बा हो गया है।

द्वितीय अध्याय में दूधनाथ सिंह की उस विशेषता को मुख्य रूप से उभारा गया है जिसमें वे आधुनिक जीवन की विसंगतियों और विद्रूपताओं से रूबरू होने की कोशिश करते हुए अपनी लेखकीय ईमानदारी का पूरा-पूरा परिचय देते हैं। इसमें, विशेषकर मोहभंग सम्बन्धों में औपचारिकता, वैयक्तिकता, मूल्यहीनता, सम्बन्धों में बिखराव, अलगावबोध, अजनबीपन और नयी परिस्थितियों में दाम्पत्य जीवन के बदलते स्वरूप आदि की चर्चा उनकी कहानियों के सन्दर्भ में की गयी है।

तृतीय अध्याय में दूधनाथ सिंह की कहानी कला को विभिन्न बिंदुओं से देखने का प्रयास किया गया है जो उन्हें किसी एक खास समय-सीमा का कहानीकार न मानकर `नई कहानी` से लेकर आज तक आनेवाले बदलाव के हर स्तर को छूने वाले प्रतिभा का धनी कलाकार साबित करता है। साथ ही उनकी कुछ निजी विशेषताओं को भी उभारता है। इस अध्याय को अध्ययन की सुविधा के लिए `कथ्यदृष्टि` और `शिल्पविधान` दो भागों में बाँट कर लिखा गया है।

चतुर्थ अध्याय में दूधनाथ सिंह की प्रमुख सात कहानियों पर विस्तारपूर्वक विश्लेषणात्मक दृष्टि से समीक्षा की गयी है और उनमें

व्यक्त होने वाले कहानीकार के विचार और संकेतों को आज के परिप्रेक्ष्य में जोड़ कर प्रत्येक कोण से जाँचने-परखने का प्रयास किया गया है। जिसके चलते यह अध्याय भी आवश्यकता से अधिक लम्बा हो गया है। फिर भी मैंने अपनी तरफ से इसे काटने-पीटने की कोशिश नहीं की।

अंतिम अध्याय के रूप में दूधनाथ सिंह का 'साक्षात्कार' संलग्न है जिसमें साठोत्तरी कहानियों और खास कर कुछ उनकी कहानियों से संबंधित प्रश्नों पर कहानीकार का विचार विस्तारपूर्वक व्यक्त हुआ है। इस 'साक्षात्कार' का मैंने अपने शोध में आवश्यकतानुसार उपयोग किया है। कहीं-कहीं उद्धरण के रूप में और कहीं लेखक के विचारों से सहमति के कारण कुछ कहानियों के सन्दर्भ में मेरे और लेखक के विचारों का घाल-मेल हो गया है। ऐसा खासकर 'रीढ़' और 'कोरस' कहानी के सम्बन्ध में हुआ है।

लघु शोध-प्रबन्ध के अधिक लम्बे हो जाने और 'साक्षात्कार' के संलग्न होने के कारण अलग से मैंने 'उपसंहार' लिखने की आवश्यकता नहीं समझी। क्योंकि आवश्यक बातें जो होनी चाहिएं थी, वह सभी अध्यायों में पूर्व में ही कह दी गयी हैं। अतः पुनरुक्ति से बचने के लिए ऐसा किया गया।

'दूधनाथ सिंह की कहानियों का आलोचनात्मक विश्लेषण' विषय के चयन और आद्यन्त निर्देशन का कार्य प्रो० केदार नाथ सिंह ने किया जिनके हस्तक्षेप रहित प्रोत्साहन ने लघु शोध-प्रबन्ध की मौलिकता में विशेष योगदान दिया। शब्दों द्वारा प्रो० सिंह के प्रति आभार व्यक्त करना कठिन है परन्तु प्रचलित रीति के अनुसार उनके प्रति मैं दिल से कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। मैं अपने अग्रज उमेश राय के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने समय-समय पर मुझे इस कार्य के लिए उकसाया और सचेत किया। साथ ही मेरी हर तरह से

सहायता की । मैं `विजय भाई ` को भी कैसे भूल सकता हूँ ? जिन्होंने इलाहाबाद से कहानियाँ खोज-खोजकर भेजीं ।

इसके साथ ही मेरे अन्य घनिष्ठ मित्रों में `चन्द्रशेखर`, `फूलचन्द जी`, `नामदेव`, `कु० पूनम`, `दिलीप कुमार`, `परितोष कुमार मणि`, `वन्दना झा` और `लालचन्द` एवं `सुजीत` का विशेष सहयोग रहा जिन्होंने मुझे समय रहते लघु शोध-प्रबन्ध को पूरा करने के लिए बार-बार प्रोत्साहित किया । मैं नेमिचन्द जैन जी और उनके `नटरंग प्रतिष्ठान` के प्रति भी आभारी हूँ जहाँ से मुझे दुर्लभ शोध सामग्री प्राप्त हुई । इसके अतिरिक्त मेरे इलाहाबाद के मित्रों में `श्री नागेश ओझा` और `श्री भगवान दूबे` के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने मुझे जे० एन० यू० तक पहुँचाने में अहम भूमिका निभाई। साथ ही जीजा जी लक्ष्मण सिंह के प्रति मैं विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ जो मुझे समय-समय पर प्रोत्साहन देते रहे ।

अंत में मैं अपने दोनों बड़े भाइयों `कुँवर विष्णु सिंह` और `अजय कुमार सिंह`, पूज्य माता जी एवं पिता `सू० मे० रामबिहारी सिंह` का जीवन भर ऋणी रहने का व्रत लेता हूँ जो आज भी मेरी सुख-सुविधा और शिक्षा हेतु सभी तरह की कुर्बानी देने को तत्पर हैं ।

Shiv Singh 14-7-97

शिवकुमार सिंह

प्रथम अध्याय

दूधनाथ सिंह की कहानी विकास यात्रा

साठोत्तरी कहानी आन्दोलन को जिन कहानीकारों ने सर्वाधिक प्रभावित किया है, उनमें दूधनाथ सिंह का नाम भी बड़ी सशक्तता के साथ जुड़ा हुआ है। अपनी रचना के माध्यम से कहानी जगत में स्वयं की पैठ बनाने और स्थान निर्धारित करने में उनके कहानीकार व्यक्तित्व ने एक अच्छी भूमिका अदा की है। यद्यपि ये कहानी लेखन के क्षेत्र में सन् साठ के पहले ही प्रवेश कर चुके थे, परन्तु 'नई कहानी' की सीमा में पूरी तरह से न समा पाने की वजह से 'नई कहानीकारों' की भीड़ से ढकेल दिये गये, खास कर भैरव प्रसाद गुप्त के 'नई कहानी' आग्रह के चलते इन्हें अछूता ही रखा गया, इनकी कहानियां बार-बार लौटाई गयीं, परन्तु प्रतिभा को ज्यादा समय तक अनदेखा नहीं किया जा सकता, अतः भैरव प्रसाद गुप्त के सम्पादक पद से हटते ही 'नई कहानी' पत्रिका के माध्यम से ज्ञान रंजन, गिरिराज किशोर, दूधनाथ सिंह, काशीनाथ सिंह, गंगाप्रसाद विमल, आदि की कहानियां कहानी जगत में छा गयीं। इन सभी कहानीकारों ने 'नई कहानी' की बहुआयामी परंपरा का अत्यंत सूक्ष्मता एवं कलात्मकता के साथ विकास किया। यह बात उल्लेखनीय है कि साठोत्तरी कहानियों का यह अंतर केवल शिल्पगत और भावगत ही था, नई कहानियों की भांति यह कथ्य स्तर पर नहीं हो सका। इसीलिए यदि इस कथा-धारा को नई कहानी का विकास कहा जाए तो इसमें किसी आपत्ति की गुंजाइश कम ही है।

साठोत्तरी कहानीकारों में दूधनाथ सिंह ने यदि अपनी अलग पहचान बनायी तो यह उनका अपने समय की कथा-धारा को समझने की कोशिश और उसी स्तर पर सजाने-संवारने का प्रयास ही था। सन् साठ के पश्चात् संवेदनात्मक

स्तर पर जो बदलाव उभर रहे थे और जिस प्रक्रिया के दौर से कहानी गुजररही थी, उसका सीधा-सीधा असर आज के व्यक्तिगत सम्बन्धों पर पड़ना स्वाभाविक था ; फलत: इन सम्बन्धों के साथ-साथ जुड़े तमाम सवाल भी बदलते चले गए । इस दौर के कहानीकार कहानियों के माध्यम से इन सवालों से जाने-अनजाने जूझते दिखाई पड़ते हैं । सम्बन्धों में होने वाला यह अलगाव और टूटन आज अपने अतीत से अलग होने का संकेत है । दूधनाथ सिंह की कहानियां अपने सहज, स्वाभाविक और आकर्षक रूप से समाज की सचाई को गाढ़े अनुभव और पूर्ण विश्वास के साथ रेखांकित करने का काम करती हैं ।

दूधनाथ सिंह की पहली कहानी इलाहाबाद विश्वविद्यालय से निकलने वाली पत्रिका में `चौकोर छाया चित्र` के नाम से प्रकाशित हुई । इसके पश्चात् सन् 1959 ई० में डायरी शैली के अन्तर्गत `तुमने तो कुछ नहीं कहा` नाम से एक कहानी `धर्मयुग` पत्रिका में प्रकाशित हुई । अत: इन्हीं दोनों को इनकी प्रथम कहानी कह सकते हैं, जो कि अब उपलब्ध नहीं है । कुछ अन्य कहानियां `पहला कदम`, `दुर्गन्ध` और `एक दूसरे गांधी की हत्या` भी प्रकाश में आयी । `दुर्गन्ध` कहानी को भैरव प्रसाद गुप्त ने अपनी पत्रिका में निकाला था । अभी तक इनके मुख्य रूप से चार कहानी संग्रह प्रकाश में आए हैं। यद्यपि इन कहानी-संग्रहों के आवरण पृष्ठ पर `पहला कदम` और `एक दूसरे गांधी की हत्या` संग्रहों का भी नामोल्लेख मिलता है, परन्तु अभी वे प्रकाशित नहीं हो सके हैं । उम्मीद है दूधनाथ सिंह जी अपने इस प्रयास को भी सार्थकता प्रदान करेंगे । इनके चारों कहानी संग्रह इस प्रकार हैं --

1. `सपाट चेहरे वाला आदमी` (1967)
2. सुखान्त (1971 ई०)
3. माई का शोक गीत (1992 ई०)
4. प्रेम कथा का अंत न कोई (1992 ई०)

`सपाट चेहरे वाला आदमी` (1967 ई०)

यह दूधनाथ सिंह का पहला कहानी संग्रह है, इसमें लेखक की प्रारम्भिक दौर की कहानियां संकलित हैं, परन्तु कहानियों के पढने से ऐसा नहीं लगता कि यह लेखक का प्रारम्भिक प्रयास है क्योंकि विषय-वस्तु को जिस सजगता से परोसा गया है, उससे कथा संगठन में शिथिलता नहीं आने पायी। यह दूसरी बात है कि इस संग्रह की कुछ कहानियां पाठक से एक बार से अधिक पढने की मांग करती हैं, मुख्य रूप से `रीछ` और `कोरस` कहानी के साथ पाठक वर्ग ऐसा ही अनुभव करता है। पाठक इन दोनों कहानियों को एक दो बार पढ कर भी उस अंतिम मन्तव्य तक पहुंचने में अपने को असमर्थपाता है जिसको लेखक व्यक्त करना चाहता है। संग्रह की अधिकांश कहानियां `नैरेटर` की भूमिका से या यूं कहें, एकालाप की तरह लिखी गयी हैं। इन कहानियों ने परम्परागत पात्रों को नकारा है, उसकी जगह कहानी का प्रमुख पात्र `मैं` ही अधिकांश कहानियों का मुख्य वक्ता रहता है ; हम उसी के साथ-साथ उसके अतीत, वर्तमान और भविष्य में डुबकी लगाते हुए ढेर सारे पात्रों की स्थितियों और उनके मनो-जगत का परिचय प्राप्त करते हैं।

इस संग्रह की कहानियों में हमें केवल बौद्धिकता ही नहीं प्राप्त होती, बल्कि मानवीय सम्बन्धों और आज के मनुष्य के पीड़ित अन्तस्थल को अन्दर तक झकझोर देने वाली भावुकता के भी दर्शन होते हैं। ये कहानियां केवल शहरी परिवेश को ही नहीं उभारतीं, बल्कि इसमें शहर और ग्रामीण परिवेश का मिला-जुला स्वरूप आवश्यकतानुसार प्रस्तुत किया गया है, परन्तु इतना अवश्य है कि इनके पात्र अधिकांशत: मध्यवर्गीय व्यक्ति हैं जो प्राय: मूल्य-विघटन की स्थितियों में जीने को बाध्य हैं। ज्ञान रंजन से दूधनाथ सिंह की तुलना करते हुए नेमिचन्द्र जैन ने `सपाट चेहरे वाला आदमी` संग्रह की कुछ विशेषताओं को रेखांकित करने का प्रयास किया है --

`सपाट चेहरे वाला आदमी` में दूधनाथ सिंह की कहानियों की दुनिया अपने रूप-रंग और गुण में ज्ञानरंजन से बिलकुल अलग है। इन कहानियों के अनुभव की समेट बड़ी है और तीक्ष्णता भी। जहां ज्ञानरंजन की कहानियों का परिवेश केवल शहरी है, वहां दूधनाथ सिंह की कहानियों में शहर और देहात दोनों हैं। इसी प्रकार ज्ञानरंजन की बौद्धिक तटस्थता से भिन्न, दूधनाथ सिंह में परिचित मानवीय सम्बन्धों की इतनी तीखी पीड़ा भरी और झकझोर देनेवाली प्रस्तुति है कि पढ़ कर दहशत होती है।[1]`

इस प्रकार इस संग्रह की कहानियों में एक तरफ `रीछ` की तरह खूंखारपन और दहशत है तो दूसरी तरफ व्यक्ति की बेबस और सपाट ज़िंदगी की नीरसता है। इन दोनों का अद्भुत संयोग ही इस संग्रह की और खास कर दूधनाथ सिंह की विशेषता है। इस संग्रह में कुल आठ कहानियां, जो इस प्रकार हैं -`रीछ`, `दु:स्वप्न`, `सब ठीक हो जायेगा`, `प्रतिशोध`, `आइसवर्ग`, `कोरस`, `रक्तपात`, `सपाट चेहरे वाला आदमी`।

`रीछ`

`रीछ` दूधनाथसिंह की बहुचर्चित कहानी है। इसमें लेखक ने `रीछ` को इस रूप में प्रस्तुत किया है कि वह एक साथ प्रतीक और पात्र दोनों रूपों में दिखाई पड़ता है, इसलिए यह प्रतीक मूर्त और अमूर्त दोनों रूपों को साथ-साथ उभारता है। वास्तव में इस कहानी का जो नायक है, उसका एक अतीत है, उसका अतीत यह है कि वह विवाह से पूर्व किसी प्रेमिका से प्यार करता था, विवाह के बाद भी उस प्रेमिका के साथ बिताये गये क्षणों का अतीत उसका साथ नहीं छोड़ता है। वह लाख कोशिश करके भी उसे भुला नहीं पाता। उसका अतीत प्राय: उस समय हावी हो जाता है जबकि वह पत्नी के साथ बिस्तर में होता है। परिणाम-स्वरूप वह अपने वैवाहिक जीवन को नरक बनने से बचाने के लिए अपने अतीत को

अपनी पत्नी से छुपाता है। यही नायक द्वारा 'रीछ' को बेसमेंट में छुपाने का प्रयास है। वह अपने अतीत को जितना छुपाना चाहता है, वह उतना ही खूँखार होता जाता है। अंत में नायक पर उसका अतीत पूरी तरह से हावी हो जाता है और उसकी ज़िंदगी को तबाह कर देता है क्योंकि उसकी पत्नी को उसके पूर्व-प्रेम की शंका हो जाती है और वह पति से इस प्रकार के सवाल करती है --

'... हाँ-हाँ, मेरे तो छोटे-छोटे हैं ... ? उसके कितने बड़े थे। बीच में जगह थी या दोनों मिल गये थे। इसलिए तुम यहां नहीं घूमते। दोनों हाथों में क्या एक ही आता था ... ? इसलिए रेस्त्रा में उस औरत को देख रहे थे। सारी छाती ढंकी थी ... तुम क्या समझते हो बच्चू, तुम्हारी हर नजर मैं ताड़ लेती हूँ। क्यों, उसे देख कर किसी और की याद आ गयी क्या ? हाय, हाय, कितना दु:ख है बेचारे को ... च्च... च्च.... च्च....।'[2]

परन्तु अंत में वही हुआ जिसे छुपाने का बार-बार प्रयास नायक करता रहा। उसे पत्नी जान गयी, परिणामस्वरूप उसका वैवाहिक जीवन कटुता से भर जाता है, वह पत्नी का अविश्वास पात्र हो जाता है। यही रीछ द्वारा संपूर्ण घर को दुर्गन्ध से भर देना और नायक के मुख से बदबू का निकलना है। यह कहानी आज के युवक के वैवाहिक जीवन में उभरने वाली विसंगतियों को रेखांकित करती है। आज के युवक द्वारा न तो अपनी पत्नी और न ही प्रेमिका के प्रति वफादारी की विवशता और अन्तर्द्वन्द्व में पिसते रहने वाली नियति पर लेखक की तीव्र प्रतिक्रिया है जिसको लेखक ने रोचक ढंग से प्रस्तुत करने के लिए 'रीछ' के प्रतीक का रास्ता चुना और जिसमें वह काफी हद तक सफल भी रहा ; परन्तु कहानी में रोचकता के प्रयास के चलते जिस रहस्यमयता का आवरण ढंक दिया गया है, उस से पाठक को कहानी का वास्तविक अभिप्राय और प्रतीक की व्याख्या करने में कठिनाई का अनुभव होता है। परिणामस्वरूप यह कहानी बहुत अधिक आलोचना का शिकार हुई। फिर भी इन आरोपों, प्रत्यारोपों के बावजूद 'रीछ' कहानी दूधनाथ सिंह के कहानी विकास क्रम का एक सशक्त प्रयास है, जो काफी हद तक सफल रहा।

`दु:स्वप्न

यह कहानी पूरा का पूरा एकालाप है। कहानी का `मैं` नैरेटर` की भूमिका में है और वह यह कहानी शायद अपने सम्बन्धियों, खास कर स्त्री वर्ग को सुना रहा है। क्योंकि कहानी के अंत में स्त्री वाचक क्रिया का प्रयोग सम्बोधन के रूप में `नैरेटर` की भूमिका से किया गया है। कहानी में व्यक्ति के स्वार्थीपन को उभारने की कोशिश में लेखक ने आज के मनुष्य की मानसिक बुनावट को खोलने का भरसक प्रयास किया और उसे पाठक के सामने नंगा करके रख दिया। यह ऐसे व्यक्ति की सच्ची तस्वीर है जो अपने हित के बिना अन्य किसी व्यक्ति से बात करना तक पसन्द नहीं करता। कहानी के `मैं ` के पीछे एक व्यक्ति कई घण्टे से लगा है। `मैं ` किसी कपड़े की दूकान से कपड़ा खरीदना चाहता है। एक मारवाड़ी व्यक्ति जो जनसंघ का कार्यकर्ता है, उसके एक मित्र को `मेनिन्जाइटिस` का रोग हो गया है, पैसे के अभाव में वह अनेक व्यक्तियों के पास से निराश होकर अंत में कहानी के `मैं ` से दवा के लिए पैसे की उम्मीद लगाए सस्ता कपड़ा खरीदने में उसकी मदद करना चाहता है। परन्तु कहानी का `मैं ` इतना पूर्वाग्रह ग्रस्त है कि वह उसे एक दलाल समझता रहता है और निरंतर बेचैनी महसूस करता है। वह न तो खुलकर अपनी विवशता का बयान करता है और न ही उसका विरोध कर पाता है। वह निरन्तर कुढ़-कुढ़ कर रह जाता है, अजीब विवशता की स्थिति है। परन्तु वास्तविकता पता लगने पर `मैं ` को उस व्यक्ति से काफी सहानुभूति हो जाती है परन्तु तब तक बहुत देर हो चुकी होती है।

इन सारी परिस्थितियों में `मैं ` जो महसूस करता है, वह किसी `दु:स्वप्न` से कम कष्टदायक नहीं है, अन्त में सारा रहस्य खुलने के बाद कहानी के `मैं ` को उसी प्रकार शांति अनुभव होती है, जैसे कि भयानक स्वप्न से जगने के बाद।

आज मेनि-जाइटिस` का रोग केवल उस बंगाली व्यक्ति के मित्र को ही नहीं है, बल्कि संपूर्ण समाज उससे भी भयंकर रूप से इस रोग का शिकार है।

व्यक्ति अपने में इतना सिमट गया है कि उसे और कुछ देखने की फुर्सत ही कहां है ? आज समाज का हर व्यक्ति उस मेनिन्जाइटिस से ग्रस्त है जिसमें मनुष्य हर दूसरे मनुष्य को दलाल समझता है, कपड़ा का दलाल, वेश्या दलाल आदि इस प्रक्रिया में वह मानवता से कटकर न केवल अलग-थलग पड़ गया है, बल्कि निरंतर एक `दु:स्वप्न` का अनुभव कर रहा है। कहानी का `मैं` तो रहस्य जानने के बाद उससे सहानुभूति भी रखता है ; परन्तु आज का व्यक्ति उस स्थिति में भी नहीं रह गया है जिसमें कि रहस्य खुलने पर सहानुभूति का वातावरण निर्मित हो। अत: वह बेचैनी, ऊब और कुछ न कर पाने की विवशता को ढोता हुआ कुढ़-कुढ़ कर उसी दु:स्वप्न में जीने के लिए विवश है ; इसीलिए लेखक का यह कथन आज हर किसी पर लागू होता है --

`क्या हर हिन्दुस्तानी अन्दर से `जनसंघी` नहीं है ? छोटे-बड़े सभी। यह और बात है कि कोई अपने बीबी-बच्चों के लिए `जनसंघी` हो, यह दलाल अपने पैसों के लिए, मैं अपनी प्रेमिका के लिए और जवाहरलाल अपनी पद लोलुपता की रक्षा के लिए।`[3]

`सब ठीक हो जायेगा`

`सब ठीक हो जायेगा` एक ऐसे पति की कहानी है जो शारीरिक और आर्थिक दोनों ही दृष्टियों से असमर्थ है। उसकी पत्नी मिसेज़ मिश्रा पति की असमर्थता का पूरा फायदा उठाती है, वे अपने घर में कई लोगों के साथ सम्भोग करती है, परन्तु सब कुछ देख कर भी पति अनदेखा कर देता है। वह विवश है, अत: सोचता है कि `सब ठीक हो जायेगा`। मिश्रा के अन्दर जीने की चाहत तो है परन्तु औरत को संतुष्ट करने की क्षमता का अभाव। फिर भी उसे यह आशा है कि एक दिन सब ठीक हो जायेगा। दूधनाथ सिंह की इस कहानी में स्त्री ऊपरी तौर पर संभ्रान्त बनी रहती है, किन्तु पति की अनुपस्थिति में वेश्यावृत्ति करती है। पति के नाम पर एक फेफड़े के कैंसर का रोगी, झरिया की खान में काम करने वाला मजदूर है जो कभी-कभार उसके पास आता है। सुबह सो कर

उठता है तो जैसे जूते खाकर उसका चेहरा सूजा रहता, ऊपर छत पर अकेले सोता, दिन भर एक तिलचट चादर ओढ़े छत पर बैठा रहता और खिड़की के बाहर बराबर देखता रहता ।

विवाहित स्त्री को लेकर द्रुधनाथ सिंह की यह कहानी सर्वाधिक साहसिक है । यहां स्त्री के लिए विशेष सहानुभूति तो नहीं है, किन्तु कठोर भर्त्सना भी नहीं है । घटना का वर्णन करने वाला पड़ोसी भी मानो चकित और सहमें भाव से ही इस स्थिति को देखता है ।

भारतीय परिस्थितियों में विवाहेतर सम्बन्ध अन्ततः अलगाव को बढ़ावा देते हैं । जैसे ही पति को पत्नी के सम्बन्धों का ज्ञान होता है, वह तूफान खड़ा कर देता है । लेखक चाहे जितने ही संवेदनशील हों, वह पतियों से यह आशा नहीं कर सकते कि वे गलती करने वाली पत्नियों के प्रति सहानुभूति रखेंगे और लेखक की संवेदना के भागीदार होंगे । पत्नी द्वारा अपने व्यवहार को उचित ठहराने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता और न पति कभी इस बात का विचार करने के लिए ठहरता है कि कहीं गलती उसकी अपनी ही तो नहीं । उदाहरण स्वरूप यह एक ही अपवाद है जहां पति अपनी पत्नी की बेवफाई को दार्शनिक भाव से स्वीकार करता है । परन्तु इसमें पति की अपनी मजबूरी है, वह कैंसर से पीड़ित है । इस स्थिति में उसका मूक रहकर सब कुछ सहते जाने के अलावा अन्य कोई रास्ता नहीं है । इस कहानी में जब वेश्या पत्नी ग्राहकों के साथ मनोरंजन करती है तो उसका पति चुपचाप छत या जीने पर बैठा रहता है । वह अपने पड़ोसी से कहता है --

> 'आप एक दिन मान लेंगे मि० माथुर कि सेक्स मात्र एक शारीरिक आवश्यकता है ।'[4]

दुर्भाग्यवश मिश्रा को कहानी में एक मिट्टी के लोंदे की तरह चित्रित किया गया है, अतः उसकी प्रक्रिया को तर्क न मानकर मजबूरी में मन समझाने जैसा मानना चाहिए । इस कहानी में विसंगतियों का जो रूप है, वह ऊपर से देखने में बड़ा साधारण और सपाट सा लगता है, लेकिन उसके संकेत बड़े अर्थपूर्ण और

दूरगामी है। कैंसर सिर्फ मिश्रा को ही नहीं है, उस पूरी व्यवस्था को है जहां मिसेज मिश्रा तन का सौदा करती हैं, उसके बाद कमरे की धुलाई और आरती भी करती हैं। कैंसर ग्रस्त पति इस कहानी में कुछ नहीं कमाता, वह उपेक्षित तथा बीमार भी है। कमाने वाली पत्नी बहुतों से मिलती जुलती है और उनके प्रति आशक्त भी हैं, इस व्यवहार से पति भीतर ही भीतर असंतुष्ट है किन्तु बाहर से शान्त है।

`प्रतिशोध`

द्रुधनाथ सिंह की यह एक सशक्त कहानी है; जिसमें उनके ईमान का स्तर उनके रचना कौशल के समक्ष प्रतीत होता है, वह है `प्रतिशोध`। इस कहानी में भी एक वास्तविकता की घुटन और दबाव को कथाकृत करने के लिए अपेक्षित एकाग्रता और गम्भीरता महसूस होती है।

यह कहानी स्वतंत्रता के पश्चात् की स्थिति से उत्पन्न परिवेश में चलने वाले भेड़िया धसान दफ्तरों की कारगुजारियों पर बड़ा ही तीखा व्यंग्य है। यह कहानी दफ्तरों की कभी न खत्म होने वाली, महज खानापूर्ति की कार्यवाही, आज कल आना जैसा आश्वासन, शोषण, घूसखोरी, कामचोरी और झूठी प्रतिष्ठा एवं उनके बीच निरंतर अपने पारिश्रमिक की प्राप्ति के लिए प्रयास रत बेरोजगार दम्पति की आत्म पीड़ा और आंतरिक विद्रोह का उभार है। दफ्तर का बार-बार चक्कर लगाना, दफ्तर बाबुओं की घुड़की और पत्नी की झिड़की में निरन्तर पिसने वाला बेरोजगार युवक अपनी बदहाली और विवशता पर स्वयं के होंठ चबाने के सिवा कर ही क्या सकता है।

कहानी में यदि एक तरफ दफ्तर की यमुदतीय कार्यवाही में पिसने वाले व्यक्ति का असहाय कंकाल नजर आता है तो दूसरी तरफ शहर की समस्याग्रस्त परिवेश, भूखे रहकर दिखावे के लिए कड़ाही चढ़ाकर पानी के छींटे मार-मार कर खाना बनाने का प्रदर्शन, छोटे से कमरे में किसी तरह बसर करने और खटमलों के आतंक से रात भर जगने को विवश शहरी जिंदगी का भण्डाफोड़ इन शब्दों में होता है --

`वर्षा होती तो छत पर बूँदें आतीं - जैसे छत को पसीना हो रहा हो। नीचे अपने अँधेरे, कच्चे कमरे में आधी-आधी रात तक वह सुनार अँधेरे की छाती में कीलें ठोंकता। आँगन में रखे नीचे वाले किरायेदारों के जूठे बर्तनों से सड़ी मछली की बू और छज्जे के कोने से पेशाब का भभका पूरे कमरे में भर जाता।`[5]

कहानी में दफ्तर के वातावरण का बहुत ही खौफनाक चित्र उभर कर सामने आता है। कहानीकार ने सत्येन्द्र के माध्यम से दफ्तरी जीवन का जो खाका खड़ा किया है, वह पूरा का पूरा अपने आप में एक सचाई है। इस सड़ी गली व्यवस्था का शिकार आज केवल सत्येन्द्र और उसकी पत्नी ही नहीं है, बल्कि इस दुर्व्यवस्था और नौकरशाही की तानाशाही को मूक होकर सहने वाले लाखों लाख युवक इन बेबस परिस्थितियों को अपनी नियति मानकर ढोते हैं, और बदले में विद्रोह का एक भी स्वर नहीं उठता। उनका सारा का सारा विद्रोह आंतरिक होता है, जो निरंतर अपने-आप से एक लड़ाई लड़ते रहते हैं। कहानी के नायक का `प्रतिशोध` वह `पेमेण्ट` है जिसे उसने आखिरकार ले ही लिया, भले ही वह मात्रा में बहुत कम कट-पिट कर मिला हो, परन्तु नायक को इस बात की संतुष्टि मिली कि उसने अपना प्रतिशोध ले लिया।

`आइसबर्ग`

दूधनाथ सिंह का पहला कहानी संग्रह `सपाट चेहरे वाला आदमी` के प्रकाशन के साथ-साथ उनकी पहचान कहानी जगत में मध्यवर्गीय शहरी परिवेश को कुरेद-कुरेद कर उभारने वाले लेखक की बनी। इनकी कहानियों के अधिकांश पात्र आधुनिक शिक्षित निम्न मध्यवर्गीय युवक हैं, जो कि अपनी रोजी-रोटी की तलाश में गांव छोड़कर शहर आ जाते हैं और शहर की सारी विसंगतियों एवं जटिलताओं को ढोने के लिए बाध्य होते हैं। सम्बन्धों की जटिल और मार्मिक अभिव्यक्ति की दृष्टि से इनकी कहानी `आइसबर्ग` दूर तक आज के पारिवारिक

विघटन और समाज से कटकर अकेले-अकेले जीने के लिए अभिशप्त व्यक्ति का पूर्ण ख़ाका प्रस्तुत करती है ।

कहानी का प्रमुख पात्र `विनय` अपने अकेलेपन से ऊब जाता है । अत: उसे अपने परिवार के प्रति प्रेम उमड़ता है, इसलिए वह पत्र लिख कर बहन, भाई और भाभी आदि को छुट्टियों में बुलाता है। वह जिस अपनत्व की आस लगाये था, उसका कहीं लेश मात्र भी उसे सगे सम्बन्धियों से प्राप्त नहीं हो सका ; उल्टे एक प्रकार की गहरी निराशा, क्षोभ और अवसाद की प्राप्ति हुई । परिवार के सभी सदस्य इकट्ठे तो होते हैं परन्तु औपचारिक रूप से ही । भोजन में देर हो जाने पर वे सभी होटल में खाना खा लेते हैं, उनके बच्चे एक साथ न खेलकर अलग-अलग खेलते हैं और लड़ाई भी कर लेते हैं ; परन्तु सब से बड़ी विडम्बना यह है कि उसका बड़ा भाई `जगत` शराब के नशे में उसे भला-बुरा बक देता है और नाराज होकर सुबह ही गाड़ी से चला जाता है । परन्तु `विनय` को अंतिम चोट तब लगती है जबकि `सुबोध` ने लिफाफे में भोजन के बिल के लिए 125 रुपए का चेक दिया । इस तरह धीरे-धीरे सारे परिवार वाले 'विनय' को असहाय और एकाकी छोड़कर अपने अपने घर को चले जाते हैं और रह जाती है एक उदासी, एक बेचैनी और दूर तक फैला सूना जड़ `विनय` का एकाकी व्यक्तित्व ।

यह मूल्यहीनता, सम्बन्धों में विघटन, वैचारिक मतभेद और स्वार्थ में अंधे अपनत्व के अभाव का एक पूर्ण परिवेश है । व्यक्ति आज अपनी एक सीमित दुनिया में सिमट कर खुश है । उसे नहीं चाहिए मां-बाप, भाई-बहन, भाभी और यहां तक पत्नी भी ; वह जी लेगा अपनों से दूर कहीं एकांत और वीरान टापू पर अजनबीयत की जिंदगी पर, समय के साथ-साथ उसमें भी एक हूक उठेगी अपनों के प्रति । तब बहुत देर हो चुकी होगी और लोग इतने दूर जा चुके होंगे कि उन्हें फिर बुलाकर पारिवारिक अपनत्व के दायरे में लौटना असंभव होगा । ऐसा ही कहानी के पात्र `विनय` के साथ घटित होता है । वह पहले स्वयं ही परिवार के लोगों से कट कर अपने में मस्त रहने लगा था । जिसको 'बेवी' का कथन प्रमाणित करता है --

`एक तुम हो, जिसे कुछ भी समझाया नहीं जा सकता । दद्दा कभी-कभी पागल हो उठते हैं, तुम्हारे लिए । इतना परायापन क्यों दिखाते हो विन्नू ..... ?`[6]

`विनय` का एकाकीपन और अलगाव इस कदर हावी हो गया था कि उसे मां की मृत्यु, दादी की मृत्यु, जगत के लड़के का सालगिरह और वह जिस बहिन को इतना मानता था, उसके पति का ऐक्सीडेंट भी उसे विचलित न कर सका । मां की मृत्यु पर भी वह घर नहीं गया और जीजा के एक्सीडेंट पर सहानुभूति और सांत्वना के दो शब्द के बदले बेबी को `रामकृष्ण वचनामृतम्` सुनाने की कुअवसर चेष्टा उसके अलगाव बोध और परायेपन को दूर तक रेखांकित करती है ।

`कोरस`

`कोरस` कहानी प्रतीक विधान की जटिलता और फैंटेसी के उत्कृष्ट प्रयोग के कारण बहुत ही चर्चित कहानी रही है । वैसे इस पर आलोचक और पाठक दुरूहता का आरोप लगाते रहे हैं परन्तु थोड़ा सा ध्यान देने पर कहानी का अर्थ खुल जाता है । यह कहानी आज़ादी के बाद की परिस्थितियों से उत्पन्न मोह-भंग की वैचारिक पृष्ठभूमि में लिखी गयी है ।

`कोरस` का शाब्दिक अर्थ `सहगान` होता है । इसी को लेखक ने आज़ादी के बाद प्रजातंत्र के मंच से निरंतर होने वाले खोखले दावे, झूठे आश्वासन, देश की समस्याओं के प्रति कोरी चिंता, उसे हल करने का भयानक दंभ और इस प्रक्रिया में जनता का शोषण, वोट की राजनीति एवं समाज का मसीहा बने रहने की जी-तोड़ कोशिश, परिणामस्वरूप इन भयंकर बुराइयों में निरंतर पिसने वाली जनता की चीख पुकार के मिले-जुले स्वर के रूप में उभरा । वास्तव में समाज के बीच अपने आप ज़िंदगी के साथ-साथ जनता के दर्द और क्षोभ से गूंजने वाला कहानी का यह `कोरस` मंच पर गाये जाने वाले `कोरस` की अपेक्षा अधिक जीवन्त और

प्रभावशाली बन पड़ा है। मंच का कोरस तो कुछ क्षणों तक ही गूंज कर पुनः अतीत की याद बन जाता है, परन्तु जनता की हाहाकार से निकलने वाला यह `कोरस` आज भी प्रजातंत्र के ऊपर एक धब्बा है जिसके छींटे बीसवीं सदी की ओर बढ़ने वाले शोषित-पीड़ित और बंदरबाट की राजनीति में पिसते प्रजातंत्र की अमूल्य निधि ; निरीह जनता के पेट पर अवश्य दिखाई देते हैं।

`रक्तपात`

`रक्तपात` दूधनाथ सिंह की सर्वाधिक चर्चित और भावुक कहानी है। इसमें बौद्धिकता के साथ-साथ भावुकता भी अपने चरम रूप में दिखाई पड़ती है। यह `रक्तपात` कहानी में एक प्रतीक के रूप में प्रयुक्त हुआ है परन्तु साथ ही साथ हमें उसका बाहरी रूप भी दिखाई पड़ता है।

यह कहानी भी व्यक्ति के अलगाव-बोध और सम्बन्धों में उठने वाले तनाव को अधिकाधिक रेखांकित करती है। कहानी का पात्र संजय अपने परिवार और खास कर पिता से रूठ कर काफी दिन तक घर नहीं आता है, यहां तक कि उसके पिता की भी मृत्यु हो जाती है। फिर भी वह घर नहीं आता, बल्कि मकान मालिक के लड़के से पत्र लिखवा देता है कि संजय यहाँ नहीं है। बाप के प्रति उसकी क्रूरता इस हद तक बढ़ जाती है कि उनकी मृत्यु भी उसे द्रवित नहीं कर पाती। पत्नी जिसकी शादी बिना मन के कर दी गयी, उसे वह महज वेश्या समझता है, उसमें उसे कोई भी रुचि नहीं है। हाँ, यदि उसमें कुछ शेष बचा है तो वह माँ के प्रति स्नेह और पिता की मृत्यु से उत्पन्न अपराध बोध का भाव। इसमें भी वह माँ के प्रति अपने स्नेह को खुलकर व्यक्त नहीं कर पाता, एक संकोच, एक हिचक और चाह कर पीछे हटने की स्थिति में वह निरंतर अपने भीतर ही भीतर लड़ता रहता है।

व्यक्ति का अपने ही परिवार से इस कदर कट जाना कि वह अपने ही घर में अजनबियत की ज़िंदगी जीने को बेबस हो। जिस घर में उसका कभी पूरा वर्चस्व था, उसमें ही व्यक्ति को पत्नी का विरोध करने का डर और सब कुछ

को ठण्डे मन से फेंकते जाने वाली नियति का जीवंत रूप यह कहानी प्रस्तुत करती है। जिस पत्नी के साथ वह संभोग कर सकता है, उसकी इच्छाओं की पूर्ति के लिए अपने को छोड़ सकता है, माँ का अपमान देख सकता है परन्तु प्यास लगने पर पानी मांगने में कई बार हिचकने की स्थिति बहुत गहराई से आज के युवक की आंतरिक पीड़ा की बेबस स्थिति का जरा-जरा उखाड़ देती है।

कहानी में कई स्थानों पर पति-पत्नी के गर्म बिस्तर का भी चित्र उभर कर सामने आया है, जिसके चलते लोगों को इस कहानी में भी सेक्स के खोज में आसानी महसूस होती है। परन्तु लेखक का मूल मंतव्य सेक्स का रोमांचकारी और रोचक वर्णन नहीं है, बल्कि इसके माध्यम से उसने वर्तमान समाज की एक दुखती हुई नस पर उंगली रखने का काम किया है जो उसके समस्त पीड़ा के गुबार को उभारने के साथ-साथ पाठकों के सामने एक प्रश्न खड़ा करती है ; वह प्रश्न यह है कि - मां की पीड़ा और उसके प्रति सहानुभूति बड़ी चीज है या क्षणिक यौन तृप्ति ? दोनों में से एक बेटा किसका चुनाव करता है ? पुत्र को लेखक ने एक द्वन्द्वात्मक स्थिति में प्रस्तुत किया है जो आज के टूटते नवयुवक का ढाँचा मात्र है, वह न तो अपनी पत्नी की ही उपेक्षा कर सकता है और न वह माँ की पीड़ा को ही बर्दाश्त कर सकता है, अन्ततः माँ के प्रेम की विजय होती है और बेटा माँ के सर को उठाकर गोद में रख लेता है।

कहानी आज के नवयुवक की कुण्ठित मानसिकता एवं सम्बन्धों के प्रति उदासीनता को उभारती है। इसमें वैयक्तिकता के साथ-साथ सामाजिकता का भी रूप पूर्ण सशक्तता के साथ प्रस्तुत है। आज केवल संजय की ही माँ की यह उपेक्षा-पूर्ण स्थिति नहीं है, बल्कि समाज में माँ के प्रति लोगों का सम्मान पूर्ण रूप बदल गया है और वे उसे माँ न समझ कर एक साधारण बुढ़िया ही मानते हैं जिसके चलते बुढ़ापे में माँ को अपने पुत्र और पुत्रवधू से वह सम्मान और प्यार नहीं मिल पाता जो अपेक्षित होता है।

यह 'रक्तपात' बाहर और भीतर दोनों ही होता है, संजय के भीतर

`रक्तपात` अन्तर्द्वन्द्व के रूप में, पत्नी की अतृप्ति वासना से कुंठित हृदय के रूप में और माँ का माथा फोड़ कर निकलने वाले लहू के रूप में बाहर `रक्तपात` होता है। अत: इसके सारे पात्र किसी न किसी रूप में रक्तपात के शिकार होते हैं परन्तु ज्यादा प्रभावकारी और मार्मिक `रक्तपात` माँ के माथे से निकलने वाले लहू का है जो हमें भावुक कर देता है।

`सपाट चेहरे वाला आदमी`

जाहिर सी बात है कि यह कहानी लेखक को अधिक प्रिय लगी होगी, जिसके नाम पर उन्होंने कहानी संग्रह का नामकरण किया है। आज का मनुष्य जीवन की एकरसता से ऊब चुका है। उसकी ज़िंदगी सपाट चेहरे की जिंदगी है, जहाँ सारे अवयव होने पर भी वह उसका उपभोग नहीं कर सकता है। यह संसार व्यक्तियों से, सम्बन्धियों से और मित्रों से भरा हुआ है ; परन्तु आज का मनुष्य हजारों-हजार की भीड़ में भी समाज से कटा हुआ अलग-अलग अजनबियत की जिंदगी जीता है।

यह कहानी पूरा का पूरा एकालाप है। कहानी का `मैं` जिंदगी के रहस्य जिजीविषा के स्रोत की खोज में पान वाले के पास, भीड़ में टकराने और झगड़ने की कोशिश किसी होटल में चाय पीने या किसी और से बात करने के मूड में अपने अकेलेपन के साथ-साथ कुछ बचपन की स्मृतियां और माँ एवं पिता के साथ बिताए गए दिनों के खट्टे-मीठे अनुभव को लिये ढोता फिरता है। किसी को अपनी बात सुनाने के लिए ढूंढ़ता है। अन्तत: उसे एक वेश्या ही मिलती है, जिस-से रुपया तय करके वह केवल बात करना चाहता है ; परन्तु वेश्या को भी अपने धन्धे की जल्दी है, अत: वह सब कुछ कर सकती है परन्तु बात नहीं कर सकती क्योंकि उसको फुर्सत नहीं है। यह हमारे समाज की सबसे बड़ी विडम्बना है, जहां वेश्या तक को बात करने की फुर्सत नहीं, वहां आम आदमी की क्या स्थिति होगी, कहा नहीं जा सकता है।

यह कहानी मूल्यों और परम्पराओं को निर्ममता से तोड़ने वाली रचना है। गंगाप्रसाद विमल के शब्दों में --

`इसमें दर्द उतना आब्जेक्ट का नहीं जितना नैरेटर का अपना है .... .... जो कुछ प्रक्रिया उसकी अपनी है। एक तरह से रचनाकार उससे सम्बन्धित है।`[7]

इसमें मृत्यु, संत्रास आदि प्रवृत्ति की यथार्थ अभिव्यक्ति है। लेखक ज़िंदा रहने के प्रश्न को लेकर परेशान है, वह बिल्कुल गुमसुम और उद्वेलित है। कहानी का `मैं` इसलिए ज़िंदा रहने के प्रश्न को लिए-लिए भटकता रहता है क्योंकि उसे इस चीज को परखने, स्थापित करने का उचित स्थान और मौका नहीं मिल पाता और सबसे बड़ी बात यह है कि वह चीज समय के साथ-साथ चलने वाले हर इन्सान की जेब में है, जिसने उसे परेशान कर रखा है।

`सपाट चेहरे वाला आदमी` कहानी अपनी अविश्वसनीय विचित्रता के बावजूद आज के युग का बड़ा ही अर्थ गर्भित प्रतीक है। सचमुच ही यह कितनी बड़ी विडम्बना की स्थिति है कि आंखें होने पर भी दिखाई न पड़ना सिर्फ महसूस ही कर सकना। इतना कुछ होते हुए भी कहानीकार ने कथ्य को इतना ज्यादा विस्तार दिया है जो अनावश्यक सा लगता है, जिसका कि मुख्य कथ्य से विशेष सम्बन्ध नहीं बन पड़ता। जैसे कि कहानी के `नैरेटर` के पिछले और बीते अतीत को आवश्यकता से अधिक विस्तार दिया गया। फिर भी यह कहानी अपने पूरे युग एवं काल को एक सुस्पष्ट प्रतीक के जरिए प्रस्तुत करने में अधिक सफल साबित हुई।

`सुखान्त` (1971 ई0)

`सुखान्त` कहानी संग्रह दूधनाथ सिंह की कहानियों के किसी अमूलचूल परिवर्तन बिन्दु को नहीं रेखांकित करती। फिर भी इतना अवश्य है कि इसमें इनकी कहानी कला का रूप धीरे-धीरे विकास की ओर अग्रसर रहा। इसका

कारण यह रहा कि इस संग्रह की भी अधिकांश कहानियां लगभग उसी दौर में लिखी गयीं जबकि `सपाट चेहरे वाला आदमी` संग्रह संकलित हुआ ; परन्तु इन सभी में एक प्रकार की ताजगी और नएपन का एहसास विद्यमान है ।

`सुखान्त` कहानी संग्रह को अपने पूर्ववर्ती संग्रह से इस रूप में भिन्न कहा जा सकता है कि इसमें `अकहानी` आन्दोलन के प्रभाव का वह रूप नहीं मिलता जो `सपाट चेहरे वाला आदमी` में उभर कर सामने आया था । इस संग्रह की कहानियां `अकहानी` आन्दोलन के प्रभाव में उनकी रचनात्मकता के कारण को प्रमाणित करती हैं । इस संग्रह की कहानियों में अमूर्तीकरण और उत्प्रभाव की प्रवृत्ति का फैलाव देखा जा सकता है । इनमें जिस व्यवस्था का चित्रण लेखक ने किया है, वह आज के समाज में स्पष्ट और यथार्थ रूप में पूरी तरह से नहीं मिल सकता ; फिर भी `स्वर्गवासी` का कृष्ण लाल और `विजेता` का `मैं` इसका कुछ आभास अवश्य देते हैं । `उत्सव` में जिस वातावरण और परिवेश को रूपायित किया गया है, उसके चलते आदमी के पशु हो जाने की स्थिति का अंकन है । इसी प्रकार `शिनाख्त` कहानी में देखा जाय तो रागात्मक संबंधों के कारण और अन्त:निषेध का जो रूप उभरता है, वह `अकहानी` से प्रभावित कहा जा सकता है । अपने परिवेश से गहरे रूप में जुड़ने की कोशिश दूधनाथ सिंह की इस कहानी संग्रह में देखी जा सकती है । व्यक्ति के अन्तस्तल के आन्तरिक रूप को भाषा और क्रिया-कलाप के द्वारा उभार कर सामने लाने में वे अधिक सफल रहे हैं । इन कहानियों में लेखक की तरफ से किसी प्रकार का लाग-लपेट नहीं है, बल्कि जो जैसा है, उसे उस रूप में परोसने का प्रयास किया गया है। इतना अवश्य है कि `उत्सव` और `सुखान्त` के परिवेश को कुछ ज्यादा ही लेखक ने रंगने की कोशिश की । फिर भी उसकी विश्वसनीयता पर कोई आंच नहीं आने दी । इसी बात की ओर इशारा करते हुए डा० विश्वम्भर नाथ उपाध्याय ने कहा --

`दूधनाथ सिंह की कहानियां, अनुभूतियों के भंवर जाल के कारण नई कहानी और आज की सपाट कहानियों के बीच की कड़ियों सी जान पड़ती हैं । किन्तु कथ्य की दृष्टि से वे एकदम आज की कहानियां हैं । इनमें कथ्य को स्वादिष्ट

बनाने का कोई प्रयोजन नहीं है। `स्वर्गवासी` में लेखक चाहता तो कमलेश्वर की `खोई हुई दिशाएं` के नायक की तरह अपने पात्र को किसी औरत का भी स्वाद चखा सकता था, लेकिन उससे यथार्थ की भयंकरता कुछ कम होने की आशंका थी।`[8]

इस संग्रह के प्रथम संस्करण में कुल छः कहानियां थीं। परन्तु लेखक को अपनी एक कहानी पसंद नहीं आयी। वह है `कबंध`। इसको लेखक ने `कहानी कम विसंगत नाट्य प्रयोग ज्यादा` का आरोप लगाते हुए दूसरे संस्करण में इस संग्रह से ख़ारिज़ कर दिया। इसके साथ ही साथ दूसरे संस्करण में लेखक ने `सुखान्त` कहानी के स्वरूप में बहुत फेर बदल किया या यूं कहें कि उसका पुनर्लेखन किया। `विकल्प` पत्रिका में छपने के बाद यह कहानी पूरी की पूरी दुबारा लिखी गयी। इन दोनों परिवर्तनों के पीछे लेखक का मूल मंतव्य क्या था ? बहुत स्पष्ट तो नहीं परन्तु इतना तो कहा जा सकता है कि लेखक के कहानी कला में निरन्तर निखार के चलते से रचनाएं पीछे छूट गयीं और उनके सतहीपन का एहसास लेखक को अखरने लगा। परिणामस्वरूप एक का बहिष्कार और दूसरे का परिष्कार सामने उभर कर आया। जैसा कि लेखक ने `सुखान्त` संग्रह के आवरण पृष्ठ पर उद्धृत किया है --

`अक्सर हर मौलिक और ईमानदार रचनाकार को अपनी ही स्वनिर्मित, स्व-अर्जित रचनात्मक समृद्धि की चुनौती स्वीकार करनी पड़ती है। अपनी रचनाओं की प्रतिद्वन्द्वता में उठ खड़ा होना उसकी नियति है।`[9]

इस कथन से स्पष्ट है कि दूधनाथ सिंह अपनी रचनाओं की चुनौती स्वीकार करते हैं परन्तु किसी रचना को कहानी संग्रह में एक बार शामिल करना और पुनः निकाल देना किस प्रकार की चुनौती है ? मेरी समझ में नहीं आती। जो भी हो, `सुखान्त` के इस दूसरे संस्करण में कुल पांच कहानियाँ हैं, जो इस प्रकार हैं -- `स्वर्गवासी`, `शिनाख्त`, `उत्सव`, `विजेता` और `सुखान्त`।

`स्वर्गवासी`

`स्वर्गवासी`, `सुखान्त` कहानी संग्रह की पहली कहानी है। यह एक ही

साथ प्रतीक और व्यंग्य दोनों है। या यूं कहें कि व्यंग्य गर्भित प्रतीक है। यद्यपि इस कहानी का मुख्य पात्र कृष्णालाल जिन परिस्थितियों में उपेक्षित और दुत्कार भरा जीवन जीने के लिए स्वेच्छा से तैयार हैं ; वह पूरा का पूरा नरक से कम नहीं है। फिर भी वह किस तरीके से काहिल और बेशर्म बन कर जिल्लत भरी जिंदगी जी लेता और उसी में स्वर्ग का अनुभव करता है, वह उसकी नियति बन चुकी है।

'स्वर्गवासी' एक ऐसे निम्न मध्यवर्गीय व्यक्ति के वहशत और उपेक्षा की कहानी है। कहानी का कृष्ण लाल भ्रष्टाचार के आरोप में पटवारी की नौकरी से निकाला गया पात्र है, वह अपनी नौकरी बहाल कराने के लिए अपने जीजा के घर आता है। परन्तु धीरे-धीरे वह अपने जीजा के ही ऊपर पूर्णत: निर्भर हो जाता है। जो बात उसे पहले बहुत अधिक अखरती थी, वही बाद में उसके लिए सामान्य बन गयी। जिस घर को वह शुरू में नरक मानता था और ढेरों सारे आदर्श की सान पर चढ़ाकर ही जिन बातों को वह स्वीकार करता था, आज वही बल्कि उससे भी बदतर हालात में उसे स्वर्ग महसूस होता है। पहले जो थोड़ी सी उपेक्षा का भाव उसे घण्टों परेशान किये रहता था, वही आज उसकी नियति बन गयी है। और उसी पारिवारिक उपेक्षा में वह मस्ती से जी रहा है।

कहानी व्यक्ति के निरंतर उपेक्षित होते रहने, आलसी की ज़िंदगी बिताने की गरज़ से मरे हुए स्वाभिमान वाले व्यक्ति की दिन प्रतिदिन गिरती जाने वाली शाख को उभारती है। कहानी का पात्र कृष्ण लाल एक ऐसा ही पात्र है जो जीवन की परिस्थितियों से हार मानकर, असमर्थ मानते हुए खुद को निरीह भाव से उन्हीं परिस्थितियों के हवाले कर देता है और स्वयं अपनी दीनता और लाचारी का दर्शक के रूप में निरन्तर मजा लेता रहता है, जैसा कि कहानीकार का कथन है --

> 'कमरे के अंधकार में वह निर्विकार भाव से मुस्कराता रहता। एक खलनायक की तरह, जो अपनी उत्पन्न की गयी प्रतिक्रियाओं का आनन्द ले रहा हो।'[10]

`शिनाख्त`

`शिनाख्त` कहानी सेक्स पर आधारित है। इसका रचनाकाल सन् 1966 ई० है, जबकि मूल्यों का विघटन कहानी विधा में पूरी तरह से हावी हो चुका था। इसका प्रभाव दूधनाथ सिंह पर भी पड़ा जिसकी परिणति `शिनाख्त` के रूप में हुई। इसमें लेखक ने पति-पत्नी के विवाह से पूर्व और विवाह के पश्चात् अपने प्रेमी या प्रेमिका के साथ चलने वाले रोमांस का खुलासा किया है --

> `बहरहाल हम दोनों ही इस तरह के अंत की आशा नहीं रखे हुए थे ... । इतना घिनौना और वितृष्णाजनक। लेकिन वह अंत सामने और उसे इस तरह भुला सकना कठिन था। दीवारें थिर हो गयी थीं ... लम्बी और थकी, साँसें खींचती ... दीवारें या वह औरत ? मैं उठ कर जल्दी-जल्दी पैंट चढ़ाने लगा, जैसे किसी चौराहे पर खड़ा होऊँ... ।`[11]

आज की पत्नी के लिए पति एक जुकाम है जो आता है, उतर जाता है। एक पसीना है जो चढ़ता है और सूख जाता है। वह न तो अपने प्रेमी और न ही पति के साथ पूर्णतः वफादार रह पाती है। वह पति की अनुपस्थिति में अपने प्रेमी के साथ सब कुछ एक सहज ढंग से कर सकती है, जिसे करना उसकी स्थिति के खिलाफ़ है। यह सब दैनिक जीवन के साथ-साथ चलता रहता है और सब कुछ हो जाने के बाद भी स्थिति में इस तरह परिवर्तन कर दिया जाता है कि जैसे कुछ हुआ ही न हो।

कहानी के माध्यम से लेखक ने यह दिखाने की कोशिश की है कि इस तरह विवाहेतर जीवन में चोरी-छुपे चलने वाले व्यापार को प्रेम की संज्ञा नहीं दी जा सकती, यह तो चरित्र हीनता के सिवा और कुछ नहीं। यह आदमी का वहशीपन है जो थोड़ी देर में शान्त हो जाता है। प्रेम के लिए बहुत बड़े त्याग की आवश्यकता होती है, प्रेम चोरी छिपे दुनिया की नजर बचाकर कमरे में होने वाला रोमांस नहीं है। वह तो सीना तान कर समाज के बीच में खड़ा होने वाला `देवदास` है जिसे दुनिया की परवाह नहीं होती। यह प्रेम नहीं, बल्कि घटिया

किस्म का सेक्स है। इसी बात को दूधनाथ सिंह ने अपने इण्टरव्यू में स्वीकार किया है --

> `सेक्स पर,संभोग पर मैंने सिर्फ एक कहानी लिखी है और वह कहानी है `शिनाख्त`। उस कहानी में यह है कि अगर हम इतना ही चरित्र हीन न होते तो हम `देवदास` होते, यानी सेक्स आदमी को `देवदास` नहीं बनाता। `देवदास` बनने के लिए बड़े त्याग की आवश्यक्ता है, यहबात इस कहानी में कही गयी है कि यह प्रेम नहीं है, यह घटिया किस्म का सेक्स है।`[12]

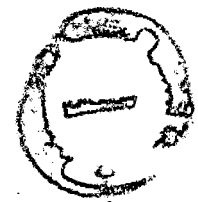

`उत्सव`

कहानी में `उत्सव` व्यंग्यगर्भित अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। जिस समय सारी दुनिया मातम में डूबी हुई होती है, व्यक्ति रोते-कलपते हुए जाने वाले के गम में तड़पते दीखते हैं, उसी समय `मृतक सेवा संस्थान` में मृतकों के परिवार से उगाहे गये फीस के पैसे से ही उत्सव का माहौल चलता रहता है। मित्रों के साथ संस्थान में शराब का दौर चलने पर लोग नशे के आगोश में आकर आसानी से सो जाते हैं ; और वह व्यक्ति जिसकी दुनिया उजड़ गयी, उसको नींद कैसे आती होगी ? इसका क्या उन्हें ख्याल कभी आया ? नहीं। क्यों कर आता। क्योंकि उन्हें तो मुहल्ले से निकलने वाली मोटी रकम की लाशों से उत्सव मनाने की लत जो पड़ गयी थी।

DISS
0,152,3,N365:g TH-7441
152N7

यह कहानी पूर्णरूप से मूल्यहीनता के धरातल पर लिखी गयी है। मूल्य-हीनता या मूल्यों के अवमूल्यन का कारण पूंजीवादी अर्थ सम्बन्धों में ही निहित है। इस व्यवस्था में एक ऐसी सुरक्षा जन्म लेती है कि व्यक्ति आत्म केन्द्रित हो जाता है। यह स्थिति जहां एक ओर सामाजिकता के लिए खतरा है, वहीं दूसरी ओर मूल्यहीनता के लिए उत्तरदायी है। इस कहानी में मूल्यहीनता की इसी स्थिति को उभारा गया है जिसके चलते शहर के गुण्डे और बदमाशों को शहर में शांति का माहौल गले नहीं उतरता। अत: वे इससे बराबर दु:खी रहते हैं।

क्योंकि निरन्तर इसी तरह की शांति कायम रहने पर उनके धंधों के चौपट होने का डर है। आर्थिक हितों के विस्तार और उसकी सुरक्षा के लिए हम अपने ही साथियों को धोखा देने से नहीं चूकते। झूठ, खुशामद, रिश्वत, बेईमानी आदि के माहौल में नैतिक मूल्यों का सुरक्षित रहना असंभव हो जाता है। कहानी में चुनाव की प्रक्रिया और उसमें किराये पर भाषणबाजी, मंच पर नकली आँसू, बनावटी भावुकता तथा पैसों के बूते प्रचार करने की कार्यवाही आज के लोकतंत्र के दुरंगे सियारों की चाल-चीसी पर हमें सहज ही सोचने को विवश कर देती है।

इस माहौल में व्यक्ति दोगला हो जाता है। ऊपर से मूल्यों के साथ चिपका हुआ आदमी व्यवहार में मूल्यहीन जीवन का वरण कर लेता है। कहानी के पात्र `बद्दू`, `चुन्नू`, `कक्कू`, `मुन्ना बाबू` और `गुरु जी` ऐसे ही हैं जो दुष्ट, नीच, मक्कार और लतखोर हैं, पैसों और मौज मस्ती के लिए कुछ भी करने को तैयार, नीच से नीच काम करने में जरा सा हिचक न होना, अपना काम बनाने के लिए गधे को बाप कहने की अदा रखने वाली स्थिति आज के व्यक्ति के नैतिक पतन के अंतिम बिन्दु की ओर इशारा करती है। मृतक संस्थान के व्यक्तियों द्वारा लाश को नदी में प्रवाहित करते समय भद्दे मजाक और गाली पूर्ण शब्दों का प्रयोग इस संस्थान के पांचों व्यक्तियों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का खाका उभारने में सफल और मानवता के ऊपर एक क्रूर मजाक से कम नहीं है। कहानी में व्यक्ति की स्वार्थपरता और उसके धन कमाने के इस नए तरीके को लेकर कितना क्रूर और अमानवीय मजाक किया गया है। मेहनत करने से जी चुराने के बावजूद आराम तलब जीवन बिताने की चाहत आज के आदमी को किस हद तक गिरा सकती है, इसका अच्छा उदाहरण `उत्सव` नामक कहानी है।

`विजेता`

कहानी यह दर्शाती है कि आपका पहनावा ही आज के समाज में आपके व्यक्तित्व का असली परिचायक है; यदि आप ऊपरी दिखावे में चूक गये तो

आप चाहे जितने भी सभ्य और बौद्धिक हों, आपका मूल्य भी एक गवॉर और चोर-उचक्के की तरह ही ऑका जायेगा । जैसा कि कहानी के `मैं ` के साथ घटित होता है । यदि आप अपने रूप और पहनावे से सभ्य आदमी नहीं लगते हैं तो आपकी सारी सचाई पर पानी फिर जायेगा । तब आप चाहे जितना विश्वास दिलाइए, परन्तु अगला व्यक्ति आपके इन सारी सच्चाइयों को महज एक फरेब से ज्यादा कुछ मानने को तैयार नहीं हो सकता ; इसलिए आदमी को अपने प्रति सतर्क रहना चाहिए ।

कहानी व्यक्ति के अन्दर झॉकने वाली स्वार्थपरता, क्रूरता और जैसे भी हो, पैसा निकलवाने की अदा का उग्र रूप चित्रित करती है । कहानी में बिना टिकट यात्रा करने वाले संन्यासी, पागल, लड़का और कहानी के `मैं ` का यह कार्य टिकट बाबू के लिए गैर कानूनी काम करने की वजह से कम परन्तु पैसा न वसूल हो पाने की वजह से ज्यादा ही असहनीय हो गया था, जिस का उग्र रूप पिटाई और गालियों में घुल-मिल कर व्यक्त हो रहा था । व्यक्ति का परिस्थितियों की विवशता के परिणामस्वरूप दुनिया की निगाहों में गिर जाना, एक तमाशा बन जाना, अपने से छोटे व्यक्ति के सामने सारे स्वाभिमान को तिलांजलि देकर गिड़-गिड़ाना, फायदे के लिए खुशामद करना और दूसरों को पिटता हुआ देखकर क्रूरतापूर्वक मुस्कुराना आदि मानवीय मूल्यों की रौंद को उजागर करती है ।

कहानी का `मैं ` एक साथ दो धरातलों पर संघर्ष करता है। वह लड़की के प्रेम को महज एक प्रेम के रूप में ही नहीं, बल्कि चुनौती के रूप में स्वीकार करता है । इसमें प्रेम का एक त्रिकोण स्थापित होता है, एक लड़की के दिल को जीतने के लिए दो योद्धा मैदान में आ डटे हैं । कहानी का `मैं ` विपरीत परिस्थितियों में भी लड़की से पॉच सौ मील दूर, दिन भर शराब पीकर पत्र का इंतजार, अखबार के दफ्तर में रात्रि ड्यूटी और लम्बे-लम्बे पत्र लिख कर अपना युद्ध जारी रखता है । परन्तु अंतिम बार मिलने के लिए पत्र में जो समय निर्धारित होता है, उस पर पहुंचना एक टेढ़ी खीर है । फिर भी वह लाख संघर्षों के बावजूद अंतिम क्षण तक प्रयत्नशील रहता है । कहानी का `मैं ` प्रेम के क्षेत्र

में पराजित होता है परन्तु उसने मानवीय क्षेत्र में जो विजय हासिल की है, वह उसकी वास्तविक जीत का साक्षी है। उसने अंतिम क्षणों में सम्पूर्ण दैन्यता को एक झटके के साथ फेंक दिया और निर्दोष व्यक्ति को टिकट बाबू की चंगुल से छुड़ाकर, स्वयं हथकड़ी पहन कर जिस बहादुरी का परिचय दिया, वह निश्चय ही उसे `विजेता` साबित करती है।

`सुखान्त`

इस कहानी के ढांचे और लम्बाई को देखने से तो ऐसा लगता है जैसे कि कहानीकार इसे उपन्यास का रूप देना चाहता था। क्योंकि कहानी को `परिस्थिति`, `प्रत्यावलोकन`, `प्रतीक्षा`, `पुर्नदर्शन` और `पटाक्षेप` आदि खण्डों में बांट कर लिखना औपन्यासिक ढांचे की ओर इशारा है। पर इसके पीछे कहानीकार का जो भी मूल मन्तव्य रहा हो, अब हम इसे एक लम्बी कहानी मान कर चलते हैं। यह `एक लम्बी स्वप्न कथा` है, जैसा कि लेखक ने शीर्षक के नीचे कोष्टक में उद्धृत भी किया है। इसके माध्यम से एक विक्षिप्त व्यक्ति की मानसिक जटिलता और उसके जीवन में आने वाले परिवर्तन, प्रभाव, पीड़ा एवं छटपटाहट को उसी के नजरिए से प्रस्तुत किया गया है।

कहानी में पागल व्यक्ति की सम्पूर्ण मानसिकता और उसकी सोच को बड़ी बारीकी से उभारने का लेखकीय प्रयास सफल रहा। साठोत्तरी कहानियों ने केवल मानव जीवन की विसंगताओं को ही अपना लक्ष्य नहीं बनाया, बल्कि वह मनुष्य मन के सौन्दर्यात्मक पक्षों का भी उद्घाटन बड़ी कलात्मकता और तटस्थता के साथ प्रस्तुत करती हैं। द्रुधनाथ सिंह की यह कहानी मानव मन की एक ऐसी जटिल स्थिति को लेकर आगे बढ़ती है, जहाँ वह अपनी सारी परिवेशगत स्थितियों के बीच अपनी सार्थकता और उत्तरदायित्व को खोजता हुआ दिखाई देता है। सम्पूर्ण कहानी एक प्रकार का आत्म प्रलाप है। नायक अपने परिवेश के बीच एक कैदी के समान अनुभव करता है। वह इस तरह की

कैद से मुक्त होने के लिए छटपटाता रहता है । यह छटपटाहट व्यक्ति के अन्दर अपने निजी आदर्शों के अनुरूप जी पाने के लिए है, परन्तु वह अपने आदर्शों के अनुरूप तभी जी सकेगा जबकि वह इस व्यर्थ से लगने वाले परिवेश के बीच स्वयं की सार्थकता को खोज ले ।

सम्पूर्ण कहानी इसी प्रकार की खोज और उसके कारण होने वाली छटपटाहट को प्रस्तुत करती है । व्यक्ति के मन के इस जटिल स्वरूप को जिस संयम तथा सधे हुए शिल्प की आवश्यकता होती है, वह इस कहानी में पूर्ण सार्थकता के साथ विद्यमान है । यथा --

> `मैं एकाएक बोलने लगा - । `बुलाओ माँ को `, मैंने गुर्रा कर कहा । लेकिन कोई जवाब नहीं मिला । फिर मैंने दाँत किटकिटा कर कहा, `जादूगरनियों, मुझे ऐसे कब तक रखोगी ? मैं ऐसे नहीं रह सकता । मेरे कर्म क्या ऐसे थे कि मुझ पर शक किया जाय । या तो मैं अपने ढंग से रहूंगा, या ..... ।`[13]

कहानीकार ने इस कहानी में मनोवैज्ञानिक सूत्र को महज मनोवैज्ञानिक आग्रह के ही रूप में चित्रित नहीं किया, वरन् उसके माध्यम से मानव जीवन की विरूपताओं तथा विचित्रताओं को भी प्रस्तुत किया । इसमें व्यक्ति के ऐसे मानसिक स्तरों का भी चित्रण किया गया जिनके द्वारा अवचेतन के अत्यन्त सूक्ष्म स्वरूपों का उद्‌घाटन हुआ । अवचेतन मन का यह व्यापार सम्पूर्ण रूप से इस कहानी पर हावी रहा । कहानी का `मैं ` अपने घर की चहारदीवारी से बाहर निकलने के लिए तरह-तरह के मनसूबे गढ़ता रहता है और स्वप्न देखता रहता है, परन्तु इसमें खालिस कल्पना की ही उड़ान नहीं, बल्कि तर्क की झोंक भी है, जिसके कारण कहानी-नायक पाठकों की सहानुभूति अर्जित करने में सफल रहा ।

कहानी में फैंटेसी, संत्रास, जिजीविषा, दुर्बोधता और अमूर्तीकरण का बड़ा हौआ बांधने के कारण यह कहानी विश्वसनीयता के ढर्रे से कट गयी ।

परिणामस्वरूप कहानी का पूरा ढांचा बनावटी लगता है। शिल्प प्रयोग के प्रति अकारण मोह के चलते यह कहानी, अकहानी की ओर बढ़ती सी दिखाई पड़ती है। परन्तु इस कहानी के माध्यम से लेखक ने जिस विषयवस्तु को पाठकों तक पहुंचाना चाहा था, उसमें वह काफी सफल रहा। एक असंतुलित मानसिक बुनावट को उसके जीवंत रूप में उभारने के लिए इसी प्रकार की शैली ही उपयुक्त होती है, जिसका कि कहानीकार ने प्रयोग किया है।

`माई का शोक गीत ` संग्रह, सन् 1992 ई०

इस संग्रह की कहानियां दूधनाथ सिंह के कहानी विकास-क्रम का एक दूसरा और अधिक दमदार रूप हमारे सामने प्रस्तुत करती हैं। सातवें दशक का उत्तरार्द्ध जबकि `अकहानी` आन्दोलन अपने चरम पर था, अतः इससे कहानीकारों का प्रभावित होना स्वाभाविक ही था ; परन्तु इसके साथ ही साथ कहानीकारों द्वारा सामाजिक एवं राजनीतिक दृष्टि से बुनियादी और व्यवस्थागत परिवर्तन की आकांक्षा को रूपायित करनेवाली कहानियां भी लिखी जा रही थीं। दूधनाथ सिंह ने इस संग्रह में इसी व्यवस्थागत परिवर्तन को ही लक्ष्य कर के कहानियाँ लिखीं, जो अपने समय के सामाजिक और राजनीतिक प्रश्नों के साथ-साथ जनता की पीड़ा, आकांक्षाओं और उम्मीदों से गम्भीर रूप में जुड़ीं। इस अकहानी आन्दोलन का ज्वर उतर जाने के बाद दूधनाथ सिंह एक लम्बे समय तक चुप्पी साधे रहे। उनके रचनात्मकता के दूसरे दौर की सहभागी कहानियाँ न केवल अकहानी के प्रभाव से मुक्ति का प्रमाण प्रस्तुत करती हैं ; बल्कि एक नये सिरे से कहानी विधा के क्षेत्र में सक्रिय और संश्लिष्ट संरचना की वापसी का भी संकेत देती हैं। इस दौर की कहानियों का भारतीय परिवेश और उसके यथार्थ धरातल पर जीने वाले मनुष्यों के सामाजिक सन्दर्भों में पिसने वाले व्यक्ति की चीख-पुकार से निकटता का सम्बन्ध उभरता है। जैसा कि कहानीकार ने इस संग्रह के आवरण पृष्ठ पर इस बात को स्वीकार करते हुए लिखा है --

`सकारात्मक एवं सहज संवेदनाएं, जिन्हें दर-किनार कर कहानी में अध्यात्म और दर्शन की थोथी चर्चा उठायी जा रही है, ये कहानियां उसके विरुद्ध हैं, और यथार्थ निष्ठ सामाजिक सन्दर्भों में जीवित मनुष्य से गहरे तक जुड़ी हुई हैं। भारतीय मनुष्य के स्वप्न और संघर्ष और उसकी मुक्ति की छटपटाहट और अवरोध, यानी उसका अतीत और भविष्य उसके इसी जीवित वर्तमान में पहचाने जा सकते हैं।`[14]

इस प्रकार इस संग्रह की कहानियों में संवेदना के कई धरातल दिखाई पड़ते हैं। `सपाट चेहरे वाला आदमी` संग्रह के प्रकाशन के साथ,जो दूधनाथ सिंह एक शहरी निम्न मध्यवर्ग के कहानीकार के रूप में उभरे थे, उन्हें यह शहरीपन ज्यादा दिन तक लुभा नहीं सका। परिणामस्वरूप इस संग्रह में उन्होंने बहुत कुछ गाँव की शुद्ध माटी और दिखावे से रहित, सरल व्यवहार वाली ग्रामीण संस्कृति में जीने वाले भोले-भाले ग्रामीणों के अंतस्थल को टटोला। सातवें दशक के कहानीकारों में दूधनाथ सिंह लगभग अकेले ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्होंने जिंदगी के रूबरू खड़े होकर, गम्भिर ढंग से उसकी विसंगतियों को देखा और प्रभावी ढंग से उसे व्यक्त किया। उनके इस संग्रह की कहानियों में कहानीपन भी है और नहीं भी है; यानी दोनों ढंग की कहानियां यहां मिलती हैं। इस संग्रह की कहानियों में लेखक द्वारा शिल्प के सजावट का उतना आग्रह नहीं, फेंटेसी का अकारण मोह भी नहीं, साथ ही प्रतीक विधान कलात्मक, सरल और अर्थ गर्भित है, भाषा में ज्यादा उलझाव नहीं, बल्कि सपाटबयानी और भावुकता का पुट अवश्य मिलता है। परिणामस्वरूप इस संग्रह की कहानियां पूर्ववर्ती कहानियों की तुलना में अधिक विश्वसनीय, प्रभावशाली और मानव मन को छूने वाली हैं। इस संग्रह की कुल पांच कहानियां, जो इस प्रकार हैं -- `हुँडार`, `आर्ज मेकवान`, `गुप्तदान`, `लौटना` और `माई का शोक गीत`।

`हुँडार`

`हुँडार` भोजपुरी बोली का एक शब्द है जिसका अर्थ होता है `भेड़िया`। परन्तु यहां यह शब्द प्रतीक रूप में प्रयुक्त हुआ है। `हुँडार` एक ऐसे व्यक्ति का प्रतीक है जो दुनियां की नजर में पैसे वाला और सम्मानित व्यक्ति है, परन्तु उसका आन्तरिक रूप और चरित्र पूरा का पूरा जानवर का है, वह इतना स्वार्थी है कि कोई भी अनैतिक कार्य करने में उसे किसी प्रकार की हिचक नहीं है। यहां तक कि एक बेबस और शोषित महिला नौकरानी के साथ जबर्दस्ती डरा धमका कर सम्भोग करता रहता है। ऐसे व्यक्ति को `हुँडार` नहीं तो और क्या कहा जा सकता है? इस प्रतीक की सार्थकता प्रमाणित करते हुए नौकरानी का यह क्षोभ भरा कथन उल्लेखनीय है --

> `हों सोचों कि बहू जी आयेंगी तो हमीं को कलंक लगेगा। सो, हम दया आइ गयी साहब जी। हमसे मालिस करवाइस ... औंर जबर्दस्ती कीस। ... पूरा हुँडार है साहब जी। आदमी के कौनो लच्छन नहीं ओके भीतर।`[15]

कहानी आज के तथाकथित शरीफ व्यक्ति की चालबाजी, मक्कारी, धोखेबाजी और हिकारत भरी जिंदगी को खुल्लम-खुल्ला करती है। आज मनुष्य, मनुष्य की कमजोरी का इतने घिनौने ढंग से फायदा उठायेगा सोचा नहीं जा सकता, परन्तु यह मनुष्य ही है जो सब कुछ करने के बाद भी ऐसा नाटक करता है जैसे कि कुछ हुआ ही न हो। परंतु यहां तो हम-आम में सब नंगे हैं, कोई व्यक्ति तभी तक शरीफ बना रह सकता है, जब तक कि उसकी पोल न खुली हो; पोल खुल जाने पर उससे बड़ा `हुँडार` शायद फिर कभी न मिले। कहानी का मुख्य पात्र `राय साहब` ऐसे ही पात्र हैं जिन्होंने अपनी तरक्की के चलते पुरानी उपलब्धियों को पीछे छोड़ दिया। उन्होंने प्राइमरी के टीचर से लेकर यूनीवर्सिटी के प्रोफेसर तक का सफर अपनी चापलूसी, घूंस, पहुँच और हें-हें-हें करते रहने की अदा से प्राप्त किया। जिसे दलाली करने, अपना काम निकालने के लिए

किसी के सामने सीस काढ़ने और अत्यंत निपुणता के साथ तुरंत कहानी गढ़ देने में जरा सी दिक्कत न महसूस होती हो । अपने दुश्मन से बदला चुकाने केलिए उसके लड़के को `थर्ड क्लास` का अंक देने में जिसे कूटनीति का उत्कृष्ट रूप दिखाई देता हो । पत्नी की अनुपस्थिति में नौकरानी के साथ डरा धमका कर मुँह काला करने और अपने बचाव के लिए सारी अक्लमंदी को दांव पर लगा देने ; यहां तक कि लाचार औरत को घूस देकर पुलिस से पिटवाने में जो आनन्द अनुभव करता हो, उसे हम `हुँडार` ही कहेंगे ।

कहानी के माध्यम से कहानीकार ने यह प्रश्न खड़ा किया है कि आज़ादी के इतने दिन बीत जाने, लगातार नारी आन्दोलन के चलते रहने, संविधान द्वारा नारी को बराबरी का दर्जा देने और समाज के हर क्षेत्र में नारी के आगे आते रहने के बावजूद भी आज नारी किस तरह से पुरुष वर्चस्व के तहत शोषित पीड़ित है, वह लगातार अव्यवस्था, भुखमरी, लाचारी, अत्याचार और जुल्म का शिकार होती चली जा रही है । अत: जब तक समाज को पुरुष प्रधान `हुँडारों` से मुक्त नहीं किया जाता, तब तक नारी की वास्तविक स्वतंत्रता रंग नहीं ला सकती है ।

`जार्ज मेकवान`

कहानी में `जार्ज मेकवान` महज एक कलाकार का नाम ही नहीं, बल्कि यह एक कलाकार की नियति, संघर्ष और उसकी बदलती मान्यताओं का सही खाका है । यह कहानी कलाकार के साथ इण्टरव्यू लेने की पृष्ठभूमि में लिखी गयी । परिणामस्वरूप इसमें उन सारी कठिनाइयों को बिना लाग-लपेट के साथ प्रस्तुत किया गया जो कि इंटरव्यू के दौरान सामने आती हैं । कला के क्षेत्र में होने वाली सारी कलाबाजी, कला गैलरी में कलाकार के नाम की पट्टी का प्रयोग जगह हथियाने के लिए किया जाना आदि कला क्षेत्र में बढ़ने वाली बुर्जुआगीरी को सामने प्रस्तुत करती है ।

यह कहानी कला के प्रति समर्पित एक सच्चे कलाकार की वास्तविक जिंदगी की ट्रेजेडी का खुल्लम-खुल्ला बयान है, जिसने पैसों के खातिर अपनी कला को कभी मरने नहीं दिया, जो कलाकार होकर भी जिन्दगी से कटा नहीं, बल्कि वह जिंदगी में गहरे और गहरे धँसता चला गया । इसी के चलते उसे अपनी बदहाली और कंगाली का कोई गम नहीं था, वह समाज से नहीं बल्कि समाज उससे गम्भीर रूप में जुड़ गया । हर गली-मुहल्ले में उसके राह चलने के निशान दिखाई पड़ते हैं । यही है सच्चा कला प्रेमी । परन्तु आज की विडम्बना देखिए । इतना कुछ सम्मान, जनता का प्यार, कला में पैठ होने के बावजूद अंतिम समय में कलाकार धन के अभाव में टूट गया और सारे आदर्शों को ताक पर रख कर पूंजीवादी संस्कृति के हवाले हो गया ।

यह कहानी, कला के क्षेत्र में भी दांव-पेंच और राजनीति के हथकण्डे को मुखर करती है । इतना महान चित्रकार, दलित आन्दोलन का जनक, जिसे कला विभाग से निकाला गया । अकादमी द्वारा उपेक्षित रहे इस कलाकार पर एक पुस्तक तक न छप सकी । कला गोष्ठियों से उपेक्षित यह चित्रकार जीवन में काफी समय तक गरीबी की मार सहता रहा । कलाकार की पैठ जन-जन तक होती है । सारे लोग उसे प्यार करते हैं । बदले में वह सब को प्यार करता है । `जार्ज मेकवान` के घर का पता `डाली रोड` हर किसी की जुबान पर था, आटो वाला, बस के यात्री, जिससे पूछो, वही `जार्ज मेकवान` को जानता था । राह जाते हुए लोग बता सकते थे कि जार्ज मेकवान अभी यहां से गुजरे, गज़ब की लोकप्रियता हासिल होने वाले इस कलाकार का अंतिम समय में अपने सारे आदर्शों से मोहभंग हो जाना आज के कला जीवन की विडम्बना को गहराई से रेखांकित करती है । जिस दलित आन्दोलन के आदर्शों के चलते `जार्ज मेकवान` जीवनभर जिल्लत, बदहाली और गरीबी को झेलते रहे, उसका इस तरह से टूट कर बिखर जाना और अमेरिका की उपभोगतावादी संस्कृति में पैसों की खातिर बिक जाना आज के समाज की गहरी विसंगति की उन परिस्थितियों को उजागर करती है जिसमें एक कलाकार पूरी तरह से नष्ट हो जाता है ।

`गुप्तदान`

`गुप्तदान` इस कहानी में अर्थ गर्भित प्रतीक के रूप में प्रयुक्त हुआ है। यह दो मित्रों की स्वार्थरहित मित्रता और एक दूसरे पर जी-जान से मर-मिटने वाली अदा से भरपूर है। यह नहीं कि कहानी के दोनों पात्र बहुत ही आदर्शवादी व्यक्ति हैं, बल्कि वे भी इस दुनिया में जीने वाले फरेबी, जाल-साज, मक्कार, क्रूर और स्वार्थी हैं। परन्तु उनके ये सारे अवगुण और स्वार्थ उनकी पवित्र मित्रता में आड़े नहीं आते। कहानी के पांडे जी जिनके अभिन्न मित्र `मीता` वर्तमान सरकार में `केबिनेट` मंत्री हैं, फिर भी `पाड़े जी` अपनी मित्रता के चलते उन से किसी प्रकार का काम नहीं निकालना चाहते। यहां तक कि उनके साथ ज्यादा अपने को दिखाने की कोशिश भी नहीं करते। यदि एक मित्र इस प्रकार निस्पृह भाव से दोस्ती अदा कर रहा है तो दूसरा मित्र जो कि मंत्री है, वह अपने मित्र के लिए कुछ करना चाहता है ; परन्तु प्रत्यक्ष रूप में वह उसके मित्र को स्वीकार नहीं होगा। इसलिए उसके द्वारा एक प्लान के तहत भीड़ के सामने अपने मित्र को बड़े लाड़ के साथ बुलाना, फिर उसके गले से लिपट जाना, कान में सब को दिखाने के लिए झूठ-मूठ कुछ कहना आदि के द्वारा उन्होंने अपने मित्र पाड़े जी को वह `गुप्तदान` दिया जिसकी खबर शायद पाड़े को नहीं लगी। परिणाम स्वरूप पाड़े के धन्धे का रास्ता खुल गया और लोग उन्हें मंत्री जी का अभिन्न मित्र समझ कर अपने काम के लिए टूट पड़े, यह उसी गुप्तदान का प्रभाव था।

कहानी आज की मूल्यहीन राजनीति पर व्यंग्य है। जिस राजनीति से हिन्दुस्तान का छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा धंधा प्रभावित होता हो, यहाँ तक कि दो व्यक्तियों की दोस्ती भी इस राजनीति से प्रभावित होती है। दो विचारधाराओं के संघर्ष के चलते दोनों मित्रों का आपस में झगड़ जाना और नैनी जेल तक सफर तय करना उनके राजनीतिक जीवन का पहला कदम साबित हुआ। दल-बदल राजनीति का घृणित और वीभत्स रूप का उभार राजनीतिज्ञों की खाल उतार देती है - `पाड़े जी` का पहले मार्क्सवादी, फिर कांग्रेसी, भारतीय क्रान्तिदल, भूदान आन्दोलन, पुनः कांग्रेस और अंत में लोकदल में पनाह

का रूप विचारधारा के प्रति समर्पणहीनता की अच्छी मिसाल है जो यह प्रमाणित करता है कि आज राजनीति का सबसे बड़ा फायदेमंद और सफलतम नुस्खा मूल्यहीनता और मौका-परस्ती है। जिसके चलते राजनीति कोठे की वेश्या हो गयी है, जिसे जो चाहे जिस रूप में प्रयोग करे और जब चाहे पाल्हा बदल कर दूसरी के साथ रंगरेलियां मनाये।

नेताओं द्वारा अपने अधिकार का अनुचित प्रयोग, घूसखोरी, काला-बाजारी, सारे के सारे अवैधानिक कार्यों का समापन और इस राजनीतिक व्यभिचार में निरंतर दम तोड़ने वाली जनता की चीख-पुकार को देखते हुए भी आंखें मूँद लेने वाली कुत्ता-घसीट राजनीति का यह जो पहलू कहानी के माध्यम से उभारा गया है, उसका आज के प्रजातांत्रिक राष्ट्र में यथार्थ के धरातल पर विशेष महत्व है, जो प्रजातंत्र को नंगा ही नहीं, बल्कि बेजान साबित कर देती है। `पैसा कहीं से भी आये, इधर आते ही पवित्र हो जाता है`[16] जैसा कहानी का कथन पूँजीवादी भ्रष्ट व्यवस्था के क्रूरतम रूपसे नकाब को एक झटके के साथ उलट देती है ; जिसके पीछे शोषित, पीड़ित और जर्जर जनता का प्रत्येक श्वास के साथ उठने-बैठने वाला पेट भारतीय लोकतंत्र के सीने पर दो बूँद आँसू टपकाने के लिए विवश हो जाता है।

`लौटना`

कहानी में `लौटना` शब्द गहरे सांकेतिक अर्थ की अभिव्यक्ति करता है। उम्र की दौड़ में निरंतर बढ़ते जाने पर हमारा बचपन पीछे छूट जाता है और हम आगे निकल जाते हैं। युवावस्था के दिनों में इसकी चिंता नहीं रहती क्योंकि शरीर में असीम शक्ति, बौद्धिक क्षमता और कुछ कर दिखाने की तीव्र लालसा के चलते, हमारे पास वक्त ही नहीं बचता ; परन्तु ज्यों ही हम बुढ़ापे के आगोश में गिरते हैं, शरीर की शक्ति क्षीण होने लगती है, संसार की चीजों में रुचि नहीं रह जाती और सगे सम्बन्धियों की उपेक्षा से मन ऊबने लगता है तो हमें

अपने अतीत यानी बचपन की ओर `लौटना` पड़ता है। व्यक्ति बुढ़ापे के आयने से बार बार बचपन की ओर झांकता है तो भावुकतावश अपनी आंखों के नीचे हल्का सा पानी महसूस करता है। वह अपने बचपन में पुन: `लौटना` चाहता है परन्तु यह असम्भव है। अत: वह किसी बच्चे के ही साथ खेलते हुए अपनी उम्र को भूल कर बचपन की स्मृतियों में खो जाता है। यही कहानी का `लौटना` है।

कहानी में एक बच्चे की खेल प्रक्रिया और उसकी सम्पूर्ण हरकतों एवं उनके बीच आसक्त होने वाले दो बुड्ढों की मानसिकता को मनोवैज्ञानिक आधार पर चित्रित किया गया है। `गोंसाई` जो दूसरा बुड्ढा है, वह भी बच्चे के साथ पार्क में खेलना चाहता है परन्तु दूसरा बुड्ढा उसे ऐसा करने देना नहीं चाहता क्योंकि गोसाई गंदे कपड़े पहने हुए है, फिर भी वह बच्चे से खेलने का मौका निकाल लेता है और अपने बाल झटक कर जीभ निकाल कर बच्चे को आकर्षित करता है। बच्चा भी वैसी ही नक्ल करने लगता है। गोसाई से दूसरा बुड्ढा बात नहीं करना चाहता। फिर भी वह अपनी कहानी सुनाने का मार्ग खोज लेता है और सारी बात कह डालता है। बच्चे के साथ खेलने की उसकी तीव्र इच्छा जिसकी पूर्ति न हो पाना परिणामस्वरूप बच्चों की ओर ललचाई दृष्टि से देखना और उसके साथ खेलने की ललक के द्वारा बूढ़े व्यक्ति का स्पष्ट मानसिक बिम्ब कहानी ने उभारा है।

कहानी बढ़ती उम्र के प्रति चिंतित बूढ़े व्यक्ति की मनोवैज्ञानिकता को प्रस्तुत करती है, बूढ़ा व्यक्ति जिस उम्र की सीमा से आगे निकल आया है, उससे आगे वह अन्य किसी को देखना नहीं चाहता। वह सदैव एक बच्चे को बच्चा ही देखना चाहता है। परिणामस्वरूप यह आशंका उसे हर समय दबोचे रहती है कि कहीं बच्चा भी हमारी ओर तो नहीं आ रहा है --

> `यह जो घुँघरदार केशों वाला नन्हा मसीहा है .... क्या आप नहीं चाहते कि यह सदियों तक वैसे ही बना रहे ?`[17]

कहानी में दोनों बुड्ढों की मानसिक बुनावट में जो समानता है वह उम्र की रजामंदी है। हर बूढ़ा व्यक्ति उम्र के साथ इसी मानसिकता से गुजरता है, बुढ़ापा ही वह बिन्दु है जहां पहुंच कर एक बच्चे और बूढ़े में ज्यादा फर्क नहीं रह जाता क्योंकि बूढ़े को बच्चे की हर अदा के साथ उसका बचपन नजर आता है और वह उसमें अपने को भुला देता है, इधर बच्चे को भी किसी ऐसे खिलौने की जरूरत होती है जिससे वह दिल खोलकर उलझ सके और इस खिलौने के रूप में बूढ़ा व्यक्ति सबसे उपयुक्त साबित होता है क्योंकि उसे भी समय बिताने के लिए किसी ऐसे ही उपकरण की तलाश रहती है जो उसका मनोरंजन कर सके। अत: यहाँ बच्चे और बूढ़े एक दूसरे के पूरक हैं, इसी मनोवैज्ञानिकता को कहानी की सीमाओं में पिरोया गया है।

`माई का शोक गीत`

यह कहानी स्वतंत्रता आन्दोलन के साथ-साथ चलने वाले नारी मुक्ति आन्दोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि में लिखी गयी। यह कहानी किसी व्यक्तिगत पात्र से ही सम्बन्धित नहीं, बल्कि इसके पीछे समस्त नारी जाति की पीड़ा, कुण्ठा, और निराशा की अभिव्यक्ति है। वास्तव में यह कहानी नहीं, बल्कि पुरुष वर्चस्व में निरंतर पिसने वाली नारी की दर्द भरी दास्तान है जिसके चलते औरत द्वारा खाना बनाना, कपड़ा कींचना, आटा पीसना और सारा का सारा काम करने के बावजूद बिना बात पतियों द्वारा निरंतर पिटते रहने के विरुद्ध उठने वाली आक्रोश की अभिव्यक्ति है। `गंगा माई ` के शोक का कारण एक तरफ पराधीन देश में विदेशी बेड़ियों से जकड़ी भारत माता है तो दूसरी तरफ पुरुष वर्चस्व में जकड़ी भारतीय नारी है। दोनों की मुक्ति का प्रयास इस कहानी में दिखाई पड़ता है। यह मुक्ति का प्रयास स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान `गंगा माई ` द्वारा किया जाता है जिसमें उनकी प्यारी सखी 'कनिया' की बुरी तरह से पिटाई और उनकी `सोन चिरैया` बिटिया का आत्म बलिदान शामिल है। यह नारी मुक्ति आन्दोलन का पहला दौर था जो पुरुषों द्वारा बड़ी बर्बरता पूर्वक कुचल दिया गया , जिसको याद करके आज भी `गंगा मैया` का

दिल भर आता है और वे रोने के लिए विवश हो जाती हैं। इसी दु:ख भरी दास्तान को वे गांव की औरतों के बीच शोक गीत के रूप में सुनाती हैं। `आँखों देखी कानो सुनी स्वतंत्रता की लड़ाई ` के ही तरह नारी मुक्ति आंदोलन का यह प्रथम चरण, जो इस आंदोलन के लिए शहीद होने वाली महिलाओं की याद में गंगा माई द्वारा रो-रो के प्रस्तुत किया गया है, जिसे एक परम्परा के रूप में प्रतिवर्ष विशेष अवसर पर आयोजित किया जाता है, यह बताने के लिए कि आज तुम जिन सारी स्वतंत्रताओं का उपभोग कर रही हो, वह किस-किस के त्याग और बलिदान का फल है।

कहानी `गंगा माई ` पात्रा के स्मृति बिम्ब पर उभरने वाले स्वतंत्रता आन्दोलन की मुख्य घटनाओं और उसकी पृष्ठभूमि में गंगामाई की जवाँदानी और शेरदिली का उग्र रूप कथावाचक की भूमिका से स्वयं `गंगा माई ` उभारती चलती हैं, बीच-बीच में अन्य औरतों द्वारा टोका-टाकी और रस लेने की प्रक्रिया में कसी जाने वाली फब्ती से कहानी में व्यवधान के साथ-साथ रोचकता बढ़ती जाती है। थोड़ी दूर चलने के बाद यह गम्भीर रूप ले लेती है और बीच-बीच में औरतों की सिसकियां माहौल में आने वाली तब्दीली को पुन: गम्भीरता की ओर बढ़ा कर भावुकता का समावेश करती रहती हैं। पुरुष द्वारा लगातार घर के अंदर प्रताड़ित की जाने वाली नारी और विदेशियों द्वारा निरंतर लूटी जाने वाली भारत माता दोनों के दु:ख-दर्द में एक समानता झलकती है। उस सामंती व्यवस्था में पुरुष द्वारा नारी को पीटना दातून कूच कर थूकने जैसा आसान था। नारी को अकारण पीटना और उसे रोने भी न देना मानवता के अतीत में भयानक दाग़ है जिसे यह कहानी उभारती है।

कहानी जमींदारी व्यवस्था के क्रूर रूप को उभारने में कोई कसर नहीं छोड़ती। कहानीकार ने नारी-मुक्ति आन्दोलन में अन्य कांग्रेसी नेताओं, यहां तक कि गांधी जी द्वारा सक्रिय सहयोग न दिये जाने के कारण इस आन्दोलन के प्रति उनकी दूषित मानसिकता के सूक्ष्म रूप को उभारा है, साथ ही नारी मुक्ति आन्दोलन से उठने वाले तूफान और उस प्रक्रिया में बनने वाली नारी

मुक्ति वाहिनी फौज़ों के निर्माण में आड़े आने वाली प्रारम्भिक कठिनाइयों और कमज़ोरियों का चित्रण खूबी किया है ।

`प्रेम कथा का अंत न कोई ` कहानी संग्रह , सन् 1992 ई०

इस संग्रह की कहानियां भी `सपाट चेहरे वाला आदमी` और `सुखान्त` संग्रह की कहानियों के दौर में ही लिखी गयीं । परन्तु लेखक की लापरवाही के कारण कहानियों का यह संग्रह लगभग तीस वर्ष बाद छपा । इसीलिए इन कहानियों में `माई का शोक गीत` संग्रह वाली मानसिकता का दर्शन नहीं होता है, बल्कि इसमें `सुखांत` और `सपाट चेहरे वाला आदमी` संग्रह की प्रवृत्ति का और अधिक मुखर रूप उभर कर सामने आया है । यह संग्रह इस बात में अन्य तीनों संग्रहों में भिन्न है कि इसमें जितनी भी कहानियां रखी गयी हैं, उन सब का मुख्य विषय प्रेम है । इसी को ध्यान में रख कर कहानीकार ने इसका शीर्षक `प्रेम कथा का अंत न कोई ` रखा जबकि अन्य तीनों संग्रहों का नामकरण उसमें निहित अंतिम कहानी के नाम पर रखा था ।

एक और बात जिसे इस संग्रह की कहानियां आगे बढ़कर प्रस्तुत करती हैं, वह है लेखक का यथार्थ के प्रति आग्रह और सत्य को उधेड़कर सामने प्रस्तुत कर देने की कला जिससे कि पाठक तपाक् से कह दे कि यह वही तथ्य है जिसकी हमें तलाश थी । इसी सत्य घटना क्रम के चलते इस संग्रह की कहानियों को छपने में भी देर हुई जिसकी ओर लेखक ने इशारा किया है --

> "वे सभी, जो इनमें हैं, वे अपने होने के सत्य से कहानीकार पर दु:खी थे । दु:खी ही नहीं, वे अपने होने के सत्य को अपने साथ ही मिटा देना चाहते थे । और प्रकट हो जाने से उनकी नैतिक दुनिया का नकाब जैसे किसी ने खींच कर उतार दिया ।"[18]

इस संग्रह की कहानियां प्रेम के रूप को प्रस्तुत तो करती अवश्य हैं, परन्तु किसी देवदास, लैला-मजनू या शीरी-फ़रहाद का आदर्श नहीं, बल्कि

दैनिक जीवन के साथ-साथ चलने वाले प्रेम, सेक्स और रोमांस का मिला-जुला सपाट और सरल रूप, जिसमें किसी प्रकार की बनावट नहीं है और जो शादी से पहले और बाद में भी चलता रहता है। यद्यपि शादी के बाद विवाहेतर सम्बन्ध को लेखक केवल सेक्स मानता है, प्रेम नहीं। फिर भी अपने चारों ओर जिस तरह का वातावरण है और उसमें जीने वाले लोग जिस तरह का प्रेम स्वीकार करते हैं, मान्यता देते हैं, उसका उसी रूप में चित्रण करना लेखक की मज़बूरी है।

इस संग्रह की कहानियां अधिकांशत: असफल प्रेम को उज़ागर करती हैं। यह असफलता दाम्पत्य जीवन में अधिक भयावह रूप में उभर कर सामने आती है। इनके अन्तर्गत आने वाले पुरुष पात्रों का भी उतना नारी पात्रों पर वर्चस्व नहीं दिखाई पड़ता है, बल्कि इस संग्रह की नारी पात्र स्वयं पुरुष पात्रों के ऊपर हावी दिखाई पड़ती हैं। इसके माध्यम से आज के सामाजिक स्थिति के बदलाव को कहानी छूने का प्रयास करती है। इसके प्रेमी और प्रेमिका इसी संसार के हैं जो आज की स्थिति में असफल प्रेम के चलते कुण्ठा, घुटन, ऊब, बेबसी और अन्तर्द्वन्द्व को ढोते फिरते हैं। इनका यह प्रेम-व्यापार गली में, छत पर, पढ़ते समय, बिस्तर पर, क्लब और होटल में, पहाड़ों और जंगलों में, सारी जगहों पर थोड़ा सा अवसर मिल जाने पर ही चलता रहता है।

इस संग्रह की कहानियों का प्रेम अधिकांशत: मध्यवर्गीय परिवार के बीच पलने वाले प्रदर्शन रहित और जीवन का अंग है, न कि बाहर से पाठकों के लिए चाशनी के रूप में सेक्स और बिस्तर की गर्माहट का थोपा हुआ लिजलिजापन है। इसके पात्र अपनी शराफत को प्रदर्शित करने के लिए स्वयं की बुराइयों पर पर्दा नहीं डालते, बल्कि दिल के भीतर विद्यमान पशुता, क्रूरता, नादानी और सालिसपन की कमजोरी का जी खोल बयान प्रस्तुत करते हैं और पाठक से यह मांग करते हैं कि अब तुम्हें जो कुछ समझ पड़े कह डालो। हम तो यही हैं ; और यही बने रहेंगे। इसीलिए इन कहानियों के सम्बन्ध में कहानीकार दूधनाथ सिंह का दावा है कि --

`प्रेम को पाने और उसके भीतर से जिंदगी को बांधे रखने के लिए जबर्दस्त इच्छाओं का संसार इन कहानियों में व्यक्त है। इच्छाओं का यह संसार दाम्पत्य के भीतर और बाहर दोनों जगहों पर है। इसीलिए पुराने और परिचित अर्थों में से ये प्रेम कथाएं नहीं हैं। प्रेम को लेकर इसके पात्र अपने अधिकार क्षेत्र से बार-बार बाहर जाते हैं।`[19]

कहानीकार ने इस संग्रह में लीक से हटते हुए सामंती माहौल में औरत को प्रताड़ित करने, जलाने, जहर देने और रस्सी से टॉग देने वाली कला का बहिष्कार किया। फिर भी प्रेम को प्राप्त करने और उसके मार्फत जिंदगी को चलाने हेतु अदम्य इच्छाओं की अभिव्यक्ति मिलती है। इसीलिए ये कहानियां पारम्परिक प्रेम को नकारती हैं और वर्तमान परिवेश में पलने वाले प्रेम का एक दूसरा ही रूप हमारे सामने उभारती हैं जो कि पूर्ववर्ती रूप की अपेक्षा अधिक व्यावहारिक, विश्वसनीय और अन्तर्मन को छूने वाली हैं। संग्रह की कुल पांच कहानियां इस प्रकार हैं --

`वे इन्द्र धनुष`, `बिस्तर`, `ममी तुम उदास क्यों हो `, `सीखचों के भीतर` और `आज इतवार था` आदि।

`वे इन्द्रधनुष`

कहानी में आने वाले शब्द `वे इन्द्रधनुष` से ऐसा लगता है कि जैसे कोई व्यक्ति अपने बीते अतीत की उन सुखद स्मृतियों के लिए आह भर रहा हो, जो अब शायद पुन: नहीं मिल सकतीं। यह पात्र के मानसिक रंगीलेपन के एक छोर को उभारती है। साथ ही पिछली जिंदगी की क्लांत और दर्द भरे मन की मरोड़ को भी मुखर करती चलती है। कहानी का `निरंजन` अपनी उन सुखद स्मृतियों को बार-बार कुरेदता है और अतीत में शराब के नशे के साथ प्राय: भटकता रहता है। उसे अपने वे पूर्ववर्ती प्रेम प्रसंग इसलिए कुछ ज्यादा ही परेशान करते हैं क्योंकि उस लड़की में उनके प्रति समर्पण का भाव तो पूरा का पूरा था परन्तु उसकी

परिणति परिस्थितिवश शादी में न हो सकने की कसक आज भी उसके अन्तस्थल को कंपा-कंपा देती है ।

लेखक का इन्द्रधनुष से तात्पर्य उन अतीत की सुखद स्मृतियों से है जो एक पल को `निरंजन` के मन:पटल पर उभरती हैं और अपने सारे आलोक से उस के मानस को दीप्त एवं आह्लादित कर उसे बेजान बनाते हुए चली जाती हैं । कहानी के भीतर (कीर्ति) के स्वेटर के नीचे चलते वक्त साड़ी में पड़ने वाली सलवटों के बनने और मिटने की प्रक्रिया में भी `इन्द्रधनुष` का दर्शन होता है जो कि `निरंजन` की स्मृति में आज भी जीवित है । कहानी में एक साथ दो स्तरों पर प्रेमी की असफलता का रूप प्रकट होता है, परन्तु पहली असफलता को वह शायद भूल चुका है । फिर भी दूसरी असफलता के साथ-साथ पहली प्रेम असफलता की कड़ी को लेखक ने कुछ इस प्रकार जोड़ दिया है कि उसकी याद बीच-बीच में न चाहने पर भी आ जाती है । `निरंजन` के प्रेम का दूसरा बिन्दु `कीर्ति` और मित्र `अनिल` कुछ ऐसी बातों को उठा कर पूर्व प्रेमिका `सीमा` (दीदी) के भूली-बिसरी कहानी को कोंच-कोंच कर उभारते हैं ; परन्तु इस प्रक्रिया में यह नहीं स्पष्ट हो पाता है कि इन दोनों पात्रों द्वारा बार-बार `सीमा` की बात पर जोर देना और बीच-बीच में टोका-टाकी करना उसके प्रति सहानुभूति का परिचायक है या निरंजन को उसके माध्यम से उस प्रेम के लिए चौकन्ना करने की कोशिश ।

कहानी स्मृति बिम्ब के द्वारा पात्र के जेहन में समाई हुई लड़की के बिम्बों को कई कोणों और परिस्थितियों में उभारती है ।लड़की का पहनावा,उठना-बैठना, सीढ़ियों पर चलते समय लगातार पीछा करती दो आँखें, देर से आने के लिए मौन नाराजगी, उसको तोड़ने के लिए `निरंजन` द्वारा उसके दोनों गालों को अपने हाथों में भर लेना, और फिर उसका भरभरा आना आदि, पात्र की मानसिकता में होने वाले बदलावों को खूबी निखारने के प्रयास में कहानी मनो-वैज्ञानिक गहराई में सिमटती चलती है । पहले निरंजन द्वारा लड़की को छूने में किसी प्रकार की हिचक न होना, परन्तु अब समय के चलते उसके किसी अंग को

छूने में रोमांच की प्रतिक्रिया उसकी आसक्ति और युवा मनोवृत्ति का परिणाम है। व्यक्ति के अन्दर सेक्स को लेकर होने वाली चुहलबाजी और भावनाओं का उतार-चढाव, उससे उत्पन्न होने वाला आंतरिक द्वन्द्व, संकोच, सामाजिक परिहेज, स्वीकृति और अस्वीकृति के प्रति हिचक, अंग स्पर्श से होने वाली सिहरन और पुलक, एकांत का एहसास क्षण भर में बढ़ जाने वाली धड़कन आदि न जाने कितने आवेगों की झंकार इस कहानी में सुनाई पड़ती है।

कहानी प्रेम का एक त्रिकोण प्रस्तुत करती है। `कीर्ति ` के प्रेम में एक साथ दो पात्रों `निरंजन` और `अनिल` का होना और उन दोनों को छोड़ कर किसी तीसरे से विवाह आज के इसी तरह से घरेलू माहौल में चलने वाले परिणामहीन प्रेम की निरर्थकता साबित करती है। इस प्रकार यह कहानी दो प्रेमियों का एक प्रेमिका के लिए शुरू से अंत तक प्रयास है। वे उसकी हर तरह से मदद करते हैं, हर दम सहयोग के लिए तैयार रहते हैं, उसके साथ ढेर सारी खुशी के पल बिताते हैं, वह भी उन दोनों के साथ घुल-मिल सी जाती है। परन्तु उस प्रेमिका के द्वारा घर बसा लेने पर दोनों प्रेमी टूट जाते हैं। बस रह जाती हैं तो केवल इन्द्रधनुषी यादें जो उन्हें बीच-बीच में तरोचती रहती हैं और बार- बार घायल होने के लिए छोड़ देती हैं।

`बिस्तर`

`बिस्तर` एक मूर्त वस्तु के साथ-साथ कहानी के नायक की भावनाओं और अतीत से जुड़ी यादों का प्रतीक है ; जिसके प्रति नायक का अत्यधिक लगाव है। परिणामस्वरूप सारी कहानी इसी `बिस्तर` से प्रारम्भ होकर इसी के इर्द-गिर्द घूमती रहती है। वास्तव में बिस्तर का सम्बन्ध प्राय: पति-पत्नी से होता है, इसी के चलते यह कहानी भी पति-पत्नी के बीच बदलने वाले रिश्तों को उभारती है जो इस क्षेत्र में एक नई दिशा की खोज है। कभी-कभी हम किसी बात को न चाहते हुए भी एकाएक गुस्से या जोश में स्वीकृति तो देते हैं परन्तु हमें इसके पीछे पछतावा होता है, पर अब तो बात काटी नहीं जा सकती।

इसीलिए स्वीकृति कर्ता को अन्दर ही अन्दर खुद को लगातार खाते रहना पड़ता है। इसी मनोवैज्ञानिकता की चपेट में `बिस्तर` को माध्यम बना कर कहानीकार ने पात्र की मानसिक जटिलता को खोलने की गरज से अतीत की धुंधली पड़ती रेखाओं को बड़ी चमक-दमक से पेश किया है। अक्सर ऐसा होता है कि हमें जिस व्यक्ति से बहुत अधिक लगाव होता है, उसकी अनुपस्थिति में, खास कर जबकि उसके पुन: आने की सम्भावना न हो तो हमें उसके द्वारा प्रयोग की जाने वाली छोटी-छोटी चीजों से कहीं ज्यादा लगाव हो जाता है, उन वस्तुओं में उस अजीज व्यक्ति की महक आती है। उसे देखने पर स्मृतियां सजग हो जाती हैं, फिर हम अतीत की ओर खिंचने में एक सुखद गीलापन अनुभव करते हैं। ऐसा ही कुछ इस कहानी के नायक `कुमार` के साथ घटित होता है और इसी प्रक्रिया में वह अपने बीते जीवन के प्रत्येक बिन्दु तक दौड़ लगा लेता है।

कहानी विवाहेतर जीवन में चलने वाले प्रेम को बड़े ही बेबाक ढंग से प्रस्तुत करती है, जिसमें किसी भी प्रकार का डर, आशंका और अपराध बोध का अनुभव नहीं। साथ ही इस विवाहेतर प्रेम प्रसंग में स्त्री की प्रमुख भूमिका की ओर संकेत भी है। पति इस हद तक निरीह और बेबस हो जायेगा कि वह पत्नी की ज़िद पर उसे बच्चों के साथ उसके प्रेमी को सौंप आयेगा और स्वयं पूरी जिंदगी घुट-घुट कर उसकी यादों में जियेगा। ऐसा तो अभी हमारे समाज में नहीं मिलता है, परन्तु इतना तो कहा जा सकता है कि निकट भविष्य में ऐसी परिस्थितियों के आने का संकेत मिल रहा है जो इस कहानी की सार्थकता को प्रमाणित करेंगी। फिर भी कहानीकार दूधनाथ सिंह ने अपनी इस कहानी को आज के परिपेक्ष में बहुत कुछ बनावटी माना :-

> `उस कहानी (`बिस्तर`) में एक वातावरण पति के द्वारा बनाया जाता है, वह वातावरण दरअसल, कहानीकार द्वारा रचा गया। अगर मैं आज वह कहानी लिखता तो उसमें एक पति को इतना निरीह और इतना मुक्त नहीं दिखाता।`[20]

`ममी तुम उदास क्यों हो `

`ममी तुम उदास क्यों हो ` एक बच्चे की अपने माँ की उदासी के प्रति संवेदनात्मक प्रश्न है। बच्चा ही नहीं बल्कि पूरा का पूरा परिवार `मिसेज रेवाड़ी` (ममी) की उदासी का कारण जानने के लिए बेचैन है परन्तु मिसेज रेवाड़ी वह राज की बात नहीं बताती। इस प्रकार कहानी का अंत इस रहस्य के ही साथ हो जाता है, परन्तु बच्चा अपनी मां की उदासी का कारण न जान सका। अंतत: इसी उदासी के चलते अन्दर-अन्दर गहरी वेदना और अन्तर्द्वन्द्व को झेलते माँ का विच्छिप्त अवस्था में पहुंच जाना इस प्रश्न को और भी उलझा देता है।

`रेवाड़ी' मेम साहब की उदासी का कारण उनकी इच्छा के विरुद्ध मजबूरी-वश पूर्व प्रेमी `सिद्धीकी` से धोखा खाकर, जबर्दस्ती मिस्टर रेवाड़ी के साथ पिता द्वारा नाथ दिया जाना है। वे अपने पूर्व प्रेम को कभी नहीं भूल पातीं जो उनके मस्तिष्क में गुबार बनकर चिपक गये थे। `मिसेज रेवाड़ी` अपनी उदासी को दूर करने का लातार प्रयास करती हैं, लाख कोशिश करके `सिद्धीकी` के प्रति नफरत जगाना चाहा, इसके लिए उन्होंने क्लब, शराब, यहां तक कि `आगा` और `नागर` जैसे पराये मर्दों का भी सहारा लिया, परन्तु यह अवसाद नहीं गया तो नहीं गया, परिणामस्वरूप इसका भयानक रूप पागलपन के माध्यम से उभर कर सामने आता है। कहानी नारी की पूर्ण स्वतंत्रता से उत्पन्न होने वाली विसंगतियों और कुप्रभावों को रेखांकित करती है ; साथ ही समाज के सामने यह प्रश्न भी खड़ा करती है कि नारी को अपने चाल-चलन, व्यवहार और सामाजिक परिवेश में इतना मुक्त भी नहीं होना चाहिए कि वह गन्दे नाली के कीड़े से भी नीचे गिर जाय, बल्कि उसे स्वतंत्रता के साथ-साथ सामाजिक मर्यादाएं, नैतिक बन्धन और कुछ स्त्रियोचित मानदण्डों को भी स्वीकार करना चाहिए ; परन्तु जो इन सब को स्वतन्त्रता के नाम पर तिलांजलि दे देता है, उसका भी हाल यही होगा जो `मिस रेवाड़ी` का हुआ।

कहानी आज के समाज में भयंकर रूप से फैलने वाले नैतिक चारित्रिक पतन का नग्न रूप पेश करती है। इसके प्राय: सभी पात्र इस संक्रामक विसंगति से पीड़ित दिखाई पड़ते हैं। यहां केवल `मिस रेवाड़ी` ही इस `डिप्रेशन` से ग्रस्त नहीं हैं, बल्कि आज पूरा समाज इस ला-इलाज बीमारी से भयानक रूप से दम तोड़ रहा है। कहानी एक महिला की दु:खद स्थिति का बयान है जो अपने पूर्व प्रेमी से परिस्थितिवश अलग हो गयी, उसकी स्मृतियां अवसाद के रूप में उस महिला के मस्तिष्क में जम गयी हैं। परिवार वाले उन्हें खुश करने के लिए तरह तरह का प्रयास करते रहे और उनको पूरी स्वच्छन्दता देते रहे परन्तु अंत में हुआ वही जिसका सब को डर था।

कहानी अवसाद से ग्रस्त रोगी के चित्रण के साथ-साथ इसका कारण और इसको अधिक उग्र रूप देने वाली परिस्थितियों को भी `पिन प्वाइन्ट` करती है। यद्यपि कहानीकार इसके लिए चरित्रहीनता और आवश्यकता से अधिक स्वच्छंदता को दोषी मानता हुआ दिखाई पड़ता है, परन्तु इसके साथ ही साथ समाज की वे परिस्थितियां भी दोषी हैं जिनके चलते `मिस रेवाड़ी` `सिद्दीकी` से विवाह नहीं कर पातीं और इस तरह अवसाद झेलने के लिए विवश हो जाती हैं।

`सीखचों के भीतर`

कहानी में `सीखचों के भीतर` जैसा प्रयोग परिस्थिति की भयानकता की ओर संकेत करता है जिसके चलते एक पात्र अपनी ही बनाई हुई परिस्थितियों से इस प्रकार घिर जाता है कि उसका सारा जीवन नर्क बन जाता है। उसमें इस अनचाहे परिवेश को तोड़ डालने की हिम्मत कहाँ, उसका हर प्रयास, हर ठोकर, हर झुक-झुक और यहां तक कि सहते जाने की क्षमता भी जवाब देने लगती है। बस रह जाता है एक अवसाद, पीड़ा, घुटन, तिलमिलाहट और स्वयं को कोसतेजाने की व्यर्थ प्रक्रिया। कहानी की पात्रा `सुमित` इसी मानसिक टूटन और अजनबियत की `सीखचों के भीतर` तिलमिल कर मरने जीने को विवश है। वह बराबर एक प्रकार के मानसिक बिखराव का शिकार होती जाती है। एक

तरफ `सोम` के प्रति उसका प्रेम, उसकी यादों से उसे उबरने नहीं देती और वह बार-बार उन्हीं सपनों को संजोने के प्रयास में टूट-टूट जाती है। दूसरी ओर `वसंत` का प्रेम बीच-बीच में उसका ध्यान भंग कर उसे पुनः पीछे की ओर मोड़ता है। `सोम` वह जो अब उसकी जिंदगी से दूर जा चुका है, उसे वह खोना नहीं चाहती और `वसंत` वह जो उसकी जिंदगी के हर मोड़ पर खड़ा मिलता है, उसे वह पाना नहीं चाहती। ऐसे में यदि कोई व्यक्ति असहाय होकर चीखता चिल्लाता है तो यह उसकी नियति कही जायेगी।

कहानी में `सुमित` के जीवन में उठने वाले झंझावात का कारण `सोम` की बीमारी है। जिसके चलते अनजाने में वह `सोम` के साथ बांध दी गयी। शादी के तीन ही खुशी के पल बीते नहीं थे कि `सोम` का पागलपन उस पर हावी हो गया, उजाड़ दी उसने `सुमित` की दुनिया। तब से लेकर आज तक वह `सोम` के ठीक होने के इंतजार में कितनी अनसोई रातें गुजार चुकी परन्तु परिणाम वही ढाक के तीन पात। अब तो `सोम` की शादी भी हो गयी, उसका घर भी बस गया, परन्तु इधर `सुमित` का घर और भी वीरान एवं उजाड़ हो गया। उसके जीवन की बची-खुची आशा भी नष्ट हो गयी।

कहानी आज के दाम्पत्य जीवन में आने वाले बिखराव को उभारती है। आज का दम्पत्ति एक दूसरे के प्रति अविश्वास से भरा हुआ है, अक्सर पति स्वयं चाहे जितने घाटों का पानी पी चुका हो परन्तु पत्नी को बड़े शंकालु मन से देखता है। वह पत्नी से मूर्खतापूर्ण प्रश्न करके, भद्दे शब्दों का प्रयोग कर, उसके मां, बाप को जहन्नुम की सैर करा के और ज्यादा वहशत में आने पर दो चार थप्पड़ की मर्दानगी दिखा कर अपना जीवन नर्क बना लेता है। इसके लिए वह स्वयं जिम्मेदार है। कहानीकार ने `सोम` के पागलपन के माध्यम से मध्यवर्गीय परिवार के नवयुवक की इस ओछी और दूषित मानसिकता को उभारा है, जिसके चलते आज हमारे न्यायालय तलाक की फाइलों से पटे पड़े हैं। वैवाहिक जीवन में पत्नी इस दरार के पीछे पुरुष ही जिम्मेदार है। ऐसा पूरी तरह से सच नहीं

है, बल्कि स्त्रियों को भी एकदम बरी नहीं किया जा सकता है। क्योंकि ऐसा दोनों के वैचारिक मतभेद के कारण होता है। अत: दोनों इसमें बराबर के भागीदार हैं। यद्यपि कहानीकार ने इसकी पृष्ठभूमि में `सोम` का पागलपन रखा है और `सुमित` को पूरी तरह से दोष मुक्त दिखाया है जो आज के परिवेश में पूर्णतया सच नहीं है। आज `सोम` ही इस पागलपन का शिकार नहीं है, बल्कि मध्यवर्गीय समाज का नवयुवक इस नपुंसक मानसिकता से भयंकर रूप से ग्रस्त है, जिसके चलते वैवाहिक जीवन असहयोग, कलह और नर्क का प्रतीक बन गया है, जिससे ऊबे हुए युवक और युवतियां जीवन भर अविवाहित रहने के संकल्प की ओर बढ़ रहे हैं।

`आज इतवार था`

यह कहानी `सारिका` 1972 ई० के फरवरी अंक में `दिनचर्या` के नाम से छपने के बाद इस संग्रह में `आज इतवार था` के नाम से संकलित हुई। कहानी के द्वारा पात्र की उस मानसिकता को उभारा गया है जिसमें उसे इतवार दिन के व्यर्थ में गुजर जाने का तिक्त एहसास होता रहता है। वास्तव में रविवार, छुट्टी एवं मौज मस्ती के लिए होता है जिसके लिए नौकरी पेशे से जुड़े लोग पहले से तैयार रहते हैं; परन्तु यदि व्यक्ति छ: दिन के इंतजार के बाद आने वाले इस दिन का उपयोग अपनी मर्जी से न कर सका तो उस पर एक प्रकार की उदासी सी छा जाती है। इन्हीं परिस्थितियों से कहानी का पात्र गुजरता है और इतवार के व्यर्थ में गुजर जाने वाले कारणों को एक-एक कर प्रस्तुत करता है। इस इतवार के व्यर्थ में चले जाने का कारण कोई घटना, महाविपदा, वज्रपात या असाध्य बीमारी नहीं है, बल्कि स्वयं की मुहबोली पत्नी है जो उसके सारे इतवार का मजा किरकिरा कर देती है।

कहानी आज के पारिवारिक माहौल में, खास कर दाम्पत्य जीवन में आने वाली विसंगति और पत्नी को फेंकते जाने वाले पति की पीड़ादायक नियति को व्यंग्य मिश्रित भाव से उभारती है। कहानी में व्यंग्य तो है परन्तु

वह पति की पत्नी के प्रति उठने वाली भावनाओं की सचाई है। सुबह से ले कर शाम तक, घर से लेकर बाहर तक पत्नी की आज्ञा को घुट-घुट कर दबे मन से ढोने वाले आज के नामर्द चीज मर्द के ऊबाऊ जीवन का बेलाग चित्रण है। जो पत्नी शादी के पहले एक प्रेमिका के रूप में हूर की परी से कम न थी, जिसे पति फूल समर्पित करता था और ढेरों सारी शेरो-शायरी की किमिया-गिरी से भरे पत्र प्रेषित करता था, उसी का आज मांस से थुल-थुल, गले की हड्डी, थल-थलायी चर्बी वाली आदि महसूस होना पत्नी के प्रति पति की ऐसी मानसिकता दाम्पत्य जीवन में बढ़ने वाली कड़वाहट का एक नमूना है।

एक पति किस हद तक पत्नी से त्रस्त हो जायेगा, उसका चित्रण यह कहानी करती है। पति को पत्नी का कोई भी व्यवहार अच्छा नहीं लगता। फिर भी वह दाम्पत्य जीवन की गाड़ी चलाने के लिए चुप रहता है, सहता है ढेर सारे ताने, झिड़की, शर्मिन्दगी, मूर्खतापूर्ण कमेंटरी और पत्नी की 'डिक्टेटरशिप'। बच्चों द्वारा जानवरों की बोली सुनाने के आग्रह पर कुत्ता, बिल्ली, मुर्गा और सियार की बोली सुना देना परन्तु शेर की बोली सुनाने से इन्कार कर देना इस बात की ओर संकेत है कि आज का पति स्वयं को पत्नी से कितना दबा हुआ और डरा-डरा सा महसूस करता है। यह हमारे समाज की सचाई है और जिसे अनदेखा नहीं किया जा सकता है। आज पति पत्नी की हर आज्ञा को मानने, उसके इशारे पर आम को नीम कहने एवं बात-बात पर पत्नी के सामने खीस निपोरने वाली मशीन से अधिक कुछ नहीं है। यह स्थिति सामाजिक सम्बन्धों में आने वाले बदलाव को रेखांकित करती है, साथ ही हर मोड़ पर 'फेमनिस्ट मूवमेंट' की याद दिलाती है। एक ओर जहां पत्नी इतनी सुखी भरपूर मोटी-ताजी, स्वस्थ और भागदौड़ मचाने वाली तथा पारिवारिक जिम्मेदारी को निभाने वाली है, वहीं पति का उबाऊ, नीरस, बात-बात में चिढ़नेवाला, घर में भीगी बिल्ली का रोल अदा करने वाला महज एक पैसा कमाने का यंत्र बन जाना पारिवारिक बिखराव को मनोवैज्ञानिक धरातल प्रदान करता है। जो पति घर में इतना दबा-दबा रहता हो, वही घर के बाहर कितना खुश मिजाज, तरोताजा,

चापलूस, चुटकुले सुनाकर लोगों को लोट-पोट कर देने वाला होता है, परन्तु घर जाते हुए कसाईबाड़े में जाने वाले हड्डहे भैंसे की तरह खामोशी से गुजर जाना इस बात का प्रमाण है कि आज का घर इस तरह के पतियों के लिए किसी बूचड़खाने से कम नहीं, जिसमें वह लगातार कटता हुआ भी जिंदा रहने के लिए विवश होता है।

00

इन उपरोक्त संग्रहों में संकलित कहानियों के अतिरिक्त इनकी कुछ अन्य कहानियां भी हैं जो केवल पत्र-पत्रिकाओं में उपलब्ध हैं। उनमें `जंगली लोग`, `कबंध`, `काशी नरेश से पूछो`, `रेत`, `प्रेम` और अभी तक अंतिम कहानी `धर्म क्षेत्रे कुरुक्षेत्रे` प्रमुख है। इन कहानियों में `जंगली लोग` प्रारम्भिक प्रयास होने की वजह से कहानी संग्रहों में स्थान न पा सकी। `कबंध` को `सुखांत` में स्थान देने के बाद भी दूसरे संस्करण में खारिज कर दिया गया। शेष कहानियां अभी हाल में ही लिखी गयी हैं। अत: इनके भविष्य में संग्रह रूप में निकलने की सम्भावनाएं बनती हैं।

`जंगली लोग`

कहानी बहुत कुछ अन्योक्ति के लिबास में व्यंग्य का पुट लिये है। प्रारम्भिक दौर (सन् 1964, `लहर`, अंक 11) की होने के कारण, इसमें कला और शिल्प की उतनी उड़ान नहीं जितनी इनकी परवर्ती कहानियों में है, फिर भी अपने सपाटपन में ही दो स्तर के सामाजिक माहौल में रहने वाले व्यक्तियों के दिमागी बुनावट को प्रत्येक बिन्दु पर कुरेदती अवश्य है। यह मानसिकता अभिजात्यवर्गीय और निम्न वर्गीय समाज के बीच गहराती खाई को उभार देती है। आज भी ट्रेन और बस में सफर करते हुए लोगों को किसी मजदूर या मैले कुचैले वस्त्र पहने हुए व्यक्ति के सीट पर बैठ जाने पर नाक-भौंह सिकोड़ते हुए देखा जा सकता है। इसके पीछे दो कारण हो सकते हैं। या तो उस व्यक्ति की

असभ्यता के चलते या फिर स्वयं को उससे अधिक सम्भ्रान्त और प्रतिभावान मानने के झूठे दम्भ के कारण इस प्रकार की दूषित मानसिकता के शिकार हो जाते हैं।

कहानी अभिजात्य वर्गीय व्यक्ति की स्वार्थी मानसिकता प्रस्तुत करती है ; साथ ही आज के परिवेश में पलने वाले मानव-मानव के बीच बढ़ते ईर्ष्या, द्वेष, कपट और छल के बीच में कहीं न कहीं जीवित बची मानवता और सहृदयता का रूप उभारती है। कहानी में मारवाड़ी सेठ का उपेक्षापूर्ण प्रश्न, अपने बच्चे की पेशाब के दुर्गन्ध से यात्रियों द्वारा नाक मूँदने पर अपमान की चुभन, शीशे के अन्दर झांकने वाले यात्रियों को भद्दी गालियां आज के बनावटी अभिजात्य वर्गीय मानसिकता का परिचायक है। मजदूरों का सेठ से ईर्ष्या और उनकी चापलूसी, अपनी हीनता का अनुभव, मारवाड़ियों पर बुड्ढे की चुहलबाजी में मजा लेना, मारवाड़ी की दुष्टता के बावजूद उसकी सहायता करना और अपने किसी ऐसे साथी के लिए सभी की यात्रा स्थगित कर देना जिससे वे केवल सहयात्री के नाते जानते हों, आदि निम्नमध्यवर्गीय व्यक्ति के भोलेपन की अच्छाइयों और बुराइयों से मिश्रित जंगलीपन को उभारती है।

कहानीकार द्वारा असभ्य किन्तु हँसमुख, मजाकिया किन्तु मानवीय संवेदना से युक्त, चापलूस किन्तु कर्त्तव्य परायण, गरीब किन्तु परिश्रमी, गंवार किन्तु ईमानदार मजदूरों, खासकर बुड्ढे को जंगली घोषित करना स्वार्थी, ईर्ष्यालु, आत्मकेन्द्रित एवं तथाकथित सभ्य कहे जाने वाले सफेदपोश अमीरों के गाल पर एक तमाचा है। यह एक विशेष वातावरण में व्यक्तियों के बर्ताव और मानवीय संवेदना का उद्घाटन है। कहानी व्यक्ति के उस जंगलीपन को उभारती है जिसमें वह ऊपर से खूब मजाकिया, खुले मिजाज का और खुशदिल होता है किन्तु भीतर से कितना नरम और संवेदनशील होता है, जैसा कि बुड्ढा या सारे मजदूर।

`कबंध`

यह कहानी सन् 1969 ई० के `कहानी` अंक 3 में `प्रतिनिधि` के नाम से छपी, इसके पश्चात् `सुखान्त` संग्रह के प्रथम संस्करण 1971 ई० में `कबंध` हो गयी और द्वितीय संस्करण में लेखक द्वारा `विसंगत नाट्य प्रयोग` के आरोप में

उठाकर बाहर फेंक दी गयी। इस कहानी के माध्यम से दूधनाथ सिंह एक अलग तरह का प्रयोग करते दीखते हैं ; जहां दो पात्रों के माध्यम से अपनी बात को रखने की कोशिश की गयी है। एक पात्र एक तरफा एकालाप कर रहा है और दूसरा वहां इसलिए उपस्थित है कि वह पहले की बात को यदा-कदा काटता हुआ कुछ कथन में नमक मिर्च लगाता रहे। ऐसा लगता है कि जैसे किसी व्यक्ति का अन्तर्द्वन्द्व इस रूप में भरा-भरा आया हो। पहला पात्र दूसरे पात्र पर आरोप करता चलता है और दूसरा पात्र उसका प्रतिरोध ; इस प्रकार कहानी बढ़ती जाती है।

एक तरह से कहानी में लेखक अपने परिवेश के प्रति पूरी तरह से ईमानदार है। जो जैसे हैं, उसे उसी रूप में छूने की कोशिश लेखक की ओर से दिखाई पड़ती है। व्यक्ति की यह मानसिकता कि उसके लिए पासबुक, मुखमरी, डर, बीबी, बच्चे और घृणा, ईर्ष्या, सब बराबर हैं, उसके द्वारा इनमें किसी को न छोड़ना साथ ही उसे लखनऊ और प्रधान मंत्री दोनों में से किसी की उपाधि के प्रति इच्छा-अनिच्छा न होना आज के खोखलेपन और भटकाव की स्थिति को प्रदर्शित करती है। यद्यपि कहानी के पहले पात्र की बातों को जोड़ दिया जाता तो उनमें अधिकांश फिजूल की और पागल व्यक्ति के व्यर्थ एकालाप से कम नहीं हैं ; परन्तु इनमें से आज की भयानक विसंगतियों पर किये गये व्यंग्य को चुन-चुन कर निकाला जा सकता है ; जिसमें गम्भीर अर्थवत्ता छिपी हो --

> `रोजी रोटी कमाने के लिए प्यारे अपने देश में किसी योग्यता की जरूरत नहीं है।`
> `मेरी योग्यता ही मेरी सबसे बड़ी अयोग्यता है`
> `जरूरत सिर्फ इस बात की है कि तुम कितनी अदृश्य लातों की मार बर्दाश्त कर सकते हो।`[21]

खुशहाली के नाम पर देश की बढ़ती जनसंख्या, पड़ने वाले अकाल, तलाक, अविश्वास, डर, सफेदपोशी नेता, संसद और बच्चे आदि इस देश की खुशहाली

को चीर-फाड़ कर प्रस्तुत करते हैं। हमारे राष्ट्र रक्षक देशभक्त नेताओं का असली मुखौटा एक च्यवनप्राश और एक सेक्रीन, एक कोक सार और गीता में कोई अंतर न कर पाना है जो आज की भयानक मूल्यहीनता की स्थिति को रेखांकित करती है। पेशाब से लिथड़े बच्चे, पागल बीवी, जंगल कलकत्ता और दिल्ली जैसे महानगर तथा हिमालय को एक ही क्रम में खाना तथा उनसे छिछोरेपन की बू महसूस करना आज के नवयुवक की कुण्ठित मानसिकता का परिणाम है।

कहानी में सारी बातें बहुत ही सांकेतिक और बेवकूफीपूर्ण कथन के माध्यम से कही गयी है। फिर भी उनमें टटोलने से ऐसा नहीं कि वे व्यर्थ चली जायेंगी या उनसे अर्थ की प्राप्ति नहीं होगी। जंगली भैंसे की तरह शहर को मुंह करना व्यक्ति के गांव से शहर की ओर बिना जाने-बूझे मूर्खतापूर्ण पलायन को व्यक्त करता है, जो कि उसे कुछ देने और आर्थिक सहयोग के बजाय गंदी बस्तियों और रात दिन धुएं के गर्द गुबार से भरी फैक्ट्रियों के असुविधाजनक परिस्थितियों में रहने की विवशता के सिवा कुछ नहीं देता। ऐसा भी नहीं कि कहानी केवल भद्दे मजाक से पूर्ण है, इसमें अपने समाज और देश के प्रति लेखक की चिंता, उसकी सीमा में व्यक्त हुई है। देश की विसंगतियों और आज की परिस्थितियों से उत्पन्न होने वाली विद्रूपताओं का यह कहानी एक सम्पूर्ण खाका प्रस्तुत करती है। अत: मुझे तो यह कहानी `विसंगत नाट्य प्रयोग` से ज्यादा मानव विसंगति प्रयोग लगती है।

`काशी नरेश से पूछो` (`कथा` अंक 7 अक्टूबर 1992 ई0)

कहानी आज के तथाकथित दम्भ भरने वाले, भारत की भोली-भाली धर्मान्ध जनता को लूटने वाले पोंगा-पंथी पण्डितों, और भेड़िया-धसान प्रवृत्ति के चलते प्रदूषण का जमघट बनते भारतीय संस्कृति के केन्द्रों में बढ़ते हुए अत्याचार का खुलासा है। झूठे शास्त्रार्थ की सड़ी-गली परम्परा को घसीटने वाले त्रिपुण्डधारी विद्वानों का कच्चा-चिट्ठा खोलती है, साथ ही चेला मूड़ने वाली पंथिक परिपाटी को एक करारा धक्का है। कहानीकार ने उसी परम्परा से पैदा होने वाले प्रगतिशील धार्मिक `लंगड़ महाराज` के माध्यम से आज के माहौल में चलने वाले

इस धार्मिक कर्मकाण्ड के धकाधूम प्रवृत्ति को उखाड़ फेंकने का आह्वान किया है। यह कहानी दो पण्डितों के बीच होने वाले शास्त्रार्थ के मध्य `अष्टपदी` शब्द का अपभ्रंश रूप `अंठई `के माध्यम से कुत्ते के कान में चिपके रहने वाले `अंठई ` कीड़े तक पहुंच जाती है।

यद्यपि यह बहुत कुछ वर्णात्मक लगती है परन्तु भीतर अत्यधिक अर्थ गाम्भीर्य छिपा हुआ है।पूरी कहानी `अंठई ` कीड़े को केन्द्र बिन्दु बना कर चलती है। अब प्रश्न उठता है कि कहानी में आने वाला `अंठई ` किसके लिए प्रयुक्त हुआ है ? ये `अंठई ` आज के शासकवर्ग और `अंधविश्वासी तथा पाखण्डी ब्राह्मणवादी व्यवस्था है जो `अंठई ` कीड़े की तरह परोपजीवी है। खुद इनके पास करने को काम नहीं, ये श्रमहीन एवं ऐय्याशी का जीवन बिताने वाले होते हैं।(इस शासकवर्ग और पुरोहित वर्ग दोनों की भूमिका समाज में समान रूप से है, दोनों ही जनता को लूटने-खसोटने वाले हैं। शासकवर्ग तरह-तरह के जनता के ऊपर अत्याचार करके अपनी निरंकुश सत्ता चलाते हैं। पुरोहित वर्ग भी भोली-भाली जनता को धर्मान्ध करके अन्धविश्वासों की आड़ में उनका शोषण करते हैं। इस प्रकार दोनों जनता के शोषक हैं और जनता से प्राप्त होने वाले धन को मिल-बांट कर खाते हैं।) `अंठई ` जो समाज में होने वाले परिवर्तन, क्रान्ति, विकास, सत्य-असत्य आदि के फेर में नहीं पड़ती, बल्कि इन सारे बदलावों से बेखबर अपनी पूर्व प्रक्रिया खून चूसने में मस्त रहती है। ठीक ऐसे अभिजात्य शासक वर्ग एवं पुरोहित वर्ग आज भी संसार की प्रगतिशीलता से कहीं दूर, दूसरों पर निर्भर रह कर अंधविश्वास और धार्मिकता के चलते शोषण की प्रक्रिया में संलग्न है।

कहानी के दौरान आने वाले तीनों गृहस्थ मुनि स्वतंत्रता संग्राम के दौरान शहीद हो जाने वाले देश भक्तों के प्रतीक हैं। परन्तु उनके बाद बच जाने वाले अन्य राजनीतिज्ञ और प्रजातंत्र के शासक वर्ग `अठइयों ` के प्रतीक हैं जो अपनी हवस की भूख मिटाने के लिए जनता का निरन्तर शोषण करते रहते हैं और फलतः परजीवी होते जाते हैं। परन्तु अब समय आ गया है कि हम इन `अठइयों `

को पैर से कुचल कर मार दें और इन्हें सत्ता से उतार कर फेंक दें । नहीं तो ये हमारे शरीर की आखिरी खून की बूंद तक हमें चूसते रहेंगे ।

कहानी बढ़ती हुई पौराणिकता के धरातल पर तो आ जाती है परन्तु वह अपनी युगीन प्रासंगिकता पर आंच नहीं आने देती, बल्कि अधिकाधिक अर्थ गाम्भीर्य की ओर बढ़ती है । कहानीकार ने शोषण की प्रक्रिया पर खुल कर कुछ न कहते हुए भी सब कुछ कह दिया । कहानी में `काशी नरेश` और `लंड भगत` द्वारा यह स्वीकार कर लेना कि हम्हीं वह `अंठई ` हैं, इस बात का प्रमाण है कि आज शासक वर्ग और ब्राह्मणवादी पुरोहित वर्ग अतीत में किए गए इस अत्याचार और शोषण के लिए कहीं न कहीं अपने को दोषी मानता है, और अतीत की गलतियों को न दोहराने का संकल्प लेता है । कहानी में गम्भीर साकेतिकता आंचलिक शब्दों के बीच रहस्यमय हो उठती है, परन्तु अगले क्षण पर्दा हट जाने पर हम आनन्द की अनुभूति करते हैं ।

`प्रेम` (*'समास' भाग तीन*)

दूधनाथ सिंह की यहकहानी उनके द्वारा प्रेम के प्रति बनने वाले पूर्ववर्ती दृष्टिकोण से हट कर है । इसमें `प्रेम कथा का अंत न कोई ` संग्रह की मानसिकता को बहुत कुछ त्याग दिया गया है, फिर भी प्रेम के क्षेत्र में असफलता के नियम का यह कहानी भी पालन करती दिखती है जो कि इनकी प्रेम कहानियों की विशेषता रही है । परन्तु यदि विशुद्ध प्रेम के रूप में देखा जाय तो यह एक आदर्श रूप प्रस्तुत करती है । कहानीकार ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि यदि प्रेम विशुद्धता की कसौटी पर खरा उतरता है तो वर्षों बीत जाने पर भी उसमें उतनी बड़ी दूरी नहीं आ सकती है । फिर भी आयु और परिस्थिति के परिवर्तन के चलते प्रेमियों के बीच कुछ तो संकोच आ ही जाता है, जो बाहरी ही होता है । आंतरिक रूप में प्रेम संकोच और औपचारिकता का बंधन तोड़ कर छलक-छलक उठता है ।

कहानी फँटेसी शैली में प्रेम के विशुद्ध रोमाण्टिक रूप को प्रस्तुत करती है । सारा का सारा प्रेम वर्णन फँटेसी में ही स्मृति बिम्ब के माध्यम से चलता है ; जो हमें बहुत पीछे की ओर ले जा कर आठवीं सदी के परिवेश में भटका देता है । इसके अन्तर्गत एक लड़के का लड़की के साथ उच्च कोटि का रोमांस चलता है । वह प्रेम के नाम पर आज के तथाकथित प्रेमियों की तरह शारीरिक भूख नहीं मिटाता, बल्कि वह उसके सारे शरीर को एक-एक आभूषणों का नाम लेकर निश्चित स्थान पर चूमता है । इस प्रक्रिया में लड़की का सारा शरीर चुम्बनों की बौछार से तरबतर हो जाता है, परन्तु वह उसका विरोध नहीं करती । इतना प्रेम होने के बावजूद भी वह लड़के के साथ घर से भाग जाने पर राजी नहीं होती है । लड़की उस लड़के के इस प्रकार प्रेम के वहशीपन से ऊब जाती है । अत: साथ जाने से इन्कार कर देती है ।

यहां प्रेम अपने प्राकृतिक रूप में सामने आता है और समय के साथ-साथ अपनी धीमी गति से चलता रहता है । इसमें किसी प्रकार का बनावटीपन और धोखेबाजी का प्रयास नहीं दीखता ; सर्वत्र एक खुलापन और समर्पण है । नहीं तो उस स्त्री में अपने पूर्व प्रेमी के बारे में अपने पुत्र से बताने और उसे घर ले आने के अनुरोध की हिम्मत कहाँ से आती । सारा का सारा प्रेम सात्विक धरातल पर दिखाई पड़ता है । लड़के द्वारा दिन भर उस लड़की के ही अगल-बगल मंडराते रहना और रात को चुपके से उसके चांचर पर चले जाना, उसके कान में मुंह लगा कर ढेर सारे प्रेम के गर्द गुबार को उडेल देना आदि प्रेम का सहज और स्वाभाविक रूप प्रस्तुत करता है । उस व्यक्ति द्वारा टैक्सी में अपने साथ कंकाल लाना और उसे अपनी प्रेमिका के दरवाजे के सामने टिका देना इस बात को उभारता है कि इतना समय बीत जाने और परिस्थितियां बदल जाने पर भी उस व्यक्ति के मन में आज तक उसके प्रति प्रेम जीवित है, भले ही अब समय के चलते उसका कंकाल मात्र बचा हो, परन्तु उस कंकाल से भी उसे उतनी ही श्रद्धा और लगाव है जितना कि उसे अपनी प्रेमिका से था । इस प्रकार यह कहानी आज के माहौल से हटकर

प्रेम के एक भिन्न रूप को उभारती है जिसमें उच्च कोटि का रोमांस तो है, परन्तु सेक्स नहीं। इसी के चलते यह केवल प्रेम है और विशुद्ध प्रेम है।

`धर्मक्षेत्रे : कुरुक्षेत्रे ` (`हंस`, अंक 1, अगस्त 1995 ई0)

यह कहानी एक लम्बे अंतराल के बाद दूधनाथ सिंह का कहानी जगत में पुन: एक धमाका है जो उनके विकास क्रम की एक अलग पहचान बनाती है, जिसमें वे कथ्य से ही नहीं, बल्कि शिल्प के क्षेत्र में भी लीक से हटते हुए दिखाई पड़ते हैं। इसमें अजनबीपन, कुण्ठा, घुटन और व्यक्तिवादिता की पूर्ववर्ती शहरी मध्यवर्गीय मानसिकता का प्रदर्शन नहीं। फिर भी मूल्यहीनता अपने चरम पर दिखाई पड़ती है। इसी के चलते लेखक ने शीर्षक को यह नाम दिया। हमारे समाज में यह संघर्ष चल ही रहा था परन्तु अब तो धर्म क्षेत्र में भी यह कुरुक्षेत्र मचा हुआ है। और लोग धर्म की आड़ में न जाने क्या-क्या गुल खिला रहे हैं? कहानी इन विसंगतियों को उभारती है। धर्म से कहानीकार का तात्पर्य धर्म या मजहब और साथ ही मानव धर्म से भी है। अत: इन दोनों ही क्षेत्रों में चलने वाले संघर्ष और विद्रूपता को कहानीकार ने स्वर दिया।

कहानी मूल रूप से काफी पुराने अतीत में ले जाकर हमको छोड़ देती है। फिर वह तात्कालिक परिवेश में पलने वाले पूंजीवादी व्यापार के फैलाव, विसंगतियों और उसमें संलग्न व्यक्ति की व्यावसायिक कलाबाजियों को एक-एक कर उभारती चलती है। यद्यपि कहानी अतीत की है परन्तु वर्तमान में भी हमको अधिकाधिक छूती है। पूंजीवादी व्यापार के फैलाव में फंसने वाला गाँव का सरल व्यक्ति भी एक क्रूर दानव की भूमिका अदा करता है, वह नैतिक रूप से कितना गिर गया है कि उसे अपनी बहन और बेटी को बाजार की वस्तु बनाने में तनिक भी हिचक नहीं महसूस होती। उसे पैसा चाहिए, सिर्फ पैसा। भले ही जानवर चुराकर, सेंध लगाकर, (नकब काट कर) या फिर अपनी बहू बेंच कर। कहानी का `सिंऊ महतो ` इसी प्रकार की मानसिकता से ग्रस्त है। वह अपनी

बहू को गर्भवती अवस्था में बेचने के लिए जंगल में ले जाकर सीकड़ से बांध कर रखता है ; यह स्थिति व्यक्ति के जानवर हो जाने की मानसिकता का परिणाम है ।

यद्यपि परिस्थितियां बदल गयी हैं । फिर भी आज औरत बिक्री की वस्तु बनी हुई है । पुराने रूप में न सही, आधुनिक बाजारू तरीके से ही सही, पर बिक अवश्य रही है । यह जो सामाजिक परिवेश पुरुष द्वारा खड़ा किया गया है, उसके चलते सीकड़ से बंध कर न सही पैसों के ही लालच में वह स्वेच्छा से बिकने को मजबूर है । इसलिए कहानी हमें आज भी उसी गहराई से छूती है । कहानी में सारे समय पिता का साथ देते रहने के बावजूद अंत में बच्चे को जिंदा दफनाए जाने के प्रश्न पर `मरकटवा` की निर्दयता जवाब दे जाती है । जिसका परिणाम पिता के साथ खूनी युद्ध होता है और दोनों ही ढह जाते हैं । यहां `मरकटवा` के रूप में आज के युवक का सामाजिक बुराइयों के प्रति विद्रोह का स्वर उभारा गया है, परन्तु दोनों के ढह जाने का चित्रण यह प्रदर्शित करता है कि आज समाज की बुराइयों ने समाज को इस हद तक चपेट रखा है कि किसी अकेले व्यक्ति का विरोध में उठ खड़ा होने पर उसका भी हश्र यही होगा, जो `मरकटवा` का हुआ ; अतः आज आवश्यकता है सम्पूर्ण जागरण की । फिर भी कहानीकार का अंतिम समय में `मरकटवा` के हृदय परिवर्तन द्वारा क्रूरता पर मानवता की विजय दिखाना, यह संकेत है कि जिस संकल्प के चलते `मरकटवा` ने अपना बलिदान दिया, वह सफल रहा ।

०

संदर्भ

---

1. `पैनी तराश और डरावना अनुभव संसार`, `जनान्तिक`, नेमिचन्द जैन, पृ० 129
2. `रीछ` कहानी `सपाट चेहरे वाला आदमी` कहानी संग्रह - दूधनाथ सिंह, पृ० 23
3. `दुःस्वप्न` कहानी, वही, पृ० 49

4. `सब ठीक हो जायेगा`, वही, पृ0 56
5. `प्रतिशोध`, वही, पृ0 103
6. `आइस वर्ग `, वही, पृ0 115
7. `समकालीन कहानी का रचना विधान` - गंगाप्रसाद विमल, पृ0 30
8. `समकालीन कहानी की भूमिका` - डा0 विश्वम्भर नाथ उपाध्याय, पृ0 35
9. `सुखान्त` कहानी संग्रह, आवरण पृष्ठ - दूधनाथ सिंह
10. `स्वर्गवासी` कहानी, `सुखान्त` संग्रह - दूधनाथ सिंह, पृ0 26
11. `शिनाख्त`, वही, पृ0 46
12. `साक्षात्कार`, `साठोत्तरी कहानियां : दूधनाथ सिंह - कुछ प्रश्न और विचार`, पृ0 188
13. `सुखान्त` कहानी, `सुखान्त` संग्रह - दूधनाथ सिंह, पृ0, 110
14. `माई का शोक गीत` कहानी संग्रह - दूधनाथ सिंह, आवरण पृष्ठ
15. `हुँडार` कहानी, `वही, पृ0 29
16. `गुप्तदान`, वही, पृ0 51
17. `लौटना`, वही, पृ0 66
18. `कुछ बातें ` - `प्रेम कथा का अंत न कोई ` कहानी संग्रह - दूधनाथ सिंह
19. `प्रेम कथा का अंत न कोई ` कहानी संग्रह - दूधनाथ सिंह, आवरण पृष्ठ
20. `साक्षात्कार`, `साठोत्तरी कहानियां : दूधनाथ सिंह - कुछ प्रश्न और विचार`, पृ0 204
21. `प्रतिनिधि` कहानी - दूधनाथ सिंह, `कहानी` पत्रिका, अंक 3, 1969, पृ0 14

द्वितीय अध्याय

आधुनिक जीवन की विद्रूपताओं और विसंगतियों के कहानीकार

राजनीतिक स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद आर्थिक क्षेत्र में पिछड़ेपन को ध्यान में रखकर सम्पन्नता हेतु आवाज उठायी गयी। विशेष कर निम्न मध्यवर्गीय कहानीकारों ने इस विषमता और अन्तर्विरोध को झेलते हुए जन-साधारण की आकांक्षाओं को कहानी के माध्यम से पेश किया। 1960 ई० के बाद सातवें दशक में मध्यवर्गीय जीवन का स्वरूप बदल रहा था। परिणाम-स्वरूप इस युग में एक तरह से नयी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थितियां उभर कर आयीं। पारम्परिक नैतिक मूल्यों का विघटन प्रारम्भ हो गया जिसके चलते सामन्तवादी नैतिकता की व्यर्थता और खोखलापन महसूस होने लगा। हमारे आदर्श, जीवन पद्धति, समाज और परिवार सभी में युगानुरूप नये मूल्यों की प्रतिष्ठा की मांग की गयी। इन परिस्थितियों में जीवन की नये सिरे से व्याख्या की आवश्यकता समझी गयी। फिर भी उसकी अपनी एक सीमा थी और वह आर्थिक सीमाओं के बाहर न जा सका। शासक वर्ग और साधारण जनता के बीच लगातार बढ़ते हुए फासले ने शासकों के प्रति जनता के विश्वास की हत्या कर दी; परिणामस्वरूप चारित्रिक-असंयम, भ्रष्टाचार, दायित्वहीनता और बेईमानी का बोलबाला हो गया।

इसी समय यूरोपीय साहित्य पर पड़ने वाले महायुद्धीय प्रभाव के कारण, आशंका, भय, अनिश्चितता, मूल्यों का विघटन आदि पतनशील प्रवृत्तियों का उदय हुआ। साथ ही जीवन के प्रति अनास्था, मृत्यु और वेदना आदि ह्रासोन्मुखी प्रवृत्तियां साहित्य में प्रकट होने लगीं जिसका प्रभाव नये कहानीकारों में दृष्टिगत

होता है और जिसकी चरम परिणति साठोत्तरी कहानीकारों के माध्यम से उभर कर सामने आती है ।

राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं से प्रभावित होकर साठोत्तर लेखक वर्ग ने इस दर्द, कुण्ठा और निराशा को ही जीवन का आवश्यक तत्व मान लिया । इनकी कहानियां सामाजिक सन्दर्भों से हटते हुए एकांतिक रूप से मानव मन की गुत्थियों का विश्लेषण और खुलकर प्रदर्शन करने में लग गयीं । अपने आप में डूबे, अपने ही भीतर झांकते केवल व्यक्तिगत और `एबनार्मल` समस्याओं से अभिभूत इन कहानियों के पात्र विचित्र लगते हैं, परन्तु इतना भी विचित्र नहीं कि वे अपने परिवेश से कट कर कहीं अलग चले जायं, बल्कि जिस परिवेश में इनके पात्र जीते हैं, उसके दर्द को ढोते हैं । वह परिवेश एक सचाई के रूप में साठोत्तरी कहानियों का अंग बन कर उभरा है ।

मोह भंग की स्थिति और अन्तर्मुखता का दबाव

सन् साठ के बाद की कहानियों में बढ़ने वाले इस व्यक्तिवादिता और अन्तर्मुखता का प्रमुख कारण ऐतिहासिक था । नेहरू द्वारा संचालित स्वतन्त्र भारत में आजादी का जो मूल्य था, उसके विघटन का अनुभव धीरे-धीरे साहित्यकारों को होने लगा । गोरे साहब की जगह काले साहब के आने के बाद भी आजादी हमसे उतनी ही दूर रही जितना कि पहले थी । इन काले साहबों ने प्रजातंत्र की चादर ओढ़कर गांधी जी के नाम पर जनता का खून-पीना शुरू किया । अत: उनकी इस नियति के विरोध में साहित्यकार उठ खड़े हुए ; उन्होंने अपने ही देश के इन भीतरघातियों के विरुद्ध एक संघर्ष छेड़ दिया । वह अपने इस संघर्ष से दु:खी भी था और इससे विरत भी नहीं होना चाहता था । अत: एक अन्तर्द्वन्द्व का शिकार होता गया, क्योंकि जब लड़ाई बाहर वालों से होती है तो आदमी अपने शौर्य का भरपूर प्रदर्शन करता है परन्तु जब उसे अपने ही घर में अपने ही लोगों से युद्ध करना पड़ता है तो वह अन्तर्मुखी हो जाता है और भीतर ही भीतर आत्म-पीड़ा का अनुभव करता है । यही मानसिकता सन्

साठ के बाद वाले कहानीकारों पर हावी रही क्योंकि इन सभी की रचनात्मक मानसिक बुनावट आजादी के पहले अपने किशोरावस्था की है। इसी प्रकार की मानसिकता से ग्रस्त कहानियां दूधनाथ सिंह ने प्रारम्भिक दौर में लिखीं। उन्होंने साहित्यकार की इस अन्तर्मुखता और व्यक्तिवादिता पर प्रकाश डालते हुए अपने साक्षात्कार में कहा है कि --

> 'यानी जब हमारी लड़ाई एक उपनिवेशवादी सरकार से थी, तब तक तो यह लड़ाई या संघर्ष सीधा था, लेकिन जब विघटित मूल्यों का संघर्ष अपनी ही जनता से, अपने ही लोगों से होना शुरू हुआ, तो हमारी जनता में, हमारे बुद्धिजीवियों में एक अन्तर्मुखता का विकास हुआ।'[1]

ऐसा नहीं कि दूधनाथ सिंह की कहानियों में यह मोह भंग केवल पात्रगत मानसिकता के ही स्तर पर, बौद्धिक दीवालियेपन और आंतरिक विक्षोभ के ही रूप में उभरा है ; बल्कि बाह्य रूप में भी आजादी के प्रति मोह भंग को उनकी कहानी 'कोरस' उजागर करती है। यह कहानी देश की बर्बादी में शामिल होने वाले दुरंगे राजनीतिज्ञों द्वारा प्रजातंत्र की अर्थी पर गाया जाने वाला जनता के खाली पेट और सूखते ज़िस्म का कोरस है। जो इन शहीदी अंदाज वाले राजनीतिज्ञों की खोल उतार कर जनता के सामने खड़ा कर देती है। इन राजनेताओं द्वारा अपने हित साधन के लिए महापुरुषों के विचारों की शव साधना हमारे सामने भारतीय लोक तंत्र का घात-विघात चेहरा उभार देती है। यथा --

'हमें सिद्ध कर देना है कि हमारा अभियान झूठा नहीं था। लेकिन जैसा कि मेरा विचार है, हमें एक बात के प्रति सावधान रहना चाहिए। हमें अपनी साधना के लिए कोई महत्वपूर्ण शव चाहिए।'[2]

वैयक्तिकता का उभार

मूल्यों के विघटन और इसके चलते बढ़ने वाली वैयक्तिकता का प्रभाव इनकी कहानियों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। परन्तु इनकी कहानियों

में व्यक्त होने वाला क्रम नितान्त वैयक्तिक ही नहीं होता, जैसा कि `रक्तपात`- कहानी में इसी वैयक्तिकता के माध्यम से ही कहानीकार ने समाज के एक महत्वपूर्ण नस पर उंगली रख दी जिससे समाज के हर व्यक्ति को कुछ न कुछ दर्द महसूस हो और सोचने को बाध्य हो सके कि `माँ` की पीड़ा ज्यादा महत्वपूर्ण है या पुत्र की सेक्स भावना ? और इन दोनों में एक पुत्र किस ओर बढता है ? क्या वह माँ की तकलीफ को नजरंदाज कर सकता है ? कहानी में माँ का जो चित्र उभारा गया है, इससे उसकी सामाजिकता पर किसी प्रकार का आरोप नहीं लगाया जा सकता है ।इसलिए यह कहानी वैयक्तिक से कहीं ज्यादा सामाजिक भी है ।

इस प्रकार मानवीय समस्याओं के सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक समाधानों से निराश होने के बाद लेखकों ने व्यक्ति की अनुभूतियों पर ही अधिकाधिक ध्यान केन्द्रित किया क्योंकि अब उन्हें यही सबसे अधिक प्रामाणित और वर्तमान परिस्थितियों में प्रासंगिक लगा । इसीलिए दूधनाथ सिंह की कहानियों में दु:ख, असुरक्षा भाव, अकेलापन और अलगाव से मुक्ति की सबसे बड़ी संभावना आत्मीय सम्बन्धों में, विशेषकर पारिवारिक सम्बन्धों की पुनर्स्थापना में दिखाई देती है । इनके बहुत कम पात्र हैं जो एकाकीपन के साथ पटरी बिठा सके । जैसे कि `आइसवर्ग `, का `विनय` अपने अकेलेपन से ऊब कर अंत में अपने परिवार वालों को इकट्ठा करने का प्रयत्न करता है, फिर भी यह प्रक्रिया इतनी देर से प्रारम्भ की जाती है कि परिवार के सभी सदस्य एक दूसरे से अलग-थलग पड़ जाते हैं और अन्त में सभी बारी बारी से विनय को छोड़ कर चले जाते हैं ।

सम्बन्धों में औपचारिकता और दिखावा

आजकल परिवार, विवाह और मैत्री के रिश्ते भी बहुत स्थायी और सुदृढ़ अब नहीं रहे ।इन रिश्तों में खोखलापन, दिखावा और स्वार्थ की बू आने लगी । इसलिए इन रिश्तों को निभाने में कर्तव्य की ही भावना काफी नहीं होती बल्कि प्रेम और स्नेह की अति आवश्यकता है । दूधनाथ सिंह की कहानी

'आज इतवार था' इसी पारिवारिक सम्बन्ध को बनाए रखने की औपचारिकता को उद्घाटित करती है जिसके एवज़ में पति को अपनी सारी खुशी और स्वतंत्रता का बलिदान करना पड़ता है, वह पत्नी के व्यवहार से तिल-तिल कर जलने, अपमान महसूस करने और ढेरों सारी झिड़की सुनने के बाद भी उस बूचड़खाने में (घर में) रहने के लिए विवश है।

इसी प्रकार 'सब ठीक हो जायेगा' का पति भी कैंसर का मरीज होने के कारण पत्नी की वेश्यागिरी, लोगों के ताने, कमरे में उठने वाले ग्राहकों के हंसी ठहाके और पत्नी की उपेक्षा को ढोते हुए उसके साथ पति का औपचारिक रिश्ता निभाने के लिए मजबूर है। पत्नी भी पति की आड़ में वेश्यालय चलाने, लोगों को अपने सतीत्व के प्रदर्शन के लिए पति के नाम पर कैंसर के मरीज को सहते रहने के लिए विवश है। सम्बन्धों की यह औपचारिकता आज की सचाई है जो हमारे समाज की नस-नस में कहीं गहरे समाई हुई है और जिसकी आड़ में लोग अपने स्वार्थ की रोटी सेंक रहे हैं।

मूल्यहीनता का दावा

साठोत्तरी कहानी में मूल्यों की दृष्टि से पुराने आदर्शों के प्रति नफ़रत का भाव है। इसके चलते दूधनाथ सिंह की कहानियों में भी प्राय: परम्परागत नैतिक मूल्यों पर निर्मम प्रहार है क्योंकि साहित्य मानव मूल्यों और नवीन संवेदनाओं को महत्व देता है। नये वैयक्तिक मूल्य सामाजिक मूल्यों के विकास में सहायक होते हैं। आज के व्यक्ति को मानवीय सम्बन्धों की इकाइयों के मूल्य विघटन तीव्रता से महसूस होने लगे हैं। अपने परिवेश और वातावरण में मूल्यों की खोज करने वाले दूधनाथ सिंह ने आधुनिकता के नाम पर जन्मी हुई क्रूरता, अमानवीयता और बेगानेपन को अभिव्यक्ति दी है।

आज का कहानीकार न तो हर मूल्य को आंख मूंद कर शाश्वत मानने को तैयार दीखता है और न ही वह उन्हें स्थायी मानकर, अपरिवर्तनीय मानवीय

सद्गुण के रूप में ग्रहण करने के मूड में है। उसे आज माँ-बेटे के सम्बन्धों में समानता और सात्विकता नजर नहीं आती, साथ ही बाप बेटी के सम्बन्ध को भी शक की नजर से देखने में उसे कोई ऐतराज नहीं। वह बाप-बेटे के सम्बन्धों में आर्थिक स्तर को अधिक प्रधानता देता हुआ दिखाई पड़ता है। दया, करुणा, परोपकार आदि नैतिक मूल्य उसे ढोंग दिखाई पड़ते हैं जो मात्र शोषकों के लिए ढाल का काम करती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जिस सामाजिक विषमता, राजनीतिक आदर्शहीनता, भ्रष्टाचार और मूल्यहीनता ने एक ओर ज्यादातर लेखकों को अपनी छोटी सी दुनिया में सिमट जाने के लिए मजबूर किया, उसी ने कुछ को इस स्थिति का व्यंग्य और विद्रूपता के माध्यम से सीधा सामना करने के लिए उकसाया, ऐसे कहानीकारों में दूधनाथ सिंह अग्रणी रहे हैं। इनकी कहानियों की दुनिया मनुष्य का भोगा हुआ गुबार है, उसका अन्दर तक चीखता हुआ सच है। इन्होंने अपनी ओर से कथ्य-विधान को स्वादिष्ट बनाने के लिए लीपा-पोती नहीं की। अतः आज का समाज, युवक वर्ग, पत्नी और पति एवं तथाकथित संभ्रान्त वर्ग के व्यक्ति आज के परिवेश में किस प्रकार से जी रहे हैं या किस प्रकार जीना चाह कर भी नहीं जी पाते हैं, आदि को इनकी कहानियां बखूबी उभारती हैं। इसलिए इनकी कहानियों पर विसंगति और विद्रूपता को उभारने का आरोप लगता है जो सच भी है। इसी बात को स्वीकार करते हुए दूधनाथ सिंह ने ईमानदारी की प्रतिबद्धता की बात कही --

"किन्तु हर बार वह (कहानीकार) अपने को उसके सामने खड़ी सच्चाई को झेलने के लिए विवश पाता है और सहजता से आशा करने और विश्वास को बनाए रखने और भविष्य में अपनी किसी भी निर्णयात्मक आस्था के प्रति वह सशंक हो उठता है; क्योंकि वह किसी भी तरह अपने को गैर ईमानदार और दृष्टिहीन कहलाने के लिए किसी भी सचाई से आंख मूंदना नहीं चाहता। फलतः उसकी दृष्टि में गर्हित स्थितियां, सामाजिक विगर्हणाएं, सांस्कृतिक

अवमूल्यन, व्यक्तिगत पतन, और राजनीतिक धूर्तताओं के अतिरिक्त कुछ भी प्रकाशवान रूप में सामने नहीं आता ।[3]

दूधनाथ सिंह की कहानियों में शहरों की तेज रफ्तार, भीड़-भाड़, रहन-सहन, तीखी विषमता, भ्रष्टाचार, क्रूरता और इन सब से पैदा होने वाली दहशत की बहुत सूक्ष्म संवेदनशील तस्वीर यद्यपि पूर्ण रूप से नहीं परन्तु बहुत कुछ उसका आभास मिलता है। यह नहीं कि आधुनिक सभ्यता से उत्पन्न संत्रास, भय, ऊब, अकेलापन, निर्वासन और व्यर्थता तथा खालीपन आदि की चर्चा कम है। निःसंदेह ऐसा लेखन और उसको पैदा करने वाली मनोवृत्ति समाज में फैली अराजकता, दिशाहीनता और आदर्शों तथा मूल्यों के टूटने की उपज है। इन परिस्थितियों से उत्पन्न व्यक्ति की विखण्डित मानसिकता को 'दुःस्वप्न' कहानी में देखा जा सकता है। कहानी का 'मैं' शायद अपनी पत्नी को संबोधित करते हुए अपने सारे आदर्शों की चादर झटक कर स्वयं को नंगा करते हुए कहता है कि --

'क्योंकि तुमने बावजूद मेरे मना करने के सारी औरतों की तरह मुझमें ढेर सारे आदर्शों, गुणों और नैतिकताओं की तो कल्पना कर ही रखी है... । लेकिन मैं सच कहता हूं। मैं इन सभी की तरह कहीं भी जा सकता हूं - किसी वेश्यालय में, या पुस्तकालय में या रेस्त्रा में या फिलहाल तुम्हारे साथ किराये के सुखद बिस्तर में ।'[4]

इस प्रकार हम देखते हैं कि आज के व्यक्ति के लिए आदर्श और पुराने मूल्य किस प्रकार व्यर्थ हो रहे हैं, वह इन मूल्यों से चिपके नहीं रहना चाहता बल्कि यथाशीघ्र इनसे हट कर अपने को पूरी जनता और समाज के साथ भागीदार बनना चाहता है।

संघर्षपूर्ण, जटिल जीवन की अभिव्यक्ति

दूधनाथ सिंह ने मध्यवर्गीय जीवन की पृष्ठभूमि पर विद्रूपताओं और मूल्यों को पर्याप्त संवेदनशील ढंग से अंकित किया है। इनकी कहानियां निम्न मध्यवर्गीय

दुनिया के छोटे-छोटे संघर्षों और आर्थिक तनावों के प्रति अधिक खुला प्रदर्शन करती हैं। अपनी बुनावट में यह कहानियां काफी कुछ इकहरी हैं और जीवन की जटिलताओं को संश्लिष्ट रूप में अंकित करती हैं ; साथ ही इनमें यथातथ्यता का आग्रह भी साफ है। `प्रतिशोध` कहानी में आर्थिक तंगी से उत्पन्न परिस्थितियों के परिणामस्वरूप पति-पत्नी का झुंझलाना, बार-बार `पेमेण्ट` लाने के लिए दफ्तर का चक्कर लगाना, रात भर खटमलों के आतंक के कारण जागते हुए काट देना, पेशाब की बदबू से आने वाले भभके को निरन्तर सहना और दिखावे के लिए घर में राशन न होने पर भी झूठ-मूठ कढ़ाही गर्म करके पानी के छींटे मारना आदि आज के शहरी मध्यवर्गीय परिवार की पोल खोल देती है। साथ ही गांव छोड़ कर आने वाले परिवार के लिए शहर की कठिनाइयों से रूबरू कराती है

`रीछ` कहानी मध्यवर्गीय पति-पत्नी के सम्बन्धों में पड़ने वाली दरार को उभारती है। इस दरार का कारण पति की जिंदगी में पूर्व प्रेमिका का होना और लाख कोशिश करने के बावजूद भी उसकी यादों से न उबर पाना है। साथ ही पत्नी के साथ सम्बन्धों में नर्माहट और औपचारिकता निभाना है जिसके चलते पत्नी लगातार घुटते रहने और खीझने के साथ-साथ अपना मुंह भी खोलने लगती है --

'लेकिन तुम लोग। मैं जानती हूं ..... अगर तुम अपने संस्कारों और संकोचों से विरत हो जाओ तो एक बार वह भंगिन भी तुम्हें मुझसे ज्यादा रुचेगी। लेकिन मैं .... ? मैं यह बर्दाश्त नहीं कर सकती कि तुम्हारी वही चीज मुझमें .... और उसके पहले किसी दूसरे में .... या उसके बाद में भी ... ।'[5]

इनकी कहानियों के पात्र जीवन में संयोग से उत्पन्न विद्रूपतात्मक स्थितियों के प्रति पूरी तरह तटस्थ बने रहते हैं ; क्योंकि वे परिणामों को

भी उतना ही निरर्थक मानते हैं, जितना स्वयं की अजीब स्थिति को । निर्णय के लिए स्वतंत्र होने पर भी मनुष्य अतीत के दबाव के कारण अपने को असमर्थ समझता है, परिणामस्वरूप उल्टी-सीधी स्थितियों में फंस कर, समर्पण और एक अंतहीन प्रतीक्षा ही आज के युवक की नियति बन चुकी है । जीवन को विद्रूप करने वाली परिस्थितियों को वह केवल झेल सकता है ; काफी कुछ उदासीन बना रहकर परन्तु उनमें मुक्त होने की किसी भी प्रकार की सक्रियता नजर नहीं आती, सिवा एक अर्थहीन प्रतीक्षा के । कुण्ठा और भावनाओं के ध्वंस से उसका मनोजगत निर्मित हुआ है, वह जन्मजात विद्रोही है परन्तु यह विद्रोह खुलकर सामने नहीं आ पाता, बल्कि वह बहुत कुछ आन्तरिक विद्रोह या खुद से लड़ते रहने की नियति जैसा है, जिसे `प्रतिशोध` कहानी प्रस्तुत करती है । कहानी नायक बार बार दफ्तर से खाली हाथ वापस आने और पत्नी की झिड़की से ऊब गया । परिणामस्वरूप उसमें विद्रोह का स्वर तो मुखर होता है, पर वह भी दूसरे पल इस विद्रोह के गलत परिणाम से आतंकित हो जाता है । यथा --

"बेकार तो दरअसल आप हैं । टकराते हैं दिन भर यहां ... ` उसने वाक्य अधूरा छोड़ दिया । वह जानता था कि शान्त भाव से भी वह ऐसी बात कह देगा तो वे भुन जायेंगे ।"[6]

सम्बन्धों में बिखराव

जीवन और समाज की विसंगतियों के फलस्वरूप व्यक्ति को एकाकीपन, अजनबियत और ऊब की अनुभूति होती है । यह भी सत्य है कि सम्बन्धों से टूटा हुआ पुरुष और स्त्री अधिक से अधिक अजनबी होते चले जाते हैं । महानगरों में व्यक्ति को अपना अस्तित्व नष्ट होने का डर है । जहां आदमी-आदमी को नहीं पहचानता । सारे सम्बन्ध औपचारिक बनकर रह गये हैं । इसलिए साठोत्तर कहानीकारों ने जीवन के रिक्तता बोध को कहानियों में उभारा है । आज के जीवन

में मानवीय सम्बन्धों का घटता हुआ महत्व और परायेपन का एहसास कुछ ज्यादा ही मुखर दिखाई देता है। इसी के चलते दूधनाथ सिंह की कहानियां अकेलेपन, अजनबियत और अपरिचय की स्थिति को मनुष्य की सम्पूर्ण विवशताओं के साथ उजागर करती हैं। `रक्तपात` कहानी के नायक में अपने परिवार के सदस्यों के प्रति अजीब सी विरक्ति और अजनबीपन है। वह दूर किसी नगर में नौकरी करता है और अपने पिता से इस प्रकार रूठ जाता है कि उसके मरने के बाद ही घर आता है। परिणामस्वरूप वह एक प्रकार के अपराध बोध से ग्रस्त हो जाता है। यह कहानी सम्बन्धों के कटाव को बड़े बेलाग तरीके से प्रस्तुत करती है --

"उसे लगा कि अपने ही घर में वह एक अतिथि है और अपने परिचित कोनों, घरों की दीवारों, ताकों-सीढ़ियों को नहीं छू सकता। हर कहीं एक बाध्यता है ... एक न जाने कैसी विवश खिन्नता। ... वह उठकर टहलने लगा।"[7]

इस प्रकार सामाजिक ढाचे में आने वाला यह बदलाव संवेदना के बदलते स्वरूप के ही कारण सम्भव हुआ। यद्यपि इनकी कहानियां संयुक्त परिवार का विघटन और उससे उत्पन्न मानवीय स्थितियों को बखूबी उभारती हैं। फिर भी इन्होंने मुख्य रूप से रिश्तों के टूटन, विशेष कर पति-पत्नी के सम्बन्धों में बदलाव को अधिकाधिक उठाया है। पुरुष प्रधान भारतीय समाज में नारी की स्थिति में आया मूलचूल परिवर्तन ही इसका कारण है। इनकी कहानी `बिस्तर` नारी की स्वतंत्रता के परिणामस्वरूप पुरुष की बदलती हुई स्थिति का बयान है। आज की स्त्री की स्वतंत्रता का इस हद तक बढ़ जाना कि वह स्वेच्छा से विवाह करने और तलाक लेने की स्थिति में आ जाय, यह स्थिति समाज पर नारी की निरंतर बढ़ने वाली पकड़ का अच्छा उदाहरण है। कहानी में एक पति को इस हद तक मजबूर कर दिया गया है कि वह अपनी पत्नी के ज़िद पर बच्चों के साथ उसे उसके प्रेमी को सौंप आता है; जो पारिवारिक जीवन में मूल्यहीनता और वैचारिक मतभेद को उस स्तर तक उभारता है कि जिसके चलते परिवार नर्क बन जाता है।

आर्थिक समस्याएं भी इसके मूल में काम करती हैं। आज की नौकरी-पेशा के फलस्वरूप स्त्री आर्थिक रूप से स्वतंत्रता की ओर बढ़ रही है। साथ ही उसके सोचने का ढंग भी बदल रहा है। ये कहानियां इस बदलाव को बड़ी बारीकी से पकड़ती हैं। माँ-बाप और बच्चों के बीच तथा अन्य खून के रिश्तों में जो बदलाव आए हैं, उसके दर्द को भी इन कहानियों में अभिव्यक्ति मिली है। संवेदना का परिवर्तन, निरर्थकता बोध, अकेलापन, संत्रास एवं असुरक्षा बोध का चित्रण दूधनाथ सिंह की कहानियों में साफ नजर आता है क्योंकि ये सब आज के जीवन की विडम्बनाएं हैं जो सामाजिक जीवन में पैठ बनाने वाले खोखलेपन का पर्दाफाश करती हैं और औद्योगीकरण एवं शहरीकरण के कारण समाज में आने वाली अमानवीयता को बेनकाब करती हैं। जैसा कि दूधनाथ सिंह ने 'सपाट चेहरे वाला आदमी' कहानी संग्रह के आवरण पृष्ठ पर स्वीकार किया है --

'यदि आप भाषा की इस सपाट काव्यात्मकता के भीतर कथ्य के समानान्तर चलते एक दूसरे 'अंतरंग' अभिप्राय को पकड़ लें तो अचानक आप की अपनी ही आंखों में वह दरार दिख जाएगी जिसके अन्दर से आप भारतीय जीवन के आंतरिक 'के आस ' से साक्षात कर सकेंगे। तब आप पाएंगे कि ये कहानियां आप को किसी 'सुखद-अनुभव' तक न ले जाकर, वहां पहुंचाती हैं जहां आप सहसा अत्यंत बेचैनी महसूस करने लगते हैं।'[8]

अलगाववबोध और अजनबीपन

पराजय और पलायन की आकांक्षा ही दूधनाथ सिंह की कहानियों में अधिक उभर कर सामने आयी है, विरोध और संघर्ष की तैयारी कम। अकेला व्यक्ति मूलत: अपनी स्थिति का विश्लेषण करने में असमर्थ है, वह व्यवहार और विचार के क्षेत्र में कोई ऐसा रास्ता खोज नहीं पाता जहां जीवन को अधिक सार्थकता दी जा सके। यह व्यक्ति के भटकाव की स्थिति है, इस स्थिति में अन्तर्द्वन्द्व की प्रधानता रहती है जिसके चलते उसे निर्णय लेने में अधिक समय लगता है। परिणामस्वरूप वह सही वक्त पर कोई निर्णय नहीं ले पाता है। 'स्वर्गवासी'

का कृष्ण लाल इसी प्रकार के भटकाव का शिकार होता है। वह पटवारी की नौकरी से भ्रष्टाचार के आरोप में निकाला जाकर अपने जीजा के पास बहाली के लिए आ जाता है। परन्तु धीरे धीरे उसके भीतर का मानव मरता जाता है और वह दिन पर दिन आलसी तथा निकम्मा होता जाता है। वह इसी प्रकार की उपेक्षा और जिल्लत भरी जिंदगी को ही अपनी नियति मान बैठता है और अंत में मक्खियों के हवाले हो जाता है।

यह सच है कि साठोत्तर दशक के कहानीकार समस्याओं के थोक समाधान देने से कतराते हैं, फिर भी पूर्ण हताशा के निराकार और प्रतिशोध में उनका विश्वास अवश्य है। आम तौर से अकेला आदमी स्वयं अपने और अपनी संभावनाओं से कटा हुआ एक ऐसे नितांत निजी संसार में बंद नहीं दिखाया गया है जहां और लोग या सामाजिक मूल्य पूरी तरह से अनुपस्थित या अप्रासंगिक हों। यह अकेला आदमी इस तरह से चित्रित किया जाता है कि पाठक की सहानुभूति उसके साथ हो। पाठक की सहानुभूति अक्सर इसलिए भी होती है कि पात्र अपने कटे होने के कारण किसी न किसी रूप में दुःख उठाता दिखाई देता है। `सीखचों के भीतर` कहानी की `सुमित` ऐसी ही परिस्थितियों में जीने को विवश है क्योंकि सुमित का उसके पति `सोम` के पागलपन के चलते तलाक हो गया। पहले तो `सुमित`, `सोम` के ठीक होने का इंतजार करती रही परन्तु सोम द्वारा दूसरी शादी कर लेने के बाद वह अजनबियत की जिंदगी ढोती फिरती है। बीच में `बसंत` ने उसके अकेलेपन को भरने का प्रयास किया परन्तु वह सफल नहीं हुआ क्योंकि सुमित जिसको पाना चाहती थी, वह मिला नहीं और जिसे खोना चाहती थी, वह बार बार सामने आता रहा; फिर भी उससे किसी प्रकार का समझौता नहीं। अतः वह अकेलेपन की और घुटन भरी जिंदगी उसकी नियति बन चुकी है। इस सम्पूर्ण मानसिकता को सुमित का कथन रूपायित कर देता है --

`क्या वह जिंदा है? दफन नहीं हो गयी है? ... क्या उसका जिस्म उसकी कब्रगाह नहीं? एक चलती फिरती कब्रगाह, जिसे वह सौंपना चाहती है। चाहती है कि कोई उस पर फूल चढ़ाये। ... फिर भी वह नहीं सौंप पाती।`[9]

नयी परिस्थितियों में दाम्पत्य जीवन के बदलते स्वरूप

आज पति-पत्नी के रिश्ते की पवित्रता और गहराई भी एक बीते हुए अतीत की कहानी बनकर रह गयी है। आज का कहानीकार इस सम्बन्ध में बढ़ने वाली उस कुरूपता और उच्छृंखलता की छानबीन कर रहा है जो इसकी पवित्रता को घुन की तरह खा रही है। एक ओर परस्पर कुण्ठा और अविश्वास दाम्पत्य जीवन के वर्चस्व को समाप्त कर रहे हैं तो दूसरी ओर स्त्री की आर्थिक स्वतंत्रता और तलाक की सुविधा इसके लिए चुनौती के रूप में खड़ी है। दूधनाथ सिंह की कहानियां इस सचाई के खुले रूप को उभारती हैं। 'शिनाख्त' कहानी के 'मैं' का अपने पूर्व प्रेमिका के साथ विवाहेतर सम्बन्ध, प्रेमिका के पति की अनुपस्थिति में उसके बिस्तर पर होने वाला सेक्स, उसकी छोटी लड़की में अपने खून की महक आज के वैवाहिक जीवन को दूर तक चोट पहुंचाती हैं। आज स्त्री-पुरुष की हवस इतनी बढ़ गयी है कि वह केवल पति या पत्नी से पूरा नहीं हो सकती। इस नियति का विकृत रूप यह कहानी उभारती है। साथ ही पति के साथ सतीत्व का ढोंग और पत्नी के साथ वफादारी निभाने का खालिस-पन 20वीं सदी के युवक की मानसिकता का पर्दाफाश करती है। यथा -

> 'मुझे पति और पसीने के बारे में नहीं सोचना चाहिए। नहीं, बैठे-बैठे मुझे बोधिसत्व की प्राप्ति हो जायेगी।'[10]

आज दाम्पत्य जीवन में बिखराव का एक कारण दिन-प्रतिदिन बढ़ती जाने वाली स्त्री की कमाऊ भूमिका भी है। इसलिए वह आज के निकम्मे, आलसी और बेरोजगार पति को बर्दाश्त नहीं कर सकती ; परिणामस्वरूप वैवाहिक जीवन में तनाव उत्पन्न होना लाज़मी है । वह स्वतंत्रता की ओर बढ़ने वाले कदम से पीछे मुड़कर देखना नहीं चाहती ; जिसकी चरम परिणति उच्छृंखलता में होती है ; परन्तु पति अभी उसी पुरानी मानसिकता को ढोता फिर रहा है जो नारी स्वतंत्रता के नाम पर इतनी भद्दगी और खुले रोमान्स को नहीं सह सकता। इसके

चलते दम्पति के मध्य वैचारिक खाई और भी गहरी होती चली जाती है जो अन्त में तलाक का रूप ले लेती है ।

अर्जिता पत्नी में एक अतिरिक्त बल और आत्मविश्वास भी दिखलाई पड़ता है जिसके आधार पर वह पति की गुलामी से विमुक्त होना चाहती है । उसमें अन्य धरातलों पर यह विश्वास दृढ़ हो गया है कि जितनी आवश्यकता उसे पुरुष की है, उतनी पुरुष को भी उसकी आवश्यकता है । पत्नी की आर्थिक क्षमता ने इस विश्वास को बल दिया कि वह पति से क्यों दबे ? क्योंकि वह भी सम्बन्ध-विच्छेद का कदम निश्चिन्त होकर उठा सकती है । सम्बन्ध-विच्छेद का एक सूत्र पति के उस मूलबद्ध संस्कार से भी जुड़ जाता है जो पत्नी को हीन और आश्रिता करार देने का आदी रहा है । 'सीखचों ' के भीतर कहानी का पति इसी दूषित मानसिकता से ग्रस्त है । वह पागलपन की वहशत में समस्त नारी जाति के ऊपर अपनी संकीर्ण मानसिकता का उबाल इस रूप में व्यक्त करता है --

'मैं जानता हूं - मैं ' उन्होंने छाती ठोंकते हुए कहा, 'दुनिया की जितनी बदचलन औरतें हैं, वे अपने पतियों को उतना ही ज्यादा प्यार करती हैं । जिसकी यारी जितनी गहरी होगी, पति के लिए उसके प्यार का नाटक उतना ही गहरा और सफल होगा ।'[11]

नये पुराने मूल्यों का संघर्ष और उभरती स्वार्थपरता

पुराने से छूट जाने का दर्द और नई परिस्थितियों वाले तेज जीवन के प्रवाह में कशमकश एवं दबावों को झेलते हुए अपनी सार्थकता और साथ ही व्यर्थता खोजते कहानीकार को जिस तरह से कदम कदम पर भ्रम के टूटने का सामना करना पड़ा है, उसने हर चीज से साठोत्तर दशक के कहानीकारों की आस्था उठा दी, वह हर वस्तु में अस्थिरता और हर व्यक्ति में अविश्वास की छाया देखने का आदी हो गया । अत: इन लेखकों में पुराने सन्दर्भों, सम्बन्धों और मान्यताओं के प्रति उदासीनता

और क्षुब्ध आक्रोश का स्वर उभरने लगा । परिणामस्वरूप स्थापित नैतिकता, सम्मान, मूल्यों आदि से मिलकर उपेक्षा और आक्रोश की ध्वनि प्रकट होने लगी। इस प्रकार उन पुराने मूल्यों के प्रति मन में सहानुभूति हो भी नहीं सकती थी, जो इन नई परिस्थितियों के सामने न सिर्फ व्यर्थ और हवाई साबित हो गये थे, बल्कि आसानी से उन्हें इनके अनुरूप ढाला भी नहीं जा सकता था ।

इस आधुनिक मूल्यहीनता का रूप द्वधनाथ सिंह की अनेक कहानियों में उग्र रूप से उभर कर सामने आया । `उत्सव` कहानी में परम्परा से चले आने वाले सारे नैतिक एवं सात्विक जीवन मूल्यों को ताक पर रखकर आज की खींचम-खींच स्वार्थपरता, किसी भी मानवीय या अमानवीय तरीके से धन कमाने की धुन, और समाज सेवा की खाल ओढ़े भयंकर असामाजिक कुटिल कार्यों में दिलचस्पी आदि मानव की अमानवीयता पर घोर अविश्वास का कालिख चढ़ा देती है । कहानी के पात्र `मृतक सेवा संस्थान` की आड़ में मस्ती भरा जीवन बिताने के लिए प्रयासरत हैं । लोगों की चीख पुकार के बीच मौज मस्ती का जीवन ढूंढ़ने वाले, बनावटी आंसू ढुलकाने वाले, मानवता पर कालिख, ये कफन चोर आज के समाज के बीच पलने वाली मतलबपरस्ती की मानसिकता को इस रूप में उभारते हैं --

`मेरे प्यारे शहर के प्यारे नागरिको, आपने हमें सेवा का अवसर दिया, इसके लिए हम आपके आभारी हैं । आप जानते ही हैं, जीवन कितना क्षण भंगुर है । पता नहीं, कब मेला उठ जाय । हम सभी एक ही मंजिल के मुसाफिर हैं ।`[12]

झुकाव अस्तित्ववादी दर्शन की ओर

अस्तित्ववादी दर्शन के प्रमुख विचारक ज्यां, पाल और सार्त्र मनुष्य की स्वतंत्रता के हिमायती हैं । इस दर्शन के अनुसार मनुष्य के चतुर्दिश निराशा ही निराशा है । इस निराशा के दौर में अपने व्यक्तित्व के उन्मीलन के साथ मनुष्य अत्यन्त संत्रस्त हो जाया करता है । परिणामस्वरूप इस निराशा भरे शून्य से ऊपर उठ कर वह अपने अस्तित्व की रक्षा करना चाहता है । इस अवधारणा के

अनुसार मनुष्य जीने के लिए सतत संघर्ष करता रहता है, लेकिन जीने की अनुकूल परिस्थितियां नहीं पाता । परिणामस्वरूप, परायापन, अजनबियत, विराग, निस्संगता, अकेलापन और समसामयिक संवेदनशीलता व्यक्ति की नियति बन जाती है । इस अस्तित्ववादी विचारधारा का प्रभाव द्वधनाथ सिंह की कहानियों पर भी देखा जा सकता है, परन्तु यह अस्तित्ववादी दर्शन के रूप में न आकर जीवन की उभरती हुई सचाइयों से रूबरू होने की प्रक्रिया के रूप में आया है । इनके पात्र इन्हीं सारी प्रक्रिया से गुजरते हैं और इस प्रक्रिया में टूट-टूट जाते हैं ; फिर भी वे इस विचारधारा को कला के साथ जोड़ कर प्रस्तुत करने में अधिक सफल हुए, जैसा कि डा० संत बख्श सिंह का कहना है --

"व्यक्ति के इस अस्तित्वचेता स्वरूप का अत्यंत व्यापक और कलात्मक स्वरूप द्वधनाथ सिंह की कहानियों में सबसे अधिक मिलता है ।"[13]

इस अस्तित्ववादी चिंतन का प्रभाव केवल उनकी कहानियों के कथ्य पर ही नहीं पड़ा बल्कि शिल्प निर्माण में भी इसे बखूबी उन्होंने ग्रहण किया । इसके माध्यम से पात्रों की मानसिक बुनावट को टटोलने का प्रयास इनकी कहानियों में दिखाई पड़ता है । उदाहरण के लिए 'सुखान्त' कहानी की ये पंक्तियां --

"लेकिन दिन बीतता जाता है । क्या मैं जगा हुआ हूं ? क्या सचमुच में सब चलता रहेगा ? ये घटनाहीन घटनाएं क्या इसी तरह बनी रहेंगी ? - - - - - - - - वे सुखी हैं, मेरी ओर से निश्चिन्त हैं । वे मुझे अपनी ओर से कोई भी रियायत देने को तैयार नहीं हैं । वे मौत को झुठला रही हैं ।"[14]

व्यर्थता और खालीपन

आज युवा पीढ़ी लक्ष्यहीनता और दिशाहारा की ओर बढ़ती जा रही है, नवयुवक तनावों में पड़कर व्यर्थता की कटुता झेल रहा है, परिणामस्वरूप उसमें जीवन का लक्ष्य निर्धारित करने की बेचैनी बढ़ रही है । युवा पीढ़ी के

लिए इस प्रकार की व्यर्थता का बोध कोई मामूली बोझ नहीं और यह बोझ उस हालात में और भी अधिक असहनीय हो जाता है जबकि दुनिया की नजरों में वह फालतू हो जाता है। परिणामस्वरूप जीवन से एक ऐसा विराग उत्पन्न हो जाता है कि वह व्यर्थ अस्तित्व और मौत की ओर चलने लगता है। आज की सभ्यता आदमी को सिवा खाली और सूना बनाने के कुछ नहीं कर रही है। वह इन सब को अकेले झेलता है। साथ ही उसके भीतर अविश्वास और सन्देह की छाया भी गहरी होती जा रही है। 'सपाट चेहरे वाला आदमी' कहानी का नायक जीवन की एकरसता और नीरसता से ऊब चुका है। वह सम्पूर्ण कहानी में अपनी जिजीविषा की खोज करता रहता है परन्तु उसे वह कहीं नहीं पाता। परिणामस्वरूप वह संसार के व्यक्तियों के प्रति अविश्वास से ग्रस्त हो जाता है। औरत से प्रेम के प्रति अविश्वास व्यक्त करते हुए कहता है कि --

'कर सकता हूं, लेकिन कोई औरत विश्वास नहीं करेगी। वह मेरे प्यार से ऊब जायेगी। यदि मैं बहुत ज्यादा लीन हो गया ... बिल्कुल केन्द्रस्थ, तो वह न जाने क्या से क्या समझ बैठेगी। भावुक, सस्ता या कामी।'[15]

अवसंगत की स्थिति

आज आदमी अपने को माहौल के साथ संगत भी नहीं बना पा रहा है। वह वर्तमान सामाजिक विरोध से भरा हुआ है। इसका कारण व्यक्ति द्वारा पूरी तरह से न तो रूढ़िगत मानसिकता त्याग पाना और न पूर्णतः आधुनिकता को स्वीकार कर पाना है। इस प्रकार वह इस अन्तर्विरोध के चलते अवसंगत की नियति का शिकार हो जाता है। यह समस्या आधुनिक वधू और संस्कार रूढ़ सास के बीच भी पैदा हो सकती है। अवसंगत की स्थितियां छोटे-छोटे दायरों में चल रही टुच्ची और भद्दी राजनीति के द्वारा भी पैदा हो जाती है। घर परिवार से ले कर परिवार के भरपूर विस्तार तक अवसंगत के अनेकानेक रूप दिखाई देते हैं। 'रक्तपात' कहानी का संजय इसी अवसंगत का शिकार है। वह अपने घर में 'फिट' नहीं हो पाता है। परिणामस्वरूप उसे घर छोड़कर जाना पड़ता है, पिता से

उसका गम्भीर वैचारिक मतभेद और पत्नी को किसी वेश्या से कम न मानना उसका परिवार से अलगाव और कटाव का कारण बना । उसे यदि माँ में कुछ विश्वास है तो भी वह पिता से नाराजगी के कारण नहीं खुल पाता है । संजय का घर छोड़कर जाना और पिता की मृत्यु के बाद आने पर भी परिवार के भीतर अकेलेपन, परायेपन को लगातार ढोते रहना पारिवारिक अवसंगत का पर्दाफाश करती है ।

अन्तर्विरोध की पीड़ा

धूमनाथ सिंह की कहानियां इस बात को बखूबी उभारती हैं कि आज के युवक को सब कहीं अन्तर्विरोधों का सामना करना पड़ रहा है । ये विसंगतियां अंदर-बाहर, और चारों ओर उसे घेरे हैं । परिणामस्वरूप उसका व्यक्तित्व प्याज के छिलकों की तरह पर्तों वाला होता जा रहा है । अतः आज का युवा अपने किसी व्यवहार में सहज नहीं रह गया है । वह स्वयं ही अपनी असली पहचान खो चुका है । वह इस तरह से परेशान है कि कभी असलियत को छोड़ कर बनावट को आगे बढ़ाता है और कभी बनावट को असलियत का जामा पहनाने में अपनी सारी शक्ति लगा देता है । वह कृत्रिमता में इतना जी रहा है कि उसका स्वभाव ही कृत्रिम हो गया । यदि युवा विवाहित है तो उसे सबसे अधिक कृत्रिम व्यवहार पत्नी के साथ करना होता है । `रीछ` कहानी का `मैं` अपने अतीत की प्रेम संबंधी स्मृतियों को प्रयास करके भी नहीं भुला पाता, परन्तु उसे इस बात का सदा डर बना रहता है कि कहीं उसका अतीत उसके वैवाहिक जीवन को न नष्ट कर दे । इसीलिए पत्नी को न चाहता हुआ भी कृत्रिम प्रेम जताता रहता है और निरन्तर एक प्रकार के द्वन्द्व और अन्तरविरोध का शिकार होता रहता है । कहानीकार के शब्दों में --

> "पत्नी के प्यार अथवा वासना के आवाहन का यह ढंग अब उसका इतना तकिया कलाम बन गया था कि उसे केवल चिढ़ ही होती । लेकिन बिस्तर में आ जाने के बाद वह कुछ नहीं कर सकता था, सिवा ... । शायद वह इस तरह शरीर के स्तर पर उतर कर सब कुछ भूलना चाहता था ।"[16]

नग्नता और अश्लीलता का खुला प्रदर्शन

नग्नता और अश्लीलता सन् 1960 ई० के पहले नये कहानीकारों में किस प्रकार से कम नहीं दिखाई पड़ती, परन्तु साठोत्तरी कहानीकारों ने उस विरुचिपूर्ण ईमानियत और कहानीकार की संलग्नता से अपने को मुक्त करके अश्लील को यथार्थ का पर्याय बना दिया और अपने को एक तटस्थ द्रष्टा के रूप में प्रतिष्ठित किया। इस प्रकार साठोत्तर के दशकों में ढेर सारे कहानीकारों की लेखनी सेक्स और यौवन के चारों ओर मंडराने लगी। शायद ही ऐसा कोई साठोत्तरी युग का महत्वपूर्ण कहानी लेखक होगा जिसने सेक्स पर कोई कहानी न लिखी हो। इन सब प्रयासों से कहानी में वास्तविकता भले ही आ गयी हो, किन्तु वह भी उरोजों के भार और नितंबों के विस्तार में पिस कर रह जाती है।

इसी मानसिकता के चलते दूधनाथ सिंह भी इस साहित्यिक बीमारी से अछूते न रहे। उन्होंने सेक्स को आधार बनाकर मात्र एक कहानी `शिनाख्त` लिखी परन्तु कुछ अन्य कहानी `रीछ` और `रक्तपात` में भी सेक्स के गर्म चित्र उभर कर सामने आए हैं। इसके अतिरिक्त कहानियों में सेक्स संबंधी सांकेतिक बातें भी हैं। यथा -

`धत्।` वे मुस्कुरा पड़ी, कुहनी तकिया से टिकाकर हथेलियों पर अपना सिर रख कर ऊंची हो गयी। एकाएक उनके चेहरे का भाव एकदम बदल गया। बोली, `इतना अत्याचार क्यों करते हो ?`[17]

भय और संत्रास

वर्तमान जीवन की दो विडम्बनाएं हैं - `संत्रास` और `असुरक्षा बोध`। साठोत्तर युग की अनेक कहानियों में इसका चित्रण है। दूधनाथ सिंह के कहानी पात्र बराबर असुरक्षा बोध अनुभव करते हैं। उनकी कहानी `प्रेम` का नायक घर वालों के स्नेह से वंचित होकर घर से भागा हुआ है। वह जिस घर में बुखार से पीड़ित

अवस्था में आश्रय पाता है, जब उस घर की बुढ़िया, उससे घर छोड़ कर भागने का कारण पूछती है तो लड़का कहता है --

> 'मुझे डर लगता है। मैं माँ को क्या मुंह दिखाऊंगा, मैं क्या कहूंगा। मेरे भाई बहन हैं। और वे सभी असहाय हैं। वे मेरा मुंह ताकेंगे। मुझे असहाय लोगों को देखकर, डर लगता है।'[18]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि संसार में गंदगी कहां नहीं है। रुचि-सम्पन्न व्यक्ति के लिए पग-पग पर धक्का देने वाली चीजें अवश्य दिखाई पड़ जाती हैं। सेक्स, गरीबी, नैतिक अवमूल्यन, खोखलापन, असंतोष, संत्रास, कुण्ठा आदि को कहानी में पात्रों के माध्यम से उभार कर आगे लाना बड़ी योग्यता और क्षमता की बात होती है और यह क्षमता कहानीकार दूधनाथ सिंह में खूबी देखी जा सकती है। जैसा कि नेमिचन्द जैन का इनकी कहानियों के बारे में सोच है --

> 'कुल मिलाकर यह एक घिनौना, हिंसा भरा संसार है। जिसके निवासी प्रायः अस्वस्थ और अमानवीय स्तर पर असहायता के साथ जिंदगी बिताते हैं।'[19]

0

संदर्भ :

----

1 'साक्षात्कार', 'साठोत्तरी कहानियां : दूधनाथ सिंह की दृष्टि में कुछ प्रश्न और विचार, पृ0 195

2. 'कोरस' कहानी, सपाट चेहरे वाला आदमी' संग्रह, दूधनाथ सिंह, पृ0 139

3. 'अविश्वास की प्रतिबद्धता', दूधनाथ सिंह, 'लहर', 1967-68 अंक 3, पृ0 46

4. 'दु:स्वप्न' कहानी, 'सपाट चेहरे वाला आदमी' संग्रह - दूधनाथ सिंह, पृ0 53
5. 'रीछ' कहानी, वही, पृ0 29
6. 'प्रतिशोध' कहानी, वही, पृ0 96
7. 'रक्तपात' कहानी, वही, पृ0 149
8. वही, आवरण पृष्ठ
9. 'सींखचों के भीतर', 'प्रेम कथा का अंत न कोई' कहानी संग्रह - दूधनाथ सिंह, पृ0 95
10. 'शिनाख्त' कहानी, 'सुखान्त' संग्रह - दूधनाथ सिंह, पृ0 41
11. 'सींखचों के भीतर' कहानी, 'प्रेम कथा का अंत न कोई' संग्रह - दूधनाथ सिंह, पृ0 89
12. 'उत्सव' कहानी, वही, पृ0 59
13. 'नई कहानी : कथ्य और शिल्प' - डा0 संतबख्श सिंह, पृ0 51
14. 'सुखान्त' कहानी, 'सुखान्त' संग्रह - दूधनाथ सिंह, पृ0 126-127
15. 'सपाट चेहरे वाला आदमी' कहानी, 'सपाट चेहरे वाला आदमी' संग्रह - दूधनाथ सिंह, पृ0 167
16. 'रीछ' कहानी - वही, पृ0 13-14
17. 'रक्तपात' कहानी - वही, पृ0 157
18. 'प्रेम' कहानी - दूधनाथसिंह, पृ0 137 समास / तीन
19. 'पैनी तराश और डरावना अनुभव संसार' - 'जनान्तिक' - नेमिचन्द जैन, पृ0 129

00

तृतीय अध्याय

कहानी कला

प्रत्येक कलाकार या कहानीकार अपने समय और परिवेश की उपज होते हैं। इसलिए उसकी कहानियों का तद्युगीन विशेषताओं और संदर्भों से प्रभावित होना स्वाभाविक है, फिर भी जो कलाकार युगीन प्रवृत्तियों को आत्मसात् करते हुए उसको अधिकाधिक मुखर रूप से व्यक्त करने तथा उस विधा-विशेष को लीक से हट कर कुछ नयापन देने की क्षमता रखता है, वह उस क्षेत्र में महारथी कहलाता है। दूधनाथ सिंह ऐसे ही समर्थ कहानीकार हैं, जिन्होंने साठोत्तरी कहानियों को बहुत कुछ समृद्ध किया और बदले में अपनी अलग पहचान बनाई। उन की कहानियों के अध्ययन से निम्न तथ्य उभर कर सामने आते हैं।

दूधनाथ सिंह साठोत्तरी कहानियों के एक प्रमुख कहानीकार हैं, यद्यपि उन्होंने बहुत ज्यादा कहानियां तो नहीं लिखीं परन्तु इन्हीं के माध्यम से इन्होंने कहानी जगत में अपनी जो पहचान कायम की, वह आज तक बरकरार और अधिकाधिक प्रभावशाली है। उनके अभी तक कुल चार कहानी संग्रह प्रकाश में आए हैं। इसके अलावा भी पांच-सात अन्य कहानियां पत्रिकाओं में बिखरी पड़ी हैं। इसकी वजह बताते हुए इनका कहना है --

> 'जब यह स्थिति आ जाती है, तब बैठना पड़ता है। लिखने के बाद ऐसा होता है कि हम आसन करने के बाद श्वासन करें, आराम करें। फिर बहुत दिनों तक कुछ न लिखने की इच्छा होती है। कुछ खास तरह की विचार प्रक्रिया खत्म हो जाय तब खाली महसूस करता हूं। विचार इस हद तक प्रताड़ित कर देता है कि, उसको बाहर लाये बिना कोई चारा नहीं है, तब हम कलम लेकर बैठते हैं।'[1]

नये और पुराने सभी लिखने वालों के सामने जीवन तो एक ही था, परंतु उसको देखने, जीने के संस्कार और एप्रोच अलग थे, जो कहानी के रूप और भाषा को अलग करते थे। प्रारम्भिक दौर में नये कहानीकारों का पुराने संस्कारों से पूर्णत: मोहभंग नहीं हुआ था, इसीलिए नई कहानी से साठोत्तरी कहानियां एक झटके के साथ अलग न हो सकीं परन्तु क्रमश: उसकी भूमिका बदलने लगी और यही प्रक्रिया आज तक चल रही है। अत: नई कहानियों की प्रवृत्तियों का प्रभाव साठ के बाद की कहानियों पर स्पष्टत: देखा जा सकता है। इस प्रक्रिया के चलते दूधनाथ सिंह की कहानियों को किसी विशिष्ट सीमा में बांध कर रखना उनके साथ ज़्यादती होगी।

कथ्य दृष्टि

वैयक्तिकता का आग्रह

नितांत वैयक्तिक अनुभव भी विचार और संवेदना से जुड़कर कहानी को कैसे प्रामाणिक बना सकता है, इसका अच्छा उदाहरण दूधनाथ सिंह की कहानियां हैं। इनकी कहानियों में कहानीकार का अनुभव नग्न रूप में दिखाई पड़ता है, लेकिन समाज और परिवेश की विकृतियों से जोड़कर वे अनुभव की इस निजता को तोड़ते हुए उसे बृहत्तर सामाजिक सन्दर्भों में ढाल देते हैं। यद्यपि इस व्यक्ति-वादिता के युग में लिखने पर भी वे इस प्रक्रिया की दूषित मानसिकता से मुक्त हैं। उनकी वैयक्तिक अनुभूतियां भी इस रूप में प्रस्तुत की गयी हैं जिससे उनमें एक सामाजिकता का स्वर मुखरित हो उठा है। कारण है साकेतिकता की प्रधानता। कहानीकार अपनी कहानियों के मध्य किसी एक पात्र को कहानी के केन्द्र-बिन्दु के रूप में चुनकर सारी स्थितियों को उसके इर्द-गिर्द ही घुमाते रहते हैं और उसी पात्र के माध्यम से समाज के अन्य महत्वपूर्ण प्रश्नों को रेखांकित करते चलते हैं। वास्तव में पात्र ही वह माध्यम है जिसके द्वारा कहानी में साकेतिकता का समावेश होता है और सीमित कथानक होने पर भी उसे व्यापक धरातल प्रदान करता है।

`रक्तपात` कहानी क्या `संजय` और उसकी बुढ़िया मां की ही कहानी है ? या दोनों में से किसी एक को रेखांकित करने वाली कहानी ? पर इस प्रश्न का जवाब इतना आसान नहीं, क्योंकि यह इन दोनों की कहानी होते हुए भी केवल इन्हीं दोनों की नहीं है ; बल्कि आज की भौतिकतावादी संस्कृति में पलने वाले, निराशा, कुण्ठा, बेरोजगारी और अजनबियत में जी रहे नवयुवक के बाहर और भीतर होने वाले रक्तपात की कहानी है। इस `रक्तपात` का सम्बन्ध माँ का सिर फोड़ कर निकलने वाले रक्त की अपेक्षा `संजय` के भीतर माँ के प्रति उमड़ने वाले प्रेम और माँ के लिए चाह कर भी कुछ न कर पाने की विवशता से होने वाले रक्तपात से अधिक है। साथ ही आज के पारिवारिक माहौल में माँ की वास्तविक स्थिति की ओर सकेतात्मक परन्तु क्रूर व्यंग्य है। पत्नी और माँ इन दोनों पाटों के बीच में पिसने वाले, और दोनों में सामंजस्य न बिठा पाने वाले युवक के भीतर `रक्तपात` होना स्वाभाविक है जो आज के युवक की अजनबीयत में जीने वाली नियति को उभारती है।

नये बने रहने की कोशिश

दूधनाथ सिंह एक ऐसे लेखक हैं, जिनकी रचनाओं में नई कहानी के बाद आने वाले प्रत्येक मोड़ की कहानी मिल सकती है ; इसलिए उनकी कहानियों को किसी एक सीमा में नहीं बांधा जा सकता। उनकी सारी कहानियां केवल कथ्य और शिल्प के स्तर पर ही नहीं, बल्कि भाव-बोध और चेतना के स्तर पर क्रमिक विकास का प्रतिफल हैं। अत: यदि उनकी प्रारम्भिक और परवर्ती कहानियों की तुलना की जाय तो उनमें काफी अंतर मिलेगा। यह अंतर आज के युग की परिवर्तनशील दृष्टि के कारण है। इसी के चलते अब कुछ कहानियां स्वयं लेखक को अटपटी लग रही हैं, परिणामस्वरूप उसे लेखक ने कहानी संग्रह से बाहर कर दिया, जैसा कि `सुखान्त` संग्रह की कहानी `कबंध` के साथ हुआ। इस परिवर्तनशीलता को स्वीकार करते हुए दूधनाथ सिंह ने अपने साक्षात्कार में कहा है कि --

"इसीलिए अगर तुम देखोगे तो मेरी शुरू की कहानियों से लेकर अब तक की कहानियों में बहुत ज्यादा परिवर्तन, विकास, परिलक्षित होगा, ऐसा नहीं कि जो पहली कहानी है, या जो शुरू की कहानी है तथा बाद की कहानियों की सिद्धियां संकुचित होती चली गयीं। मैंने हर कहानी का शिल्प, उसकी भाषा तथा संवेदना को अलग से ढूंढ़ने का प्रयास किया, क्योंकि एक ही चीज को बार-बार लिखने का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता।"[2]

मानवीय सहानुभूति का एक और रूप

रामविलास शर्मा जी और व्यक्तिवादी, कलावादी अज्ञेय भी प्रेमचन्द की महत्ता का निर्धारण मानवीय सहानुभूति की व्यापकता के आधार पर करते हैं। यह मानवीय सहानुभूति चाहे जिस रूप में प्रेमचंद या अन्य कहानीकारों में दिखाई पड़ती हो परन्तु समय परिवर्तन के साथ-साथ आज की कहानियों में भी यह व्यक्तिवादिता के धरातल पर ही सही, पर दिखाई अवश्य पड़ती है। व्यक्ति की कुण्ठा, हताशा, निराशा, अजनबियत और बेगानेपन का चित्रण भी एक प्रकार की मानवीय सहानुभूति का ही रूप है जो दूधनाथ सिंह की कहानियों में कदम-कदम पर उभर कर सामने आता है। जीवन की अगढ़ता को उसके वास्तविक और मूल रूप में प्रस्तुत करने के आग्रह के कारण इनकी बाद की कहानियों में बढ़ने वाला सपाटपन और प्रतीकात्मकता का घटता रूप देखा जा सकता है। कहानी में आने वाली इस व्यक्तिवादिता को अकहानी दौर के कहानीकार काल्पनिक मानने को तैयार नहीं। वे यह स्वीकार करते हैं कि कमोबेश सभी लोग ऐसा ही जीवन जीते हैं। इसे वे जीवन की तीखी, त्रासदायक और साहसिक चित्रण की अभिव्यक्ति के रूप में स्वीकार करते हैं जिसमें आक्रोश और आवेश की एक निर्णायक भूमिका होती है। इसलिए इनकी कहानियों में कथा तत्व बराबर घटता दिखाई पड़ता है, घटनाएं और ब्यौरे अल्पतम हैं -- उतने ही जितने से लेखक का काम चल जाता है। अतः न तो घटनाएं और न पात्रों पर पड़ने वाला प्रभाव ही महत्वपूर्ण बन सका है, बल्कि उन परिस्थितियों का जीवन्त चित्र जिसमें आज का व्यक्ति जी रहा है, अधिक

प्रभावकारी रूप में मुखर हुआ ।

स्वतंत्रता और मुक्ति का आग्रह

आज की कहानियों की मूल चिंता किसी न किसी रूप में मनुष्य की मुक्ति से जुड़ी हुई है । इसमें एक ओर जहां भारतीय समाज में जीने वाली आम जनता के अभावों और विविध रूपों में उत्पीड़न से मुक्ति का प्रयास है, वहीं पुरुष वर्चस्व वाले समाज में स्त्री की अपनी अस्मिता और बंधनहीनता का सवाल भी है । दूधनाथ सिंह की कहानियों में एक बात यह विशिष्ट रूप में देखने को मिलती है जो अन्य समकालीन कहानीकारों में प्राय: कम ही दिखाई पड़ती है । वह यह है कि इनकी कहानियों में नारी का जो रूप दिखाई पड़ता है, उसमें आधुनिकता का पूरा का पूरा रूप समा गया है । वह पुरुष की क्रूर बेड़ियों की दासी न होकर अपना अलग अस्तित्व रखती है, बल्कि कुछ कहानियों में वे यहां तक बढ़ गये कि पुरुष पर पूर्ण वर्चस्व रखने वाली नारी के चुनौतीपूर्ण व्यक्तित्व का समर्थन सा करते दिखाई पड़ते हैं । परन्तु उनकी हाल में प्रकाशित कहानी `धर्मक्षेत्रे : कुरुक्षेत्रे ` इस धारणा का खण्डन करती है । साथ ही वह नारी स्वातंत्र्य को लेकर उठने वाले प्रश्नों के बीच हमें भी बहुत गहरे अतीत में ढकेल देती है । जहां नारी मात्र पुरुष के हाथों बिकती रहने वाली बाजारू वस्तु के अलावा और कुछ नहीं दीखती । लेकिन यह कहानी अतीत में चलने वाले नारी सौदेबाजी के धन्धे की पृष्ठभूमि में लिखी गयी है जो अब नहीं दिखाई पड़ता है ।

इनकी जो कहानियाँ आज के परिवेश में लिखी गयीं, वह है `बिस्तर` । जिसमें नारी की व्यापक स्वतंत्रता के तले पिसने वाले लाचार पति को एक निरीह प्राणी के रूप में दिखाया गया है, जो अंत में मजबूर होकर अपनी पत्नी और बच्चों को उसके प्रेमी के हाथ सौंप आता है । इसी तरह `आज इतवार था` कहानी का `मैं ` अपनी पत्नी के इशारे पर नाचता और कुढ़ता हुआ नजर आता है ।

जो अपने बच्चों के अनुरोध पर अन्य जानवरों की बोली तो सुना सकता है परन्तु शेर बनने में बहुत तकलीफ का अनुभव करता है क्योंकि वह उसकी स्थिति के विपरीत है -

'शेर नहीं बन सकता बेटे !'

'क्यों ?'

'शेर बड़ा खूँखार होता है । वह जंगल में अकेले रहता है । वह किसी से नहीं डरता । उसकी आवाज बहुत भारी होती है । वह दहाड़ता है तो जंगल कांप जाता है,' कहता हुआ चारों खाने चित्त पसर गया ।'[3]

इस उद्धरण से कहानीकार ने सांकेतिक रूप से ही सही, पर आज के नारी-मुक्ति आन्दोलन के चलते निरन्तर दम तोड़ते पति के घायल स्वाभिमान की एक झलक प्रस्तुत की है । कहानी 'स्वर्गवासी' में आज के नारी का बेटी के रूप में दुरुपयोग पर करारा व्यंग्य है जिसका पिता पैसा कमाने की आड़ में बेटियों की स्वतंत्रता को बढ़ावा देता है । 'सपाट चेहरे वाला आदमी' कहानी में अपने सामाजिक परिवेश और परिस्थितियों से समझौता कर लेने वाली नारी के वेश्या रूप का मार्मिक चित्रण है । परन्तु 'ममी तुम उदास क्यों हो ' की 'रेवाड़ी मेम साहब' अपना एक अलग रूप ही निखारती हैं। उनको वह सारी स्वतंत्रता और सुविधाएं मुहैया हैं जो किसी आधुनिक नारी को प्राप्त हो सकती हैं, फिर भी उसकी चरम परिणति पागलपन में दिखाकर कहानीकार ने इस नारी स्वतंत्रता को उच्छृंखलता का रूप दे दिया जो कि पाठकों पर अपना कोई अच्छा प्रभाव नहीं डाल सका । 'सब ठीक हो जायेगा' की नारी अपनी परिस्थितियों की मार और पति की बीमारी के कारण देह व्यापार करने के लिए मजबूर दिखाई पड़ती है । परन्तु पति की मृत्यु के बाद भी, उसका उसी व्यापार में लिप्त रहने का कारण समझ में नहीं आता । हो सकता है कि इसके माध्यम से कहानीकार ने यह संकेत करने का प्रयास किया हो कि यदि नारी का इस क्षेत्र में एक बार पदार्पण हो जाता है तो वह पुन: अपने वास्तविक दुनिया में जाने के लिए गर्हित हो जाती है ।

विशिष्ट बौद्धिकता की माँग

दूधनाथ सिंह की कहानियाँ अज्ञेय की कहानियों की तरह बुनावट में जटिलतर होती चली गयी हैं। इसलिए बिना एक विशिष्ट बौद्धिक स्तर तक पहुचे, उनका रस लेना संभव नहीं। उनकी आसपास के परिवेश को देखने, परखने और अनुभव करने की खास दृष्टि, स्वं काव्यात्मक प्रसंगों आदि के प्रति विशिष्ट आत्मनिष्ठा है। परिणामस्वरूप कहानी में साकेतिकता, प्रतिकात्मकता और नित्यप्रति परिवर्तन का भाव झलकता है। शिल्पगत चमत्कारों के कारण दूधनाथ सिंह की कुछ कहानियाँ बनावटी सी लगती हैं। शिल्प वैचित्र्य सदैव नए बने रहने की ललक और फैंटेसी के प्रति अनावश्यक मोह ने उनकी कहानियों को सीधे-सीधे ढंग से व्यक्त करने में अवरोध का काम किया। इसलिए इनकी कहानियाँ एक गम्भीर और अनुभवी पाठक की मांग करती हैं, जैसा कि कहानीकार ने अपने साक्षात्कार में `रीछ` कहानी पर झुंझलाहट व्यक्त करते हुए कहा है कि --

> `अरे भाई! कहानी आप ध्यान से पढ़िए, कहानी में जो पोरसन बकायदा थोड़े मोटे टाइप में छपे हैं, उन पर ध्यान दीजिए। आप कहानी को एक सामान्य, एक बहुत ही कम बुद्धिवाले पाठक की तरह पढ़ते हैं, यहाँ तक कि बड़े-बड़े आलोचकों ने एक कम बुद्धिवाले पाठक की तरह, इस कहानी (`रीछ`) को पढ़ा है।`[4]

इस प्रकार इनकी कहानियों के लिए ऐसे पाठक वर्ग की अपेक्षा है जिसमें कहानी की तह तक पहुंचने की क्षमता हो। ऐसे में इनकी कहानियों को हल्के ढंग से मनोरंजन के रूप में लेने पर अर्थ का अनर्थ होने की संभावना अधिक बनती है। जैसा कि प्राय: इनकी कहानी `रीछ` और `कौरस` के साथ हुआ। इसके चलते `रीछ` कहानी बहुत दिनों तक साहित्य जगत में विवाद का विषय रही, और लोग उसे सेक्स व्यापार करार देने में अपनी गरिमा का अनुभव करते रहे। ऐसी स्थिति में सारा दोष पाठक का ही नहीं है, क्योंकि कहानी में लेखक ने कुछ इस

प्रकार के संकेत किए हैं जिससे उसके दो अर्थ निकलते हैं। कहानी की शुरुआत पति-पत्नी के बिस्तर प्रसंग से होना और उसमें नायक जिन-जिन प्रक्रियाओं से होकर गुजरता है, उन सब में सेक्स होने की गुंजाइश बराबर बनी रहती है। अब यदि पाठक वर्ग इस कहानी पर सेक्स का आरोप लगाता है तो यह उसका दोष नहीं है।

मामूली जिंदगी के पात्र

दूधनाथ सिंह की कहानियों के पात्र मामूली आदमी हैं। वह किसान, मजदूर, व्यापारी, क्लर्क, साहब-अफसर, राजनेता, लेखक, पत्रकार, चित्रकार और पटवारी कोई भी हो सकता है और उसकी अपनी वैयक्तिक विशिष्टताएँ भी हो सकती हैं, जिससे वह टाइप नहीं चरित्र बनता है। वह अपने में पूर्ण एक इकाई है जो कहानी में अपनी समस्त अंतरंग और बाह्य स्थूलताओं एवं सूक्ष्मताओं के साथ आता है। इस प्रकार आम आदमी के चेहरे को इनकी कहानियों में देखा जा सकता है। इन चेहरों के अनुभव बदलते हैं, मनोगतियों की भिन्नता के कारण चेहरे पर अंकुवन में भी भिन्नता आती है, लेकिन इन सभी चेहरों में एक बात सामान्य है - स्थिति की प्रतिकूलता का एहसास। 'प्रतिशोध' कहानी इसका एक उदाहरण है जिसमें एक व्यक्ति को अपने पारिश्रमिक के लिए दफ्तर का चक्कर काटते-काटते कई दिन बीत जाते हैं। साथ ही शहरी जीवन की सारी विसंगतियाँ, विपन्नता, स्थानाभाव और बेरोजगारी झेलने के पश्चात् उसे जो 'पेमेण्ट' मिलता है, वह इतना कम कट कर मिलता है कि जिसको लेने की चाह व्यक्ति में मर जाती है।

इनके पात्रों की सबसे बड़ी विशेषता है कि वे विवेकहीन भीड़ का अंग नहीं है। वह निष्क्रिय, परोपजीवी, कायर-कुत्सित, दीन-हीन, भ्रष्ट और निहायत गयाबीता होने से लेकर, वीर, बुद्धिमान, साहसी, पराक्रमी आदि कुछ भी हो सकता है। लेकिन इनकी कहानी पात्रों के माध्यम से कही हुई कहानी नहीं है, उसके मात्र बाह्य रूप की कहानी नहीं, बल्कि उसके व्यक्तित्व, सोच-विचार, उसके कार्य-कलाप, उसके परिवेश और परिस्थितियों से जो कहानी बनती

है, वह उनके अच्छे बुरे कैसे भी व्यक्तित्व से एक सामाजिक सचाई को प्रस्तुत करती है। जैसा कि दूधनाथ सिंह ने अपने एक लेख में उद्धृत किया है --

'एक सीधे आरोपित यथार्थ का दिग्दर्शन ही रचनाकार का सच्चा लक्ष्य बन गया है। स्थितियाँ इस तरह से बदल गयी हैं कि वह अपनी ओर से कुछ जोड़ नहीं सकता, न ही किसी को आश्वस्त कर सकता है, न समाज या इतिहास को किसी अंतिम निश्चय की ओर जाने के लिए मार्गदर्शन कर सकता है।'[5]

एक तरह से दूधनाथ सिंह की कहानियों की दुनिया कोई खास निजी दुनिया नहीं है। इनमें रोजमर्रा की जिंदगी से होने वाले अनुभवों को प्रस्तुत किया गया है क्योंकि नई कहानी की आधारभूत समस्याओं में यह भी था कि कहानी के माध्यम से आसपास की परिचित जिंदगी को ही अंकित किया जाना चाहिए, जिसे इन्होंने चुनौती के रूप में स्वीकार किया और पूरा किया। परन्तु अंतर वहाँ दिखाई पड़ता है जहाँ उनको देखने वाली नजर, उसके कोण और इन दोनों के कारण उभरने वाले रूप और भाषाई संगठन में एक फर्क आ जाता है। परिणामस्वरूप इनकी कहानियों की दुनिया एकदम विशिष्ट और विस्मयकारी जान पड़ती है जिससे किसी न किसी परिचित सम्बन्ध अनुभव या रूख का कोई अन्तर्विरोध या नया अर्थ खुल जाता है या इसकी कोई नई परत उभर कर सामने आती है। इस प्रकार दूधनाथ सिंह की कहानियां 'काफ्का' और 'हेमिंग्वे' की रचनाओं की तरह मध्यवर्गीय परिवार, आज के मानव एवं उसके जीवन संघर्ष की सारी विसंगतियों की सरहदें खोलती है, जिसे एक अनुभवशील मन द्वारा लेखक व्यक्तिगत स्तर पर झेलता है। इसलिए इनकी कहानियों को कल्पनाप्रसूत सम्मोहन से मुक्ति की कहानी कहा जा सकता है। 'स्वर्गवासी' कहानी में अमानवीय करण की प्रक्रिया के चलते ऐसा लगने लगता है कि पात्र अपनी दुर्गति का मजा ले रहा है। यथा --

'अन्दर से दरवाजे बंद करके अंतिम रूप से आश्वस्त होकर वह बदन तोड़ता और मुंह से आराम भरी सिसकियां निकालता - 'आहाह ... आहाह...

आहाह ... कितना थक गये । वह बिस्तर पर पड़ जाता और निश्चित भाव से फुसफुसाता - `चूल्हे - भाड़ में जायें सब ... ओफोफ ।`[6]

संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व की प्रधानता

गुणात्मक दृष्टि से असंतोष और विद्रोह के कई स्तर और रूप साठोत्तरी कहानियों में दिखाई पड़ते हैं । नई कविता और नई कहानी में जिस आत्म संघर्ष की बात उठायी गयी, वह साठोत्तरी कहानियों के बीच छाये रहने के कारण दूधनाथ सिंह की कहानियों में अधिकाधिक दिखाई पड़ता है । परन्तु अंतर इस बात में दिखाई पड़ता है कि जहां अधिकतर समकालीनों में यह आत्म-संघर्ष, भीतर से बाहर की ओर चलता है, वहीं दूधनाथ सिंह की कहानियों में संघर्ष बाहर से भीतर की ओर चलता दिखाई पड़ता है । `रीछ` कहानी का नायक सारा संघर्ष भीतर ही चलता है, जो अपने अतीत की स्मृतियों के साथ निरंतर संघर्ष करता रहता है । वह एक ओर बाह्य रूप से अपनी पत्नी से अपने पूर्व प्रेम की घटनाओं को छिपाना चाहता है और दूसरी ओर उस खरोचने वाले और घायल करने वाले अतीत से युद्ध करता है । इसी तरह `सीखचों के भीतर` कहानी की `सुमित` अपने प्रेमी `सोम` की यादों के सहारे जीती है, वह न तो `सोम` के प्यार को भुला पाती है जो उसको भूल गया है और न `वसंत के प्यार की ओर जाना चाहती है जो उसको पाने की कोशिश में है । अत: इस बाह्य संघर्ष से उत्पन्न अन्तर्द्वन्द्व उसकी नियति बन जाती है --

`वसंत मैं कुछ नहीं चाहती । नहीं चाहती यह पातिव्रत्य और प्रेम का बड़प्पन । मैं पाप करना चाहती हूं । मैं गिरना चाहती हूं । मैं सीता, सावित्री, दमयंती, राधा ... कुछ नहीं बनना चाहती ... मैं जानती हूं कि मैं पुण्यात्मा नहीं हूं । दु:ख पाना कोई पुण्य कर्म नहीं है ।` लेकिन वह एकदम चुप थी ।`[7]

इनकी कहानियों में जीवन के प्रति पीड़ा और दर्द तो है परन्तु उपलब्धि और विद्रोह नहीं । यह बात उनकी प्रारम्भिक कहानियों पर ही अधिक लागू

होती है। किन्तु 1995 में प्रकाशित 'धर्मक्षेत्रे: कुरुक्षेत्रे' में वे अपने पुराने रास्ते से हटते हुए विद्रोह का रूप भी दिखाते हैं जो मात्र विद्रोह ही नहीं, बल्कि दो पीढ़ियों से चले आ रहे विचारधारात्मक टकराहट से फूट पड़ने वाली क्रान्ति है जिसमें अन्तत: विजय मानवता की होती है। यद्यपि बुराई के साथ-साथ अच्छाई को भी बलिदान हो जाना पड़ता है परन्तु जिस उद्देश्य के लिए उसका बलिदान होता है, वह सफल रहा, यही उसकी जीत है।

व्यक्तिगत अनुभूति पर ज़ोर

ऐसा लगता है कि हिन्दी नव लेखन में व्यक्तिगत अनुभव पर आवश्यकता से अधिक बल दिया जा रहा है। इसलिए इस साहित्य में आवेश और आक्रोश तो है, साथ ही साथ हर स्थापित मूल्य के प्रति अस्वीकार और नकार की मुद्रा भी दिखाई पड़ती है परन्तु उस अनुभव को पचा कर अनुभूति में संस्पर्शित करने का संयम और धैर्य उनमें नहीं है। नितांत वैयक्तिक अनुभव की अनुभूति का संस्पर्श पाकर किस प्रकार लेखक रचना के धर्म और गौरव से सम्पन्न हो सकता है? इसका ताजा उदाहरण गजानन माधव मुक्तिबोध की कहानियां हैं। और इसका दूसरा नया उदाहरण दूधनाथ सिंह की कहानियां हैं। यद्यपि इनकी कहानियों में अनुभव का वह रूप नहीं मिलता जो मुक्तिबोध की कहानियों की निजी विशेषता है, लेकिन अनुभूति से संस्पर्शित सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि और रूढ़सामाजिक ढांचे के प्रति लघु निर्ममता, बहुत सी सामाजिक विसंगतियों के बीच स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को नये आयामों में अन्वेषित कर सकने की क्षमता आदि सारी चीजों से मिल कर इनकी कहानियों का जो रूप बनता है, वैसा छठे दशक के बाद के कथा लेखकों में उनकी समता के उदाहरण बहुत अधिक नहीं मिलते। इस प्रकार सामाजिकता का कोई स्पष्ट आग्रह उनकी कहानियों में नहीं है। फिर भी किसी आग्रह से मुक्त होने की चेतना भी उनमें नहीं है, यानी कि आग्रह के अभाव के बावजूद एक सूक्ष्म स्तर पर वह आग्रह उनमें मौजूद है और इस अर्थ में वे उन तथाकथित सचेतन कहानियों की तुलना में अधिक गम्भीर और सूक्ष्म स्तरों पर उतर कर भी उद्देश्यहीनता और अस्पष्टता से अपने को अलग रखते हैं।

बंधी-बंधाई विचारधारा से मुक्ति

दूधनाथ सिंह की कहानियों में किसी भी बंधी-बंधाई विचारधारा का उपयोग नहीं हुआ है। उनकी कहानियाँ `रक्तपात`, `रीछ`, `सुखान्त` आदि में किसी भी प्रकार का परिवर्तन विचारधारा के अनुरूप घटित नहीं हुआ है। परन्तु उनकी दो कहानियों - `कोरस` और `जंगली लोग` में कुछ न कुछ मार्क्सवादी रुझान देखा जा सकता है। इनमें से यदि `कोरस` की मूल थीम देखी जाय तो उसे वामपंथी विचारधारा से अनुप्राणित घोषित किया जा सकता है क्योंकि `कोरस` की मूल भावना कहीं न कहीं वामपंथियों की यह घोषणा कि `आजादी झूठी है` को गहरे रूप में छूती है। पर आज के परिप्रेक्ष्य में देखा जाय तो उसे यथार्थवादी घोषित किया जायेगा ; क्योंकि उसमें उसी मोह भंग का चित्रण किया गया है या उसी यथार्थ राजनीति का भण्डाफोड़ दो टूक शब्दों में किया गया है जिसके चलते आज के राजनीतिज्ञ जनता के समक्ष नंगे दिखाई पड़ते हैं।

इसी तरह यदि `जंगली लोग` कहानी को लिया जाय जिसको लेकर उन पर काफी मार्क्सवाद की थोपाथापी का प्रयास गर्म रहा। बहस का मुद्दा था कि कहानीकार में `जंगली लोग` किसको कहा है? इसी बात पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए `श्री मधुड़ाजी` ने आक्षेप लगाया कि - यह कहानी वर्ग संघर्ष कराने के उद्देश्य की पूर्ति के लिए लिखी गयी - और `मारवाड़ी सेठ` को जंगली लोग कहा गया। बाद में इस आरोप का दूधनाथ सिंह ने `लहर` पत्रिका में पत्र के माध्यम से खण्डन करते हुए कहा कि --

> `सबसे बड़ी गड़बड़ तो तब होती है, जब मधुड़ाजी, `जंगली लोग` शीर्षक मारवाड़ियों के लिए समझते हैं। जबकि शीर्षक मजदूरों और बुड्ढे को ध्यान में रख कर दिया गया।`[8]

अब इन दोनों वक्तव्यों के बाद यह भी कहा जा सकता है कि `जंगली लोग` का प्रयोग हो सकता है कि लेखक ने उस बूढ़े व्यक्ति और मजदूरों के लिए किया है जो अपढ और गंवार थे, परन्तु उनके हृदय में मानवता के प्रति जो सहृदयता है,

वह उनके जंगलीपन को ढक लेती है। कहानी पढ़ने के बाद पाठकों को उन मर विशेषकर बुड्ढे से सहानुभूति हो जाती है, क्योंकि वे सभी उस लड़के के लिए अपनी यात्रा स्थगित कर देते हैं, केवल इसलिए कि वह उनके साथ एक ही स्टेश से उस डिब्बे में सवार हुआ था। जबकि मारवाड़ी एक दूसरे के अत्यधिक नजदी होने पर भी अपने साथी को छोड़कर चला गया। इसलिए इस कहानी में मार्क वादी विचारधारा को ढूँढ निकालने का प्रश्न तर्क नहीं दिखायी पड़ता। सा ही कहानीकार ने स्वयं ही किसी विचारधारा के प्रति आग्रह से इन्कार किय है --

> "एक कम्युनिस्ट होते हुए भी और क्रान्ति में विश्वास रखते हुए भी, कला रचना के क्षेत्र में, लेखन के क्षेत्र में, कला और संरचना के क्षेत्र किसी भी विचारधारा को अपर्याप्त मानता हूं ; और दूसरे यह कैसे घटित होना चाहिए, इसके लिए कहानी या उपन्यास की घटना नह लिखा जाना चाहिए, अगर मुझे लिखना ही है तो मैं यह लिखूंगा कि सर्वहारा आन्दोलन की आज वास्तविक स्थिति क्या है ?"[१]

लीक से हटने का प्रयास

दूधनाथ सिंह पूर्ववर्ती कहानीकारों की तरह घटनाओं के जोड़-तोड़, स्थितियों के साम्य-विरोध, भाग्य की विडम्बना, संयोग, निर्दोष, निरपर सहनशीलता, अपराधी के दुर्भाग्य और हृदय परिवर्तन से अश्रुविगलित स्थितियों निर्माण करके उत्सुकता से बन्धे पाठक को धक्के के साथ सुख-संतोष या दुःख- से अभिभूत नहीं करते, बल्कि आज के मनुष्य के दुःख-दर्द, पीड़ा और विडम्बन परत-दर-परत उखाड़ते चलते हैं तथा पाठक को उस स्थिति तक पहुँचा देते हैं ज वह स्वयं अपने आप को उनमें से एक पाता है और अनुभव करता है कि लेखक ने कहीं न कहीं उसकी दुःखती नस पर उँगली रख दी। इस प्रकार इनकी कहानि पाठक के सामने नहीं, बल्कि मन के भीतर निर्मित होती हैं। बिना किसी भूत

या विस्मय के जब वे समाप्त होती हैं, तब पाठक की चेतना में रह जाते हैं कुछ चित्र, कुछ दृश्य या कुछ प्रभाव कुहेलिकाएं ।

इनकी कहानियाँ अपने परम्परागत आकार से दुगुनी ही नहीं हो गयी हैं, बल्कि व्यक्ति और परिवेश को दूरी और गहराई के कोणों और आयामों में देखने के कारण भी उपन्यास के अधिक निकट पड़ती है । उनकी कुछ कहानियाँ ऐसी भी हैं जिन्हें लघु उपन्यास कहने में किसी प्रकार की दिक्कत का अनुभव नहीं होगा, जैसा कि `सुखान्त`, `माई का शोक गीत` और `धर्म क्षेत्रे : कुरु क्षेत्रे` आदि । इनकी कहानियों में कहीं तो नगर सभ्यता से दूर दिखाई पड़ने वाले प्रांतों की परम्परागत सांस्कृतिक और सामाजिक ग्रामांचल की इकाइयों की अपनी एक अलग दुनिया दिखाई पड़ती है और कहीं तो तीव्र गति से बदलने वाले शहरी जीवन और उनके बीच निरंतर पिसने वाले मजबूर एवं हताश व्यक्ति की नियति ।

विशिष्ट लेखन शैली

दूधनाथ सिंह की कहानी कला की प्रमुख विशेषता है कि वे पाठकों की जिज्ञासा को बनाए रखने के लिए प्राय: स्थिति को पूरी तरह से स्पष्ट नहीं होने देते और बीच-बीच में इस तरह के रहस्यात्मक वक्तव्यों का प्रयोग करते चलते हैं, जिस से पाठक पुन: मानसिक रूप से सक्रिय हो जाय और कहानी पढ़ने में अधिक सतर्कता बरते । उदाहरण के लिए `विजेता` कहानी का यह अंश --

"मैंने अपनी घड़ी देखी । चार से ऊपर हो रहे थे । अब से कोई तीन घण्टे बाद वे मेरा इंतजार करेंगे । वे साथ होंगे और उसने काफी कुछ धो-धा के बराबर कर दिया होगा, जैसा कि वह लगातार मेरी गैर हाजिरी में करता रहा है । शायद यह अंतिम बार है । शायद अब और नहीं ।"[10]

इस प्रकार यहां स्पष्ट नहीं हो पाता है कि कौन इंतजार करेगा ? कौन किसको धोएगा ? और क्या चीज धोयी जायेगी ? सर्वत्र एक रहस्य का आवरण है । वे कभी भी कहानी के पूरे मन्तव्य और अर्थ को एकाएक धमाके के साथ नहीं खोलते, बल्कि धीरे-धीरे उसका एक-एक छोर पाठक को पकड़ाते चलते

हैं ; यह भी नहीं कि यह काम किसी भी बनायी शृंखला के तहत किया जाता है, बल्कि कभी कहानी का अंतिम भाग, फिर पहला भाग, फिर बीच का और फिर पात्रों की स्मृतियों में संजोई कुछ घटनाएं, कुछ बिम्ब, कुछ निरर्थक वार्तालाप इस प्रकार गूथे जाते हैं कि कहानी कब समाप्त हो जाती है, पाठक को पता ही नहीं चलता । इस प्रकार के नाटकीय अंत से पाठक को एक प्रकार की झुंझलाहट भी होती है ।

शिल्प विधान

दूधनाथ सिंह कहानियों में शिल्प के प्रति अधिक सतर्क दिखाई देते हैं । इनकी कहानियों का कथ्य मुख्य रूप से आज के मनुष्य का जीवन संघर्ष ही है । कथन की सूक्ष्म सांकेतिकता इनकी कहानियों में अधिकाधिक उभर कर सामने आयी है । इसी कारण कहानियों की भाषा बनावटी और ऊपर से थोपी हुई नहीं मालूम पड़ती है, बल्कि यह उनके जीवनानुभवों से उत्पन्न होने वाली मूलसंवेदना की उपज है ।

नवीन सौन्दर्य-बोध और भाषिक संवेदना

दूधनाथ सिंह की कहानियाँ जिस कथा, जिस वातावरण और जिस परिवेश को लेकर चलती हैं, उसका उसी परिवेश में अधिकाधिक यथार्थ बनाने और सम्प्रेषणीय बनाने की गरज़ से यथावत भाषा का प्रयोग करते हैं ; हालाँकि इस प्रयास में कहीं-कहीं वे अति आँचलिकता, दुरूहता एवं अश्लीलता के शिकार भी हो जाया करते हैं परन्तु अपने ध्येय से वे विमुख नहीं होते । इसी विशेषता के कारण वे चाहे जिस कथा को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाएं, चाहे वह प्राचीन हो या अद्यतन परन्तु उसमें उतनी ही संवेदना का तत्व विद्यमान रहता है । इनकी भाषा संवेदना का सबसे अच्छा उदाहरण उनकी हाल की कहानी 'धर्म क्षेत्रे : कुरुक्षेत्रे' है । यद्यपि इस कहानी की 'थीम' बहुत पुरानी है परन्तु उसको वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भाषा के जिस कौशल के द्वारा परोसा गया है, वह अपने आप में एक विशेष अहमियत रखती है । इस कहानी के पात्र अपनी जिस आंचलिक

भाषा का प्रयोग करते हैं, गालियों का प्रयोग करते हैं एवं जिस भाषिक सोच को कहानी में प्रस्तुत करते हैं, उससे कहानी का जीवंत वातावरण उपस्थित हो जाता है। यद्यपि हम इस कहानी को वर्तमान समय में पढ़ते हैं परन्तु उस समय हमारी सोच भी उस प्राचीन समाज की कहीं न कहीं टोह लेती रहती है।

दूधनाथ सिंह साठोत्तरी कहानीकारों की उस टोली के एक सशक्त हस्ताक्षर हैं जिन्होंने परम्परा से चली आ रही कहानी की भाषिक जड़ता को तोड़ कर एक जीवन्त और परिस्थितिगत भाषा की ओर कहानी विधा को मोड़ा। उन्होंने व्यक्तिगत और किताबी भाषा से अपने को पृथक् करके समयानुसार परिवर्तित होने वाले मनुष्य की सम्पूर्ण संवेदना से गम्भीर रूप से जुड़ने वाली बोली में ही नये-नये अर्थों की खोज की। परिणामस्वरूप इनकी कहानियों में प्रयुक्त होने वाली भाषा कथ्य के आंतरिक रूप को उधेड़ने वाली सहज प्रवाहशील एवं पुष्ट माध्यम बनी। इसका प्रमुख कारण कथ्य के अनुरूप व्यंजनात्मक भाषा का प्रयोग है जो कि साठोत्तरी कहानीकारों के द्वारा विशेष आग्रह के साथ स्वीकार किया गया।

इनकी कहानियों में परिवेश की तीखी सच्चाइयों को व्यक्त करने वाली भाषा प्रयोग की शक्ति दिखाई देती है। जैसा कि आज की कहानियों की भाषा है, जो परिवेश की आत्मा से जुड़ी हुई मिलती है। इन्होंने अनेक स्तरों पर काव्य भाषा के समानान्तर कहानी भाषा का प्रयोग किया है जो किसी गद्यगीत से कम नहीं लगती। 'सपाट चेहरे वाला आदमी' कहानी की प्रारम्भिक पंक्तियां इस बात का प्रमाण हैं, जिसमें सूर्यास्त वर्णन इस रूप में चित्रित हुआ --

> 'ठीक उसी समय दो पेड़ों के बीच से आसमान के एक छोटे से नक्काशीदार टुकड़े के बीच दीखा - डूबते सूरज का किरण हीन लाल-लाल गोला। एकदम आग की दमक लिये, जिसके चारों-ओर बरस कर खुल गये बादल टेढ़े-मेढ़े, किसी टूटे पर्वत की आउट लाइन बनाते हुए लेटे थे। पत्तों से बूंदें झर जाती हवा की हिलोर में और एक दो पक्षी अपने-अपने गीले पंख निचोड़ते-से बैठे हुए दीखे - ठीक उसी समय।'[11]

इनकी कहानियों में प्रलापीय शिल्प का भी प्रयोग भरपूर मिलता है। इनके नायक कभी तो संलाप करते हैं और कभी एकालाप करते हैं - जैसा कि कहानी `दु:स्वप्न` के `मैं` का एकालाप अधिक उभर कर सामने आया --

`शायद यह उसका अंतिम प्रयत्न है, वह और भी दयनीय हो उठा है। मेरी नजर उसकी सूखी टहनियों पर है। वे चट-चटाकर टूटते हुए कुछ कह रही हैं। क्या उसने मुझे खुश कर लिया है या कि मेरे निर्णय को बदल दिया है? नहीं, नहीं, बहुत गहरे शायद वही बात है कि मुझे कपड़े सस्ते मिल जायँ तो ठीक है।`[12]

`कबंध` कहानी पूरा का पूरा एकालाप है, उसमें कोई थीम नहीं है। बल्कि दो व्यक्तियों के मध्य संवाद हैं। दूसरा व्यक्ति भी इस संवाद में इतना ज्यादा हिस्सा भी नहीं लेता है, जिससे यह कहानी मात्र एकालाप बनकर रह गयी। इसी तरह कहानी `सुखान्त` का अधिकांश भाग नायक द्वारा एकालाप और सोंचते-सोंचते बीत जाती है। कहीं तो नायक जैसे अर्द्ध-विच्छिप्त अवस्था में बड़बड़ाने लगता है --

`यह - यह देखो - मिस्टर रावत! ऐ मिस्टर रावत - ए ए ए -! कहाँ जा रहे हैं? अरे मुझे याद करिये। लेकिन ..... लेकिन मिस्टर रावत हँस रहे हैं। उनके गले में एक मुण्डमाला लटक रही है। और हर मुण्डमाला पर एक तख्ती लगी है। नाम पट्टी और पेशा और कारण। और मोटे अक्षरों में लिखा है - बदला। वाह रे शिवाजी! क्या गरल पिया है तूने पट्ठे!`[13]

आश्चर्य, असमंजस और एकपल आगे बढ़ कर पीछे हटने वाली स्थिति को चित्रित करने के लिए लेखक ने न जाने कहाँ-कहाँ से ढूंढ कर उपमाएँ ला खड़ी की हैं। वैसे वह स्थिति जिसमें थोथुरी छुरी से रुक-रुक कर गले का धीरे-धीरे रेता जाना और नायक का ठिठक कर रुकना, फिर आगे बढना, पुन: पीछे हटने की वास्तविक स्थिति को प्रस्तुत करने में यह भाषा बहुत सफल रही। जैसे `स्वर्गवासी` कहानी की आरम्भिक पंक्तियाँ --

'जैसे किसी ने भोथरी छुरी से अचानक उसका गला रेतना शुरू कर दिया हो - - - - - - - गली में घूमते ही उसने जो कुछ देखा, उससे हतप्रभ रह गया। उसकी टांगों में एक झुरझुरी-सी रेंगती हुई ऊपर चढ़ने लगी।'[14]

'सब ठीक हो जायेगा' कहानी में दूधनाथ सिंह ने किरायेदार और मकान मालिक के बीच होने वाले झगड़े को चित्रित करने के लिए जिस भाषा का प्रयोग किया है, वह किसी प्रकार से बनावटी और ऊपर से थोपी नहीं लगती। मकान-मालिक की भाषा में एक तरह का अधिकार-बोध और किरायदार को हिकारत भरी दृष्टि से देखने का लहज़ा स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ता है, साथ ही साथ झुंझलाहट भी है जो कस्बाई ज़िंदगी का चित्र उभारती है --

'शाली हमारा पाइप का जल खाकर हाथी हो गया। वह घर से भागा हुआ अउरत है। ... हम कुछ नहीं ... माँगता बाबा। तुम हमारे घर से अब्भी निकल जाओ। ... इसका कोई नहीं। एक ठो अवारा, बदमाश, को साथ में रखा है। वह इसका व्यभिचार का कमाई खाता है ... थूः। वह इसका कोई नहीं। हिआँ सब लोग जानता है। वह शाला कुकुर है कुकुर... ।'[15]

'कोरस' कहानी में भी इसी वार्तालाप की भाषा का प्रयोग किया गया है और इसी वार्तालाप के साथ-साथ कहानी का कथ्य बढ़ता जाता है, परन्तु यह स्पष्ट नहीं हो पाता कि किस पात्र का कौन सा कथन है, दोनों का घालमेल एक प्रलाप सा बन जाता है। यद्यपि ऊपर से देखने पर इस प्रकार की भाषा में सिर्फ उल्लू-जुलूल और बेतुकी बातें ही नजर आती हैं परन्तु इसके माध्यम से लेखक अपने समय के महत्वपूर्ण प्रश्नों से कहीं न कहीं गम्भीर रूप से जुड़ता हुआ नजर आता है। यथा --

'वे लम्बी छाया को अपने लिए जीवित रखे हुए हैं। और उसका पीछा कर रहे हैं।'

'और तुम उसके साथ हो।'

'हम उनके पीछे हैं'

'वे अपना कार्यक्रम रात में ही क्यों शुरू करते हैं?'

'उनका कोई कार्यक्रम नहीं है।'[16]

द्रुधनाथ सिंह की कहानियों में यह वार्तालाप, संलाप, स्कालाप और बड़बड़ाहट एवं झुंझलाहट से युक्त भाषा का जो रूप दिखाई पड़ता है, वह आज के मनुष्य की एकांतता, अलगाव और अजनबीपन को रेखांकित करने में अधिक सफल हुई है। चूंकि इनके पात्र अधिकांशत: इन्हीं परिस्थितियों में जीते हैं, अत: इनकी कहानियों में ऐसी भाषा आ ही जाती है, जो पात्र की मानसिक बुनावट की तह तक पाठकों को पहुंचाने में सक्षम है। कहानीकार ने शब्दों के द्वारा या वर्णन द्वारा उन परिस्थितियों का वर्णन कम ही किया है बल्कि पात्रों के द्वारा ही इस प्रकार की भाषा का प्रयोग करवाया है जिससे सारा का सारा वातावरण जीवंत हो जाय और पाठक स्वयं यह अनुभव करे कि पात्र किन परिस्थितियों में और किस टोन में बोल रहा है।

वे अपनी कहानियों के माध्यम से नवीन भाषिक संवेदना उभारने में अधिक सफल हुए हैं। उन्हें इस बात का कदापि मलाल नहीं रहता कि पात्रों की भाषा द्वारा कहानी के स्तर पर क्या प्रभाव पड़ रहा है। इसीलिए वे फूहड़ और भद्दे किस्म के शब्दों का प्रयोग करने में भी नहीं हिचकते, बस उसके द्वारा जिस बात को वे रेखांकित करना चाहते हैं, वह स्पष्ट हो जाय तो उन्हें ऐसे शब्दों से कोई परहेज नहीं --

'टिक्ट बाबू रह-रह के उचकता और लड़के की कमर पर एक लात लगाता। लड़का टेढ़ा हो जाता तो वह कहता - कमर सीधी कर बहनचोद ...।'[17]

अपनी कहानियों में अर्थ सम्प्रेषण की क्षमता को बढ़ाने के लिए इन्होंने आवश्यकतानुसार कस्बे की बोली का भी प्रयोग किया है। इसके लिए कस्बाई

पात्रों की मानसिकता के अनुरूप भाषा का प्रयोग किया है। जैसे `सब ठीक हो जायेगा` कहानी में यह भाषा एक स्त्री के फूहड़पन और उसकी स्वार्थपरक मूल्य-हीनता को बेबाक ढंग से नंगा करके छोड़ती है --

> `कायर निकम्मे, भड़वे ..... यहीं सब मुझे गाली दे रहे हैं। भगायी हुई औरत कह रहे हैं। वेश्या बना रहे हैं। मेरी सारी गत बन गयी और तुम बैठे-बैठे सुन रहे हो - बेह्या, दोगले ... । तुम मर क्यों नहीं जाते ? तुम यहां बैठे कैसे हो। लानत है ऐसे मर्द पर ..... ।`[18]

इन्होंने कहानियों में सूक्ष्म से सूक्ष्म चित्रों द्वारा जीवन्तता प्रदान करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। `वे इन्द्रधनुष` में भाषा और व्यंजना का रूप एकदम बदल गया, कारण रचनात्मक तलाश की गत्यात्मकता और सामाजिक विकास की ओर बढ़ने वाले रचनात्मक पहलू की खोज है। कहानी का `मैं` और `सीमा` के बीच बढ़ने वाले लगाव और निकटता को प्रश्नवाचक कथन द्वारा उभारने का प्रयत्न करके कहानीकार ने उपयुक्त ढर्रा खोज लिया -

> `आज जब उसने लेटने के लिए कहा, तो मैंने एक बार क्षण-भर के लिए उसकी ओर देखा। क्या उसे कुछ नहीं लगता कि वह एक पुरुष को अपने निजी बिस्तर में लेटने को कह रही है ? क्या उसे बिस्तर की एकांत निजता का अहसास नहीं ?`[19]

साठोत्तरी कहानी में भाषा की अपनी विशिष्ट भूमिका है। इन कहानियों में भाषा सिर्फ सम्प्रेषण का ही माध्यम नहीं, और न वह किसी बात को एक खास लहज़े में कह देने भर की शैली है। भाषा में संवेदना का तत्व तब तक समाविष्ट नहीं किया जा सकता, जब तक कि परिवेश के जीवंत चित्रों के माध्यम से भाषा को निखारने का प्रयास न हो और इस कारीगरी में द्रुधनाथ सिंह काफी कुछ सफल रहे हैं। `सीखचों के भीतर` कहानी की `सुमित` अपने पति `सोम` से सम्बन्ध विच्छेद करके आज भी उसकी याद में जी रही है। इसी बीच `वसंत` से उसकी मित्रता का बढ़ना और चाहते हुए भी वसंत का विरोध न

कर पाने की स्थिति को कहानीकार ने इस रूप में उभारा है --

'एकाएक उसने करवट घुमा कर अपनी एक बांह बढ़ाकर सम्पूर्ण रूप से उसे खींच लिया । वह शायद उठ चलना चाह रही थी । उस अप्रत्याशित से कुछ भी समझ नहीं पायी । वसंत ने और भी जोर से चिपटाते हुए कहा, 'आप उन्हें बहुत चाहते हैं न ?'[20]

भाषिक संरचना के स्तर पर समकालीन कहानी में इस प्रकार से आनेवाली अधिकाधिक सूक्ष्मता और वैचारिक गहराई को; तथा साथ ही साथ आज की कहानी के परिप्रेक्ष्य में भाषा सन्दर्भ में होने वाले उठा-पटक को डा0 विनय ने इस रूप में स्वीकार किरते हुए कहा है कि --

'राजेन्द्र यादव के लिए जो बात 'टाटल कम्यूनिकेशन' की थी, वह दूधनाथ सिंह के लिए 'अभिव्यक्ति की सच्चाई ' की समस्या बनकर सामने आयी और ज्ञान-रंजन के लिए 'स्थिति को रचनात्मक पूर्णता' देने के प्रयास में लक्षित हुई । कमलेश्वर ने इस बात को 'समय की भाषा की खोज' के रूप में स्वीकार किया ।'[21]

समकालीन कहानियों में भाषा की सादगी एवं सीधी सम्प्रेषणीयता पर विशेष बल रहा है । समाज एवं उस परिवेश विशेष की तस्वीरें खींचने में समर्थ कलाकार दूधनाथ सिंह ने भी भाषा की स्वाभाविकता पर अधिक बल दिया है । सपाट और सहज भाषिक संरचना के बावजूद इन्होंने कहानियों में भाषा के अर्थ स्तर पर अधिक सूक्ष्मता से काम लिया । पात्र की संवेदना से जुड़ कर इनकी कहानियों की भाषा कहीं-कहीं पर बहुत तीखी हो गयी है । असल में भाषा के इस तीखेपन का कारण दो पीढ़ियों के बीच निरन्तर बढ़ने वाली दूरी है जिसमें नई पीढ़ी द्वारा पुरानी पीढ़ी को कोसा जाना और पुरानी पीढ़ी का लाचारी में कुढ़ते रहने के सिवा हल न खोज पाना है, जो इन दोनों के मध्य आने वाली मूल्यहीनता और आक्रोश को बढ़ावा देती है । कहानी 'आइसबर्ग ' में 'जगत' अपने छोटे भाई की आदर्शवादिता को झूठा करार देते हुए आवेश में आकर चिल्लाता है --

`तुम झूठे हो,` उसने मेज पर जोर से मुक्का मारा । तुमने अपने दादा जान से क्या सीखा ? उनके कितने नाज़ायज़ बच्चे हुए ज़वानी में ? ..... तुम्हें पता है ?` वह उठ कर खड़ा हो गया, `आज आराम से पेंशन उड़ा रहे हैं और हुक्का गुड़-गुड़ा रहे हैं । और साले हमें उपदेश देते हैं ।`[22]

व्यंग्य का एक और रूप

दूधनाथ सिंह की कहानियों में व्यंग्य की धार भी दिखाई पड़ती है, पर इनकी विशेषता है कि ये इस धार से किसी उथली जगह पर वार नहीं करते, बल्कि जड़ों पर प्रहार करते हैं । उन्होंने व्यंग्य को हल्के-फुल्के ढंग से लेकर गम्भीर रूप से सामाजिकता से लगे महत्वपूर्ण प्रश्नों से जोड़ कर देखा है । कहानी `कबंध` और `कोरस` में व्यंग्य की भरमार है । `कबंध` में डाक्टर, स्वास्थ्य, नैतिकता, शासन-व्यवस्था, भाषाएँ और राजनीतिक विचारधारा एवं देश के ऊपर कई कोणों से व्यंग्य किए गये हैं । देश की अंधेर नगरी चौपट राजा वाली स्थिति पर किया गया व्यंग्य फूहड़पन की हद तक उतर आया है --

`यह हिन्दुस्तान है प्यारे ... ।`
`यह हिन्दुस्तान है ?`
`यहाँ तुम्हारे इन सद विचारों का कोई उपयोग नहीं होगा`
`मेरे पास कोई सद्-असद् विचार नहीं हैं ।`
`और अगर लोगों को पता भी चल जाय तो वे तुम्हें एक ओर टकरा देंगे अपनी जुस्बाजी में जुट जाएंगे ।`
`जुट जाएंगे ।`
`या यह भी हो सकता है कि कोई शोहदा सिर्फ तमाशा खड़ा करने के लिए तुम्हारे चूतड़ पर दो लात लगायेगा और फिर मजमा इकट्ठा कर लेगा ।`[23]

`कोरस` कहानी 1947 की आजादी के बाद देश में चलने वाली दिखावे की राजनीतिक व्यवस्था और जनता का निरन्तर खून चूस कर मोटे होने वाले राजनीतिज्ञों पर फैंटेसी शैली में व्यंग्य है, जो देश की आर्थिक उन्नति का गांधी और नेहरू के नाम पर ढिंढोरा पीट कर गरीब जनता से आजादी की कीमत वसूल रहे हैं। दूधनाथ सिंह का यह व्यंग्य मुक्तिबोध की कविता `अंधेरे में ` के व्यंग्य से काफी मिलता-जुलता नजर आता है। फर्क इसमें यह दिखाई पड़ता है कि जहां `अंधेरे में ` का वातावरण एक प्रकार के संत्रास और भय से संचालित होता है, वहीं इस कहानी में रहस्यात्मकता और चुहलबाजी का रूप अधिक मुखर है --

> `हम उसकी सिद्धि के लिए शव साधना करेंगे। अब यही मात्र एक रह गया है। हम बिना किसी इतिहास के बूढ़े नहीं हो सकते। हमें सिद्ध कर देना है कि हमारा अभियान झूठा नहीं था। लेकिन जैसा कि मेरा विचार है, हमें एक बात के प्रति सावधान रहना चाहिए। हमें अपनी साधना के लिए कोई महत्वपूर्ण शव चाहिए।`[24]

स्थिति के स्वाभाविक चित्रण के साथ सपाटबयानी

दूधनाथ सिंह की कहानियों में अमूर्त एवं मूर्त चित्रों, भावाभिव्यंजना में सक्षम सपाटबयानी और बोलचाल की ग्रामीण भाषा का भी प्रयोग मिलता है। फिर भी इस ग्रामीण भाषा प्रयोग से यह नहीं कि उसकी साहित्यिकता या कहानी की कसावट कमजोर हुई हो, बल्कि इसके द्वारा कथ्य की सम्प्रेषणीयता और पात्र की विश्वसनीयता अधिक बढ़ी है। `हुँडार` कहानी की नौकरानी दरोगा के सामने जो कुछ आप-बीती सुनाती है उसमें, एक साथ निर्धनता, असहायता, भोलापन और दबी जुबान में आक्रोश से युक्त साधारण ग्रामीण नारी का पूरा खाका निर्मित होता है जो मार्मिक होने के साथ-साथ अत्याचार का भी खुलासा करती है --

'भाइ लोग कसाई हैं साब जी ! बेबात थुर देत रहें । भूखी रहत रहूं साहब जी । तिस पर से काम दिन-रात लेत रहें । सो भलमनई जान के चली आयी साहब जी । अब कोऊ के मुंह पर तो लिखा नहीं रहत ।'[25]

इनकी कहानियों में सेक्स की मनोवृत्ति से सम्बद्ध कुण्ठा, अतृप्त वासना, और विकृति का स्वाभाविक चित्रण भी मिलता है । आज के परिवेश में जीने वाली और अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत विवाहिता परन्तु परित्यक्ता नारी के मन में दबी भावनाओं की पीड़ा को मर्मस्पर्शी ढंग से चित्रित करने में वे सफल रहे । 'सीखचों ' के भीतर कहानी की 'सुमित' का पति 'सोम' से उसके वहशीपन या यूं कहें शंकालु चरित्र और ईर्ष्या के कारण सम्बन्ध विच्छेद, होस्टल की एकांत जिंदगी, पल-पल कुढ़ने और घुटन महसूस करने वाली विवाहिता किन्तु परित्यक्ता की गर्म-तप्त श्वासों की अभिव्यक्ति में नंगी और तीखी भाषा का प्रयोग हुआ है --

'भीतर इतनी थकान और इतना दबाव ... हाथों - पैरों के जोड़ों पर त्वचा के नीचे नसों का धड़कना साफ-साफ दिख पड़ता है । तकिये पर कानों की राह धुक-धुकी सुनते-सुनते वह ऊब जाती । करवटें बदलती... फिर बदलती ..... फिर .... फिर ..... ।'[26]

आज के बदलते हुए मानव के भावनाओं की अनुगूंज उनकी भाषा के माध्यम से कहानियों में बखूबी सुनाई पड़ती है । जीवन की असलियत को खोल कर रखने वाली भाषा आज के कहानीकारों में मिलती है जिसका एक उदाहरण दूधनाथ सिंह है । इनकी भाषा कभी-कभी बेनकाब और परिचित शब्द प्रयोगों की औपचारिकता को तोड़ती है । 'आज इतवार था' का 'मैं ' अपनी पत्नी की हरकतों से नाखुश रहने वाला परन्तु उसके सारे व्यवहार को दबी जुबान से निरंतर स्वीकार करते हुए खुद की बेबसी का पर्दाफाश करता है --

'वह शर्मिन्दा महसूस करने लगा । क्या यह इबारत इसी औरत को लिखी गयी थी जो चर्बी से थलथला रही है ; जो दिन का अधिकतर भाग सिर्फ पेटीकोट में बिताती है ; जो सुन्न है, जो अपने पैसे और वक्त का हर लम्हा तुरंत भुला देने पर आमादा रहती है और कभी गफ़लत में नहीं पड़ती, जो सिवा फिड़की, आदेश और रोजमर्रा के व्यौरों के कुछ भी याद नहीं रखती ?'[27]

बिम्ब प्रयोग

दूधनाथ सिंह की कहानियों में बिम्बों का अर्थपूर्ण और यथास्थिति प्रयोग हुआ है । इन्होंने युग की मनोवैज्ञानिक स्थितियों के जटिल रूप को अभिव्यक्ति देने के लिए अक्सर ऐसे बिम्बों का चुनाव किया है जो पात्रों की मानसिकता की प्रत्येक कड़ी को आसानी से खोल कर मूर्त कर सके । भावबोध के विशेष स्तर के अनुरूप टूटे आम्बद्ध बिम्बों को भी सम्पूर्ण सार्थकता में ज्यों का त्यों उतारने का प्रयत्न दूधनाथ सिंह की रचना प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अंग है । 'वे इन्द्रधनुष' कहानी में नायक के व्यवहार में आने वाला आकस्मिक परिवर्तन और परिणाम-स्वरूप उत्पन्न हड़बड़ाहट को उभारा गया है --

'एकाएक मैंने अपना एक हाथ उसकी कमर के गिर्द डाल कर सम्पूर्णतः उसे अपने में खींच लिया । उस खिंचाव में उसकी पसलियां चरमरा सी गयीं और नाजुक सा तन बिलकुल गोल-माल हो गया । एक लम्बी-सी चीख मेरे होठों के दबाव से घुट कर उसके अंदर ही तिरोहित हो गयी ।'[28]

दूधनाथ सिंह को यद्यपि पूर्णतः रोमाण्टिक कहानीकार तो नहीं कहा जा सकता परन्तु उनको इस सीमा से बाहर रखने का खतरा भी नहीं उठाया जा सकता, क्योंकि उनकी कहानियों में अनेक स्थानों पर विशुद्ध रूमानी तस्वीरें, बिम्ब और जीवन बोध को बड़ी बारीकी से उभारा गया है । 'प्रेम' कहानी के लड़के द्वारा लड़की को सजाने की प्रक्रिया भी अजब किस्म की है, वह उसके सारे शरीर पर एक-एक आभूषणों का नाम लेता है और उन स्थानों को चुम्बनों से भर देता है । इस प्रकार

का विशुद्ध रोमांस चित्र शायद ही किसी कहानी में दिखाया गया हो, यह एक उच्च कोटि का रोमांस है --

'और ये कड़े।' उसने दोनों कलाइयों के गिर्द चुम्बन बैठाये।
'और यह बाजूबंद, यह हल्का - - - - - - - - -
'अरे झांझ और गोइहरा तो छूट गया।' वह उसके घुटनों और पांवों तक झुक आया। फिर उठा। और अंत में उसके होंठ चुम्बनों की बौछार से तर हो गये।'[29]

चित्रात्मक भाषा का उचित प्रयोग इनकी कहानियों में देखा जा सकता है। भाषा के माध्यम से जिस स्थिति और वातावरण को दिखाना चाहते हैं, वह हमारी आंखों के सामने सजीव हो उठता है। इस प्रकार की भाषा प्राय: वहां प्रकट हुई है जहां उन्होंने प्रसंग को और अधिक रुचिकर बनाने की कोशिश की है। यथा 'धर्म क्षेत्रे : कुरुक्षेत्रे' कहानी में वातावरण और बिम्ब विधान का सार्थक समन्वय दिखाई पड़ता है --

'मरकटवा ने चौखत्ती जलाई तो चारों ओर भक्-से उजाला हो गया. उसने रोशनी घुमा कर जगह का जायजा लिया. रोशनी से चौंक कर झींगुरों ने एकाएक बोलना बंद कर दिया. तरह-तरह के कीड़े-मकोड़े, पतंगे और हरे पीले टिड्डे घबड़ाकर इधर-उधर सरके तो सूखी पत्तियों पर खर-खर की आवाज हुई.'[30]

इनके बिम्ब रूप, रस, गंध, स्वाद, स्पर्श और स्मृति तक अपना विस्तार रखते हैं। चूंकी नई कहानी की नई अभिव्यक्ति को सशक्त बनाने में नई भाषा का बड़ा योगदान रहा जिसमें बिम्बों का विशेष महत्त्व था। इसलिए नई कहानी की भाषा में जो संवेदना की मुखरता है, वह कहीं-कहीं दूधनाथ सिंह की कहानियों में घुलमिलकर अत्यंत कोमल हो जाती है। यद्यपि वह निर्मल वर्मा की तरह रूमानियत का रूप नहीं ले पाती, फिर भी उसमें अनुभूति की सचाई समा गयी है। यथा --

'जब सारंगी की पहली गूंज उठती है तो उसे लगता है कि अपने गांव की

नानूबो चाची भोर में जँतसार गा रही हैं - - - - - - - बूढ़ा सन्यासी जैसे समाधि में चला गया. उसे कुछ भी पता नहीं चलता. उसका सिर सारंगी पर झुका हुआ है. वह उठाने के पहले निर्गुण को सारंगी में भर रहा है।'[31]

इन्होंने अपनी कहानियों में यथार्थपरक भाषा में सादे बिम्बों को भी पिरोया है, जो कहानी के स्तर को परत दर परत आसानी से खोलते चलते हैं। इससेस्पष्ट होता है कि दूधनाथ सिंह की रचनात्मक तलाश एक निश्चित धुरी के आसपास ही नहीं मंडराती, बल्कि उसमें एक तरह का विकास लक्षित होता है। कहानी `बिस्तर` में आज के आदमी की झुंझलाहट को व्यक्त करने के लिए उसके जो क्रियाकलाप चित्रित किये हैं, वह सहज ही उसके भीतर उठने वाले तूफान को व्यक्त कर देते हैं --

`उसकी पैंट की जेब में ज़िन की एक निप थी। खोलकर गटगट वह सारी शराब पी गया, बोतल घुमाकर झील में फेंक दी और उठ खड़ा हुआ। बोतल कुछ देर तक तैरती-तैरती फिर बुलबुले छोड़ती डूब गयी। ... हुंह। औरत, और सुशील औरत ?`[32]

प्रतीक विधान

प्रतीक अनुभवों को रचनात्मक रूप देने वाला महत्वपूर्ण माध्यम है। प्रतीकों ने दूधनाथ सिंह की अभिव्यक्ति क्षमता एवं प्रभावशीलता के स्थायित्व में वृद्ध किया। `नई कहानी` युग की समग्र प्रतीकात्मकता को अपने में समेट कर उस को और अधिक विकसित करने का कार्य साठोत्तरी कहानीकारों ने किया जिसमें दूधनाथ सिंह का महत्वपूर्ण स्थान है। रचना में प्रवाहमान अन्तर्विरोधों को वे प्रतीक के माध्यम से ही व्यक्त करना चाहते हैं। इनकी कहानियों के प्रतीक जीवन से ही लिये गये हैं। जैसे --`रीछ`, `हुंडार`, `रक्तपात`, `कोरस`, `आड्सवर्ग` `स्वर्गवासी` और `बिस्तर` आदि उनकी प्रतीकात्मकता कहानी के दौरान बाधक नहीं, बल्कि साधक का काम करते हैं।

`रीछ` कहानी में रीछ व्यक्ति के अतीत का प्रतीक है जो यह व्यक्त करता है कि व्यक्ति को अपनी पिछली ज़िंदगी को भुलाकर नयी ज़िंदगी के साथ समन्वय बिठाना चाहिए और वह जो इस प्रक्रिया में असफल हो जाता है, उस पर अतीत का रीछ हावी हो जाता है। `आइसवर्ग` आज के समाज में विघटित मूल्यों और व्यक्तियों के मध्य ठण्डे होते सम्बन्धों की कहानी है। इसमें आइसवर्ग परिवार के सदस्यों के मध्य एक दूसरे के प्रति व्यवहार में बढ़ने वाली उदासीनता का प्रतीक है। `कोरस` आज के गरीबों का शोषण करने वाले, झूठे-मूठे लम्बे-चौड़े आश्वासन देने वाले और देश की आर्थिक समस्याओं को केवल मौखिक रूप से हल खोजने वाले राजनेताओं द्वारा देश की समस्याएं रखने एवं वायदे करने वाले कोलाहल का प्रतीक है। `रक्तपात` अपने परिवार और परिवेश से कट कर अजनबियत की ज़िंदगी जीने वाले आज के युवक के भीतर और बाहर निरंतर होने वाले रक्तपात का प्रतीक है। `सपाट चेहरे वाला आदमी` आज के ऐसे मनुष्य का प्रतीक है जो अपने एक रस जीवन से ऊब गया है, उसकी ज़िंदगी सपाट चेहरे की ज़िंदगी है। `स्वर्गवासी` एक निम्न मध्यवर्गीय बेकार आदमी का प्रतीक है जो जीवन की विसंगतियों को ढोता हुआ ऐसी जिल्लत भरी ज़िंदगी जीता है जो किसी नरक से कम नहीं। फिर भी वह इसी भटकाव में स्वर्ग महसूस करता है।

फंतासी

साठोत्तरी युग में हिन्दी कहानी के एक प्रमुख शिल्प के रूप में उभर कर फंतासी सामने आयी। आधुनिक युग की आंतरिक जटिलताओं को अभिव्यक्ति करने हेतु `फंतासी` एक समर्थ प्रविधि के रूप में स्वीकार की गयी। फंतासी दूधनाथ सिंह की कहानी कला की सबसे बड़ी पकड़ है। इस क्षेत्र में उन्होंने अपने समकालीनों से आगे जाते हुए अपनी एक विशेष पहचान कायम की है। प्रारम्भ में फैंटेसी कहानियां लिखने के लिए इनकी बड़ी खिंचाई होती रही और इन्हें लोग सलाह देते रहे कि यदि आप इसी तरह की कहानियां लिखते रहे तो ज्यादा दिन तक हिन्दी साहित्य में खप नहीं पाओगे। परन्तु धीरे-धीरे

लेखकों ने समय की नब्ज पहचानना शुरू किया और फैंटेसी शैली के कहानी में प्रवेश के साथ-साथ दूधनाथ सिंह को भी गम्भीरता से स्वीकार किया गया। फैंटेसी और प्रतीक के महत्व को स्वीकार करते हुए कहानीकार का कहना है कि --

'कहानी को कलात्मक बनाने के लिए फंतासी और प्रतीक के जो प्रयोग हैं, उसने हिन्दी कहानी के शिल्प में ही नहीं, उसके कथनधर्मिता में भी बहुत कुछ जोड़ा है, और कहानी 'एक वर्ड-स्टैण्डर्ड' यानी विश्व मानदण्ड के हिसाब से बहुत ऊंचाई पर स्थापित हुई। इसने कहानी में योगदान दिया है, न कि कहानी को क्षतर किया है।'[33]

इनकी श्रेष्ठ फैंटेसी कहानियों में 'रीछ', 'कोरस', 'प्रेम' और 'सुखान्त' हैं। इन कहानियों में उच्च कोटि की फैंटेसी का प्रयोग हुआ है जो हमें मुक्तिबोध की याद दिलाती है। ये फैंटेसी केवल चमत्कार, भय और रहस्यात्मकता का रोब जमाने के उद्देश्य से नहीं लिखी गयी, बल्कि इसमें गम्भीर अर्थ बोध छिपा है।

'कोरस' कहानी फैंटेसी शैली में लिखा हुआ समकालीन राजनीतिक ढोंग पर एक गहरा व्यंग्य है। इसमें एक आतंकमयी 'लम्बी छाया' है जिसके पीछे सारे नेता और साथी सब लगे हुए हैं। यह लम्बी काली छाया क्या है ? वह काली छाया है कि हमारे सामने ढेर सारी समस्यायें हैं और साधन कम ; इसलिए जिन्हें पूरी तरह से पूरा करना असंभव सा है। अत: देश के सभी तथाकथित नेता वर्ग इन समस्याओं को पूरा करने के लिए तरह-तरह के वायदे करते हैं और अपना तर्क देते हैं परन्तु समस्यायें ज्यों की त्यों बनी हुई हैं। लोग इन समस्याओं की विकरालता को बढ़चढ़ कर बताते तो हैं, परन्तु उनकी जड़ तक पहुंचने का रास्ता नहीं पाते। अत: यह एक तरह से भटकाव की स्थिति है। इसलिए उन पीछा करने वाले लोगों को उस काली छाया के भागने की दिशा भी नहीं मालूम होती। अन्तत: वे एक खतरनाक निर्णय पर पहुंचते हैं और लम्बी काली छाया के लिए महापुरुष की

शव साधना करने को तैयार हो जाते हैं। सब नेता और अनुयायी इसी शव की खोज में भटकते हैं, अन्तत: हत्यारे सिद्ध होते हैं।

'प्रेम' कहानी का आधे से ज्यादा भाग फैंटेसी के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। इस कहानी का कथ्य सातवीं-आठवीं शताब्दी के आदिवासी समाज से लिया गया है। इसमें एक लड़के का एक लड़की से प्रेम होता है। लड़का लड़की को खूब चुम्बनों से सजाता है, लड़की उसका विरोध नहीं करती, दोनों एक दूसरे से बहुत प्यार करते हैं। फिर भी लड़की उस लड़के के साथ भाग जाने को तैयार नहीं हुई। यह कहानी आज की है। एक आदमी अपने दोस्त के पास ठहरा हुआ है, एक फोन आता है, उसमें एक बच्चे ने उस व्यक्ति से अपना परिचय बताते हुए अपनी माँ की तरफ से घर आनेके लिए अनुरोध करता है। वह व्यक्ति ज्यों ही घर से निकल कर भीड़ में धंसता है, त्यों ही स्टोरी समाप्त हो जाती है और फैंटेसी का रूप ले लेती है --

'सर्वत्र सभी कुछ गुम हो गया और उसने पाया कि वह आठवीं सदी की एक फंफाई हुई नदी के तट पर खड़ा है। और जहां खड़ा है वहां घनघोर, निर्वस्त्र, निर्विघ्न रात है। और गरजती हुई बढ़ी हुई, काले पारे की तरह चमकती हुई नदी का कोसों फैला पाट है।'[34]

कहानी के अंत में जब वह आदमी घोड़े पर बैठ कर चला जाता है तो कहानी एकाएक वर्तमान में चली जाती है। वह आदमी टैक्सी करके उस औरत के यहां पहुंचता है।

'रीछ' कहानी यद्यपि प्रतीकात्मक है परन्तु उसकी जो बुनावट है उसमें फैंटेसी का बहुत अधिक सहारा लिया गया है क्योंकि कहानी में जिस रीछ का वर्णन है, वह अप्रस्तुत विधान है। और अप्रस्तुत विधान है उस व्यक्ति का अतीत जो उसके साथ 'रीछ' जैसी हरकतें करता है।

'सुखान्त' कहानी भी एक सफल फैंटेसी है। इस कहानी में एक पागल व्यक्ति की मानसिकता के माध्यम से समाज के ढेर सारे नैतिक मुद्दों को प्रस्तुत

करने का प्रयास दीखता है। पागल व्यक्ति की जिस सजीव मानसिकता को उभारने का प्रयास कहानीकार ने यहां किया है, वह अपने में एक कठिन कार्य है। बिना फैंटेसी के इस मानसिक जटिलता को वास्तविक रूप नहीं दिया जा सकता है। इसलिए फैंटेसी यहां अधिक सफल रही --

> `उसके पेट पर बैंक की खिड़की बन गयी है और वह एक नाबदान के ऊपर खड़ा है। उसके कानों के पास दोनों ओर दो खिड़कियां बनी हैं। उस में से उसकी अधेड़ औरत पेटी कोट पहने झांक रही है। निहायत गुस्से में। उसकी बच्चियां उल्टी लटकी हैं और फ्राक को पकड़ कर लड़ रही हैं।`[35]

फ्लैश बैक तकनीक

फ्लैश बैक पद्धति का प्रयोग यद्यपि नई कहानी के दौरान ही प्रारम्भ हो गया था परन्तु साठोत्तरी कहानियों में इसका रूप और अधिक मुखर हुआ। इसका प्रमुख कारण कहानी विधा के रूढ़िवादी ढांचे का निरन्तर टूटते जाना और वर्णनात्मक एवं विवरणात्मक तकनीक को नकारना है। क्योंकि आज का कहानीकार `पंचतंत्र` नहीं लिखना चाहता, बल्कि वह अनुभूतियों के अनुसार घटना में परिवर्तन लाता है। अत: उसे बार-बार पूर्ववर्ती घटनाओं को उभारने के लिए एवं पात्रों के मानसिक जटिलता का खुलासा करने के लिए इस पद्धति का प्रयोग करना पड़ता है। इसलिए दूधनाथ सिंह की कहानियों में भी प्राय: इस पद्धति का प्रयोग मिल जाता है क्योंकि कहानी कब खत्म होगी, यह नहीं कहा जा सकता है और कहानीकार कहानी को घुमाता हुआ ले जा कर किस बिन्दु पर एकाएक रोक देगा, यह उसका अपना व्यक्तिगत मामला है। अत: बीच की घटनाओं के प्रस्तुतीकरण के लिए यह पद्धति बहुत ही आवश्यक है।

इनकी `रक्तपात` और `आइसवर्ग` कहानी बीच से शुरू होती है और फ्लैश बैक पद्धति में पीछे की ओर जाती है, परन्तु `बिस्तर` एवं `प्रेम` अंत से आरम्भ होकर उल्टी-चाल चलती हैं और वहां आकर समाप्त हो जाती हैं जहां से

शुरू हुई थी। `धर्म क्षेत्रे : कुरुक्षेत्रे ` कहानी का भी आरम्भ बक्टे के भीतर से होता है और कहानी फ्लैश बैक के माध्यम से `सिऊ महतो` के सारे जीवन की कुत्सता, विसंगतियां एवं तत्कालीन परिवेश को उभारती हुई अंत में उसी बक्टे के जंगल में पिता-पुत्र के खूनी जंग के बाद समाप्त हो जाती है।

कुछ कहानियां इनकी ऐसी भी हैं जिसमें पूर्ण रूप से फ्लैश बैक पद्धति का प्रयोग न किया जा कर पात्र की स्मृति को सजग बनाने की दृष्टि से ही इस पद्धति का प्रयोग हुआ है। `सुखान्त` इसी प्रकार की कहानी है जिसका नायक बार-बार अपनी पुरानी स्मृतियों में जीता है। वह उन पूर्ववर्ती घटनाओं को याद करके उत्तेजित होता है और अपनी रिहाई की कामना भी करता है।इसी तरह`सीखचों`के भीतर कहानी की `सुमित` भी अपने पति `सोम` के साथ बिताये गये अच्छे-बुरे क्षणों को याद करके दु:ख से बोझिल हो जाती है। सुमित के जीवन में `वसंत` नामक युवक आता है। वह उसकी तुलना `सोम` से करती हुई अतीत में खो जाती है --

> "सोम की बाहें भी तो उसी तरह उठती थीं। बिस्तर पर लेटे-लेटे वे दोनों बाहें उठा देते। वह लजाती-लजाती उसमें ढल जाती। कई बार वह भागने को हुई तो उसने पाया कि वे बाहें उसे घेरे हुए हैं। लेकिन वसंत ? उसकी बाहें ? उसने उस आह्वान का प्रत्युत्तर कभी नहीं दिया।"[36]

चेतना प्रवाह शैली

दूधनाथ सिंह की कहानियों में स्थूल वर्णन के स्थान पर मानव मस्तिष्क के प्रत्येक तंतु को खुलम-खुल्ला कर देने वाली चेतना प्रवाह शैली और टूटे विचारों का संगुम्फन अधिक मिलता है जो कि साठोत्तरी कहानियों की विशेषता रही है। मनोविज्ञान में इस शब्द का प्रयोग मन में एक ही क्षण में समान रूप से तरंगित होने वाले अनेक विचार खण्डों के लिए किया जाता है। इसमें पात्र अपने

मन में प्रस्तुत होने वाली सूक्ष्म विचार तरंगों के बारे में सोचते हैं तथा उनसे प्रभावित भी होते हैं, उदाहरणार्थ 'रीछ' कहानी के 'मैं' का विचार मंथन -

> 'सांस बदबू करती है। न, पायरिया नहीं है, पहले गोमती में दिन-दिन भर तैरा करते थे। हर वक्त जुकाम बना रहता है। पीला-पीला कफ निकलता है। बिल्कुल मवाद की तरह। ..... सिर्फ इस लिये चलते हैं। - - - - - - - तुम मुझे बिल्कुल उन्हीं की याद दिलाते हो ..... । यू आर माई फादर। ऐसे शांति नहीं मिलेगी ..... हां, ऐसे ..... सो साफ्टली यू डू .... अनमैड्जिनेविल ..... ।'[37]

'सीखचों के भीतर' कहानी की 'सुमित' अपने पति 'सोम' से अलग होकर अकेली दुनिया में घुट-घुट कर जी रही है। ऐसा उसने किसी गलत कदम के कारण नहीं किया, बल्कि यह सोम का पागलपन था जिसने दोनों को जुदा कर दिया। वह एक बार पुन: 'सोम' से मिलना चाहती है क्योंकि उसे सोम की दूसरी शादी का पता चला। वह होटल में ठहरी हुई विचारों में खो जाती है। इस खण्डित मानसिकता के दौर को कहानीकार ने बड़ी कुशलता से उभारा है --

> 'बेकार है तेरा यहां आना। तेरे मन में तो कुछ भी नहीं है सुमित। वह बार-बार अपने से कहती। और फिर वह कैसे मिलेगी ? क्या कहेगी कि वह क्यों आयी है ? क्या वह संयत रह सकेगी ? जो भी हो, वह पूछेगी - - - सोम की छाती पर मुक्के मार-मार कर पूछेगी, 'तुमने ऐसा क्यों किया ? तुमने मुझे ऐसा क्यों बना दिया ?'[38]

0

----

1. 'साक्षात्कार', 'नयी कहानियों में आधुनिकता बोध' -- डा0 साधना शाह, पृ0 135-36
2. 'साक्षात्कार', 'साठोत्तरी कहानियां : कहानीकार दूधनाथ सिंह : कुछ प्रश्न और विचार', पृ0 179

3. `आज इतवार था` कहानी, `प्रेमकथा का अंत न कोई ` संग्रह - दूधनाथ सिंह, पृ0 105
4. 'साक्षात्कार', `साठोत्तरी कहानियां : कहानीकार दूधनाथ सिंह, कुछ प्रश्न और विचार`, पृ0 187
5. `अविश्वास की प्रतिबद्धता` - दूधनाथ सिंह , `लहर` पत्रिका, 1967-68 अंक 3, पृ0 47
6. `स्वर्गवासी` कहानी, `सुखान्त` कहानी संग्रह - दूधनाथ सिंह, पृ0 24
7. `सीखचों के भीतर` कहानी, `प्रेम कथा का अंत न कोई ` संग्रह, दूधनाथ सिंह, पृ0 98
8. `दो पत्र : द्वेष प्रेरित रचनाएं या अर्थ का अर्थ ` - दूधनाथ सिंह, `लहर` पत्रिका, 1964-65, अंक 1, पृ0 56
9. 'साक्षात्कार' `साठोत्तरी कहानियां : दूधनाथ सिंह, कुछ प्रश्न और विचार`, पृ0 179-80
10. `विजेता` कहानी, `सुखान्त` संग्रह - दूधनाथ सिंह, पृ0 88
11. `सपाट चेहरे वाला आदमी` कहानी, `सपाट चेहरे वाला आदमी` संग्रह - दूधनाथ सिंह, पृ0 162
12. `दु:स्वप्न` कहानी, `सपाट चेहरे वाला आदमी` संग्रह - दूधनाथ सिंह, पृ0 47
13. `सुखान्त` कहानी, `सुखान्त` संग्रह, दूध नाथ सिंह, पृ0 145
14. `स्वर्गवासी` कहानी, वही, पृ0 11
15. `सब ठीक हो जायेगा` कहानी, `सपाट चेहरे वाला आदमी` संग्रह - दूधनाथ सिंह, पृ0 74
16. `कोरस` कहानी, वही, पृ0 131
17. `विजेता` कहानी, `सुखान्त` कहानी संग्रह - दूधनाथ सिंह - पृ0 84-85
18. `सब ठीक हो जायेगा` कहानी, `सपाट चेहरे वाला आदमी` संग्रह - दूधनाथ सिंह, पृ0 75
19. `वे इन्द्र धनुष` कहानी, `प्रेम कथा का अंत न कोई ` संग्रह - दूधनाथ सिंह, पृ0 23

20. `सीखचों के भीतर` कहानी, `प्रेम कथा का अंत न कोई ` संग्रह - दूधनाथ सिंह, पृ0 98
21. `समकालीन कहानी : समान्तर कहानी` - डा0 विनय, पृ0 127
22. `आइसबर्ग ` कहानी, `सपाट चेहरे वाला आदमी` संग्रह - दूधनाथ सिंह`, पृ0 124-25
23. `प्रतिनिधि` कहानी, `कहानी पत्रिका`, 1969, अंक 3, पृ0 20
24. `कोरस` कहानी , `सपाट चेहरे वाला आदमी`, संग्रह - दूधनाथ सिंह, पृ0 139
25. `हुँडार` कहानी, `माई का शोक गीत` संग्रह - दूधनाथ सिंह, पृ0 28
26. `सीखचों के भीतर` कहानी, `प्रेम कथा का अंत न कोई ` - दूधनाथ सिंह, पृ0 95
27. `आज इतवार था` कहानी, वही, पृ0 102
28. `वे इन्द्रधनुष` कहानी, वही, पृ0 32
29. `प्रेम` कहानी - दूधनाथ सिंह, पृ0 139 समास / तीन
30. `धर्मक्षेत्रे : कुरुक्षेत्रे` कहानी - दूधनाथ सिंह, `हंस` पत्रिका, अगस्त 1995, पृ0 15
31. वही, पृ0 2 7
32. `बिस्तर` कहानी, `प्रेम कथा का अंत न कोई `, संग्रह - दूधनाथ सिंह, पृ0 60
33. 'साक्षात्कार,' `साठोत्तरी कहानियां : दूधनाथ सिंह, कुछ प्रश्न और विचार`, पृ0 184
34. `प्रेम` - दूधनाथ सिंह, पृ0 134 'समास' भाग तीन
35. `सुखान्त` कहानी, `सुखान्त` संग्रह - दूधनाथ सिंह, पृ0 144-45
36. `सीखचों के भीतर` कहानी, `प्रेम कथा का अंत न कोई ` संग्रह - दूधनाथ सिंह, पृ0 86

37 `रीछ` कहानी, `सपाट चेहरे वाला आदमी` कहानी संग्रह - दूधनाथ सिंह, पृ0 36

38. `सीखचों के भीतर` कहानी, `प्रेम कथा का अंत न कोई ` कहानी संग्रह - दूधनाथ सिंह, पृ0 91

00

चतुर्थ अध्याय

विश्लेषण की प्रक्रिया में प्रमुख कहानियां

`रीछ`

`रीछ` कहानी दूधनाथ सिंह की सबसे अधिक चर्चित और विवादास्पद कहानी रही है। वास्तव में यदि कहा जाय कि दूधनाथ सिंह का कहानी जगत में आगमन इसी `रीछ` के साथ हुआ तो गलत नहीं होगा ; क्योंकि पहली बार इसी कहानी के माध्यम से इन्होंने कहानी जगत में अपनी पहचान कायम की। परन्तु विवाद का विषय भी यह कहानी बहुत दिनों तक रही। आज भी इस का वह रूप जो लेखक दिखाना चाहता था, उस पर रीछ के पंजे लोगों को साफ़ नज़र आते हैं। लाख सफाई देने के बावजूद पाठक इसे सेक्स छोड़कर अन्य कुछ मानने के पक्ष में नहीं दिखाई देता। अब यह कहानी पाठक वर्ग की दूषित मानसिकता का या कहानीकार की अतिरिक्त सजगता का शिकार हो गयी, कहने में जरा दिक्कत महसूस होती है। परन्तु इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि कहानी पूर्ण रूप से प्रतीकात्मक है ; इसे लोग स्वीकार भी करते हैं। परन्तु यह `रीछ` किस प्रतीक का प्रतिनिधित्व करता है ? इसमें लोगों को गलतफहमी अवश्य है। अधिकांश लोग `रीछ` को वासनात्मक प्रतीक मानकर इसका सम्बन्ध कहानी में प्रस्तुत होने वाले इन गर्म दृश्यों से जोड़ते हैं --

> `उसने सहमकर जरा सा परे हटने की कोशिश की। लेकिन तब तक उसने अपने दोनों पंजे उसकी छाती पर रख दिये और थूथन उठा कर उसके होंठ छूने की कोशिश करने लगा। अचानक ही उसका भय अपनी चरम सीमा पर जाकर टूट गया और उसकी जगह एक धकान और सहानुभूति ने ले ली।`[1]

इस उद्धरण में सेक्स की हल्की छाया तो देखी जा सकती है परन्तु यदि प्रतीक की व्याख्या की जाएगी तो कोई सफलता हासिल नहीं होगी क्योंकि कोई भी व्यक्ति यह कल्पना नहीं कर सकता है कि एक आदमी इस हद तक जानवर के स्तर पर उतर आयेगा और वह सब करने के लिए अपने को छोड़ देगा जो कि एक पत्नी के साथ किया जाता है। वास्तव में यदि सही-सही कहानी को ध्यानपूर्वक पढ़ा जाय तो उसकी एक-एक गुत्थी सुलझती चलती है। इसमें 'रीछ' व्यक्ति के अतीत का प्रतीक है। इस अतीत को 'रीछ' के रूप में चित्रित करने के पीछे लेखक का यह मंतव्य था कि व्यक्ति को सदैव उग्रगामी या वर्तमान में जीने वाला होना चाहिए। उसे बीते अतीत से सीख तो अवश्य लेना चाहिए परन्तु उससे एकदम चिपक नहीं जाना चाहिए। यदि व्यक्ति अपने अतीत को नहीं छोड़ सकता है तो वर्तमान से वह सामंजस्य स्थापित नहीं कर सकता है ; परिणाम स्वरूप वह बार बार अतीत और वर्तमान में घिसटता हुआ गहरी पीड़ा की अनुभूति करता है। क्योंकि जिस अतीत को वह पाना चाहता है, वह मुमकिन नहीं और जिस वर्तमान को नकारता रहता है वह उसे जीने नहीं देता, क्योंकि यही जीवन सत्य है इसलिए व्यक्ति को अतीत में जीने की आदत छोड़ देनी चाहिए और वर्तमान को सहर्ष गले लगाना चाहिए। नहीं तो उसके जीवन में दो बातें घटित होंगी। या तो वह व्यक्ति अतीत को खा जायेगा या अतीत स्वयं उस व्यक्ति को निगल जायेगा। अब इसी बात को उभारने के लिए लेखक ने इस 'रीछ' प्रतीक को इतना विस्तार दिया और साथ ही साथ अतीत से अत्यधिक चिपकने के परिणामस्वरूप दाम्पत्य जीवन में उभरने वाली विद्रूपता को प्रस्तुत करने के लिए बिस्तर के कुछ गर्म दृश्यों को भी उभारा है। यथा --

> 'थोड़ी देर बाद वह शुरू कर देता। वह इस तरह मान जाती जैसे कुछ भी न हुआ हो। लेकिन वह हर क्षण दहशत से भरा हुआ रहता। न जाने कब, ... अगले किस क्षण वह टोक दे। उसकी उंगलियां कांपने लगतीं। वह संवादों की कल्पना करने लगता ...।'[2]

कहानी में एक शादी-शुदा व्यक्ति है। उसका अतीत में किसी लड़की के साथ प्रेम सम्बन्ध था। किसी कारणवश यह प्रेम सम्बन्ध दाम्पत्य जीवन में न बदल सका, जैसा कि अक्सर होता रहता है। उन मधुर स्मृतियों के अतीत को वह व्यक्ति बार-बार भुलाने की लाख कोशिश करता है पर हर बार असफल रहता है। इस भूले-भुलाने और अतीत को झुठलाने की प्रक्रिया में अन्तर्द्वन्द्व में पड़ा-पड़ा वह भीतर ही भीतर घुलता जाता है। यह अतीत प्रारम्भ में उसका पीछा बहुत ही खूबसूरत झबरे बाल वाले भालू के बच्चे की तरह करता है। कहने का तात्पर्य है कि जब व्यक्ति को अतीत की सुखद स्मृतियां आती हैं तो वह उसे बहुत ही अच्छी और रोचक लगती है ; उसी प्रकार जब व्यक्ति अपना कोई प्रेम प्रसंग याद करता है तो उसकी मुस्कुराहट होठों पर झलक पड़ती है। यह सुखद स्मृति की अनुभूति उसे एक प्यारे से भालू के बच्चे की तरह होती है, परन्तु इसी स्मृति में निरन्तर जीते रहने के बाद जब बीते हुए दिनों को पुन: पाने की कोशिश करता है तो एक प्रकार की बेचैनी और अकुलाहट का अनुभव करता है। चूंकि यह इच्छा पूरी नहीं हो सकती, परिणामस्वरूप ये यादें उस व्यक्ति को बहुत ही व्याकुल और पीड़ित करती रहती हैं। वह बार-बार उन्हीं दिनों के लिए आहें भरता है, यही उस भालू के बच्चे का दिनों-दिन खूंखार होते जाना है और कीवाड़ में बड़े-बड़े पंजों से खरोंच लगाना है। यथा --

> "जब भी वह कमरे में आता, उसकी आहट पाते ही वह तहखाने की किवाड़ भयानक रूप से खरोंचने और घुरघुराने लगता। लगता वह उसकी छाती के अंदर फेफड़ों को लगातार खरोंच रहा है। अब उसकी आंखों से वह पहचान एकदम गायब हो गयी थी।"[3]

भारतीय सन्दर्भ में यही भालू का खूंखार होना है कि व्यक्ति अपने पूर्व प्रेम के कारण अपने दाम्पत्य जीवन को नष्ट नहीं होने देना चाहता, इसलिए वह अपने इस अतीत को पत्नी की नजर से बचाने के लिए घर के बेसमेंट में यानी दिल की गहराई में छिपाता है, फिर भी यह अतीत बार-बार सामने आ ही जाता है जिसकी छाप पर्दों, खिड़कियों और शीशों पर दिखाई पड़ती हैं। रीछ के पंजों

के रूप से तात्पर्य व्यक्ति के जीवन में उस अतीत के कारण आने वाले परिवर्तन से है जो उसकी दिनचर्या को प्रभावित कर देता है। कुछ अन्य लक्षणों द्वारा पत्नी को भी यह संकेत मिल जाता है कि पति के जीवन में शायद कोई अन्य लड़की थी और इसी कारण अब वह इस दाम्पत्य जीवन के प्रति पूर्णत: वफादार नहीं बन सकता, जिसके परिणामस्वरूप दाम्पत्य जीवन में संदेह और अविश्वास की एक दरार पड़ जाती है। यथा --

> 'हां - हां, मेरे तो छोटे-छोटे हैं ...। उसके कितने बड़े थे। बीच में जगह थी या दोनों मिल गये थे। इसीलिए तुम यहां नहीं चूमते। दोनों हाथों में क्या एक ही आता था... ? इसीलिए रेस्त्रां में उस औरत को देख रहे थे।'[4]

पति-पत्नी के बीच इस प्रकार का अविश्वास, दाम्पत्य जीवन की विडम्बनापूर्ण स्थिति को प्रस्तुत करता है, जिसके चलते व्यक्ति का दाम्पत्य जीवन नर्क बन जाता है। दाम्पत्य जीवन में आने वाली यह कटुता और बेगानापन रीछ के शरीर से निकलने वाली दुर्गन्ध है जो सारे घर को भर देती है।

कहानी में एक बात जो महत्वपूर्ण है, वह यह कि प्रेम तो सभी करते हैं, परन्तु यह आज का प्रेम जिसका अर्थ महज एक शारीरिक भूख से अधिक कुछ नहीं है, वह किस ओर बढ़ रहा है ? क्या इसे हम प्रेम की संज्ञा दे सकते हैं ? जिसकी अंतिम परिणति एक व्याकुलता, पीड़ा और घुटन के अतीत में होती है, जो अंतत: एक क्षणिक भोग पर आधारित है, मात्र कुछ दिन के रोमांस के बाद समाप्त हो जाना जिसकी नियति हो। इस प्रेम और रोमांस का भयानक अतीत किस प्रकार से व्यक्ति को भीतर ही भीतर घायल करता है, खरोंचता है और खूनमखून करता है और वर्तमान से सामंजस्य के अभाव में दाम्पत्य जीवन को नर्क बना देता है। परिणामस्वरूप व्यक्ति के पास अंतिम हथियार यही बचता है कि या तो वह उस अतीत के रीछ को मार डाले या वह रीछ ही उस व्यक्ति को चीर-फाड़ डाले। कहानी का 'मैं' अन्तत: अतीत की गिरफ्त में इतना फंस जाता है कि अतीत का रीछ उसके ब्रह्माण्ड को फाड़ देता है। इस प्रकार व्यक्ति की अपनी पहचान लुप्त हो जाती है और रह जाती है कुण्ठा, अन्तर्द्वन्द्व,

पीड़ा, बेकली और खालिसपन से युक्त नारकीय जीवन ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कहानी में लेखक ने प्रतीकात्मकता को इस स्तर तक उतार दिया है कि प्रतीक और पात्र घुल-मिल कर एक हो गये, और पाठक वर्ग प्रतीक को पात्र रूप में स्वीकार भी कर लेता है । कहानी में यद्यपि बीच-बीच में अतीत की ओर संकेत तो मिलता रहता है परन्तु 'रीछ' की हरकतें और व्यवहार कहानी पर इस कदर हावी हो जाते हैं कि पाठक इस संकेत को भूल जाते हैं । इसी अतीत की घटना को उभारने के लिए लेखक ने कहानी में दो तीन स्थानों पर मोटे अक्षरों में छपवाया है, जिस पर ध्यान देने से यह सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि रीछ अतीत का प्रतीक है और कहानी अतीत को आधार बनाकर लिखी गयी । यथा --

> 'क्या तुम जानते हो, उनके साथ मुझे कैसा लगता है ... जैसे कोई रीछ मेरे ऊपर झूम रहा हो । उबकाई आने को होती है । तुम विश्वास नहीं करते । तुम्हारे साथ ? तुम तो एक बच्चे की मानिन्द लेट जाते हो । इतने साफ्ट ... कोमल ... वह केवल मैं जानती हूं ... माई वाइल्ड ... मेरे शिशु ...' ।[5]

यह पात्र का वह अतीत है जो उसका पीछा नहीं छोड़ता और उसे दिन-रात घायल करता रहता है । व्यक्ति निरन्तर अन्तर्द्वन्द्व का शिकार होता रहता है ; कुछ समय वह सोचता है कि इस सारी कहानी को अपनी पत्नी से बता कर चिंतामुक्त हो जायेगा, लेकिन दूसरे ही पल यह आशंका उसे दबोच लेती है कि कहीं इससे उसका दाम्पत्य जीवन और भी बदतर न हो जाय, फिर वह अपने को रोक लेता है । इसी प्रक्रिया में भीतर ही भीतर संघर्ष करता रहता है । इस प्रतीक के माध्यम से लेखक ने आज के दाम्पत्य जीवन में आने वाले बिखराव के एक मुख्य कारण को रेखांकित करने का प्रयास किया और साथ ही साथ इसके खालिसपन और औपचारिकता को भी उभारा है कि आज का युवक किस प्रकार पति-पत्नी के बीच बनने वाले इस पवित्र रिश्ते को वासनात्मक भूख

पर ले जाकर छोड़ देता है। परिणामस्वरूप पाता है प्यार भरी दो बातों के नाम पर शुरू होने वाले सन्देह, अविश्वास और आक्रोश भरा अंतहीन यह वार्तालाप। यथा --

'कोई भी छिछड़ा क्यों पसंद करेगा। ... तुम कहोगे, इसके विपरीत बड़े-बड़े उदाहरण हैं .... । तो वह केवल एक समझौता है। चाहे वह श्रद्धावश हो या स्वार्थवश .... । - - - - - - - मैं झूठन अपने अन्दर नहीं ले सकती। लेकिन अगर ऐसा है या हुआ तो ... मैं ... तो मैं पता नहीं ... ओफ .... । तुमने मुझे कितना छोटा और अपाहिज कर दिया है।'[6]

कहानी व्यक्ति के अन्तर्विरोध को उभारती है, व्यक्ति का व्यक्तित्व आज प्याज के छिलके की तरह परतों वाला हो गया है, वह अपने किसी भी व्यवहार में सहज नहीं रह पाता है। यही कारण है कि वह खुद की असली पहचान को खोता जा रहा है। यह आधुनिक शहरी परिवेश की देन है जिसमें युवा मानस इस तरह उलझ गया है कि उसका स्वभाव भी कृत्रिम हो गया है। यदि युवा विवाहित है तो उसके द्वारा सबसे अधिक कृत्रिम व्यवहार अपनी पत्नी के साथ निभाना होता है। इसका ज्वलंत उदाहरण यह कहानी प्रस्तुत करती है। कृत्रिमता और व्यक्तित्व का यह दोहरापन आज की ज़िंदगी में न पाप है, न अनैतिकता और न अपराध। यह तो आत्म रक्षा की कूटनीति बन गया, जिससे कि जिंदगी में उठ खड़े होने वाले तूफान का वेग कम किया जा सके। परन्तु इसी कृत्रिमता के चलते व्यक्ति कभी-कभी आशंकाओं के दायरे में आ जाता है, जो इससे भी ज्यादा खतरनाक होता है।

कहानीकार यौन स्थितियों का अन्वेषण सूक्ष्मता से करता है, जो केवल आत्मान्वेषण और यौन सम्बन्धों से उठने वाले तनावों का चित्रण निस्संग रूप से ही नहीं करता है, बल्कि इसके लिए अत्यंत ही संत्रस्त मन:स्थितियों का स्वप्निल चित्र चेतना प्रवाह के माध्यम से उद्घाटित करता है। कहानीकार का

लक्ष्य है यौन सम्बन्धों पर लटकते हुए दुर्वह बोध को पहचानना और उसको तोड़ते हुए तनाव की मूल स्थिति तक पहुंचना । कहानी की अभिव्यक्ति अत्यन्त सूक्ष्म और प्रतीकात्मक हुई है जिससे यह लगता है कि कहानीकार ने सेक्स के मुद्दे को प्रतीकों के पीछे छुपाने का प्रयत्न किया है । हम यह मानते हैं कि `रीछ' व्यक्ति के अतीत का प्रतीक है, तो भी क्या यह कहानी सेक्स के उभार से मुक्त हो जायेगी ? लेखक ने कहानी में किस अतीत की बात की है ? ध्यान देने पर वह अतीत भी व्यक्ति के उसी शारीरिक भूख से पीड़ित प्रेम की ओर हमें ले जाती है, जो कभी वर्तमान का अंग थी, जिनसे होकर पात्र गुजर चुका है, रह गयी हैं अब सिर्फ उसकी कचोट, तड़प और खुद को खाने की उलझन जिनसे आज भी वह पात्र उभर नहीं पाता है ।

यद्यपि कहानीकार इस बात को मानने के लिए राजी नहीं है कि यह कहानी सेक्स से सम्बन्धित है, पर मैं इतना अवश्य कहना चाहूंगा कि सेक्स के ही माध्यम से कहानी में इस अतीत की विकृतियों को उभारा गया है । कहानी में प्रस्तुत जो अतीत है, वह भी सेक्स से मुक्त नहीं है । यद्यपि उसमें प्रेम की तड़प और बहुत कुछ लगाव दिखता है, फिर भी यह आज के परिवेश में पलने वाला प्रेम है जिसमें सेक्स की अहम् भूमिका होती है ।

यदि मन में छाने वाले दु:ख और अवसाद का समय पर निदान न खोज लिया जाय और उस पर समय रहते गम्भीर ढंग से कदम न उठाया जाय तो व्यक्ति उचित निर्णय लेने में सफल नहीं हो सकता है । परिणामस्वरूप वह धीरे धीरे वीरानेपन की ओर बढ़ता है और अन्तत: अजनबी बन जाता है । `रीछ' कहानी का नायक इन्हीं परिस्थितियों से गुजरता है और अन्त में अजनबियत की स्थिति तक पहुंच कर पत्नी का विश्वास खो देता है । वह न तो अतीत की घटनाओं को भुला पाता है और न वर्तमान में पत्नी के साथ उचित सामंजस्य कायम कर पाता है । परिणामस्वरूप वह अपने दाम्पत्य जीवन को नर्क बना लेता है । अपराध की चेतना से पैदा हुई यह असहजता किस प्रकार व्यक्ति के संतुलन को बिगाड़ देती है और आगे चल कर रीछ की तरह आक्रामक एवं भयावह हो सकती है, इसका बड़ा ही प्रभावशाली अंकन कहानी में हुआ है । परन्तु कहानी की सबसे बड़ी

कमजोरी यह है कि कहानीकार ने परिस्थितियों को इस प्रकार जटिल और रहस्यात्मक बना दिया है कि कई बार पढ़ने के बाद ही पूर्णत: समाधान हो पाता है ।

कहानी फ्लेश बैक तकनीक से प्रस्तुत की गयी है, जिसकी शुरुआत बिस्तर से होती है और कहानी पीछे हटते हुए अतीत में खो जाती है । इसके पश्चात् एक-एक घटनाएं स्मृति बिम्बों के माध्यम से उभर-उभर कर आती रहती हैं । इन स्मृतियों को उभारने में नायक की अहम् भूमिका तो रहती ही है, परन्तु पत्नी भी उसमें कुछ कम योगदान नहीं करती । वह बार बार शंकालु मानसिकता के चलते कहानी के 'मैं' को उलाहने और खीझपूर्ण वक्तव्य देती है जिससे उसका अतीत कुछ और सक्रिय हो जाता है । इसी प्रकार कहानी को आगे बढ़ाने में मनोवैज्ञानिकता का काफी कुछ योगदान रहा है क्योंकि अधिकांश कहानी चेतना प्रवाह की स्थिति से गुजरती है । यथा --

> 'तुम... तुम्हें मैंने किडनैप कर लिया है .... । मैं तुम्हें जाने नहीं दूंगी । गर चले भी गये तो मैं पीछा करूंगी ... । मैं लगी रहूंगी ... । यह तुम्हारी सांस ... यह तुम्हारा चंदन की तरह महकता बदन ... मैं इसमें खो जाऊंगी । क्या तुम समझते हो ... इसे अहमैंजिनेबिल ? ... देखना ... ।'[7]

कहानी की भाषा भी इनकी परवर्ती कहानियों की अपेक्षा बहुत कुछ आंचलिकता से मुक्त है या यूं कहें कि पात्र और परिवेश में ढली हुई कस्बाई जीवन को जीवंत कर देने वाली भाषा है जिसमें न तत्समकता के प्रति आग्रह है और न आंचलिकता को छोड़ने की विशेष कोशिश, बल्कि दोनों का एक मिला जुला रूप उभर कर सामने आता है -- TH-7441

> 'अचानक ही उसे जोर का गुस्सा आया । उसने 'उसे' पकड़ कर दोनों टांगों के नीचे दबा लिया और घूंसों से पीटने लगा । इस तरह ताबड़तोड़ पीटे जाने पर पहले तो 'वह' हतप्रभ रह गया । शायद 'उसे' विश्वास नहीं हो रहा था ।'[8]

कहानी की शैली में भी कहीं-कहीं उतार-चढ़ाव दृष्टिगत होता है। यद्यपि कहानी का अधिकांश भाग एकालाप की स्थिति में ही गुजर जाता है, परन्तु कुछ स्थिति वार्तालाप शैली की भी आ जाती है जबकि पति-पत्नी के मध्य तू-तू मैं-मैं शुरू होती है। इस अतीत के खींचतान में भी कहानीकार ने व्यंग्य शैली का अवसर निकाल लिया जिसमें एक साथ ईर्ष्या, उलाहना और आक्रोश का पुट है। यथा --

> 'हां, चेहरा तो ठीक-ठाक है, लेकिन पीछे से एकदम बेकार है। क्या पीछे से खाओगे। हां, तुम लोग खाते ही हो। तो क्यों नहीं ढूंढ ली कोई विक्टनितम्बा ? क्यों नहीं ढूंढ ली कोई लम्बे चेहरे वाली। क्यों गोल चेहरे पर मरने आये।'[9]

कहानी में चेतना प्रवाह शैली में प्रस्तुत कथनों के साथ-साथ मानसिक झुंझलाहट को प्रकट करने के लिए खण्डित कथनों का भी प्रयोग किया गया है जो स्थिति की जटिलता को बखूबी उभारते हैं। इसके साथ ही साथ कहीं-कहीं पर हल्की वर्णात्मक शैली का भी प्रयोग दिखाई पड़ता है। परन्तु सम्पूर्ण कहानी प्रतीकात्मक शैली में कही गयी है, जिसकी प्रतीकात्मकता अत्यधिक जीवंतता से प्रस्तुत होने के कारण कहानी के मूल बिन्दु से भटक गयी। परिणामस्वरूप अप्रस्तुत अर्थ के बजाय प्रस्तुत अर्थ ही सर्वत्र कहानी पर हावी रहा है।

'रक्तपात'

'रक्तपात' दूधनाथ सिंह की कहानियों में 'रीछ' से कम चर्चित परन्तु 'रीछ' से अधिक प्रभावशाली रही है। यद्यपि यह कहानी बहुत कुछ भावुकता के धरातल पर लिखी गयी, फिर भी इसमें पूर्ववर्तियों की तरह कोरी भावुकता के ही दर्शन नहीं होते, बल्कि उसके साथ-साथ सामाजिक प्रश्न भी कहानीकार द्वारा उठाए गए जो हमारी चेतना की धार को तेज कर सोचने-विचारने के लिए मजबूर करते हैं। 'रीछ' और 'रक्तपात' कहानियों में समानता इस स्तर पर दिखाई

पड़ती है कि दोनों में ही सेक्स के माध्यम से सामाजिक सम्बन्धों में बदलाव विशेषकर पति-पत्नी के रिश्तों के बीच पड़ने वाली गांठ के कारणों की जांच पड़ताल की गयी है। हां, इतना अंतर अवश्य है कि यदि 'रीछ' पति-पत्नी के बीच बढ़ने वाले अलगाव को उभारता है तो 'रक्तपात' परिवार से अलग-थलग पड़ जाने वाले बेटे और विच्छिप्त मां की उपेक्षित कष्टपूर्ण ज़िंदगी का चित्र है।

'रक्तपात' प्रतीकात्मक कहानी है, इसके प्रत्येक पात्र इस रक्तपात का किसी न किसी रूप में शिकार हैं। कहानी का संजय जो परिवार के साथ सामंजस्य न बिठा पाने की वजह से अलग-थलग पड़ जाता है। कहानी में यह रक्तपात मूर्त और अमूर्त दोनोंरूपों में दिखाई पड़ता है। मूर्त रूप में वह बूढ़ी मां के गर्दन से बहने वाले लहू के रूप में और सूक्ष्म रूप से अपने परिवेश और परिवार से कट कर अजनबियत की ज़िंदगी बिताने वाले युवक के बाहर भीतर होने वाले निरंतर रक्तपात के रूप में उभरता है। यह एक प्रकार से अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति है जिसमें व्यक्ति पूर्ण रूप से निर्णय की स्थिति में नहीं पहुंचता और बराबर इस रक्तपात को बर्दाश्त करने के लिए अभिशप्त हो जाता है। यथा --

> 'जैसे दिमाग में कई कदम लड़खड़ाते हुए चल रहे हों। उसने सोचा 'नरक'। फिर उसके दिमाग में आया, 'क्यों इतना विवश हो गया है वह?' फिर तर्क पर तर्क ... कौन समझ सकेगा कि इतना आवेग शून्य क्यों है वह? ... फिर जैसे भीतर ही भीतर झनझनाता हुआ-सा दर्द उठने लगा।'[10]

इसी तरह यह 'रक्तपात' विवाहिता होते हुए भी पति की ज़िद के चलते उसके प्यार को न पा कर घर के कार्यों में लगी रहने वाली पत्नी के भीतर होता है, जो उसके सम्पूर्ण जीवन को नीरस और उसे चिड़चिड़ा बना देता है। पति-पत्नी का रिश्ता जिस बात को सबसे ज्यादा तरजीह देता है,

उसी में इतनी कृत्रिमता, हिचक और औपचारिकता उस अलगाव बोध से चलने वाले भयानक `रक्तपात` का प्रमाण है। यथा --

> `प्यार कर लूं ?`
> `जी ?`
> जैसे कोई झाड़ी में छिपे हुए खरगोश को पकड़ने के लिए धीमें-धीमें कदम बढ़ाता हुआ आगे बढ़ता है, उसी तरह उन्होंने कान के पास मुंह ले जाकर एक-एक शब्द नापते हुए कहा --`मैं .. कहती .... हूं - `प्यार कर लूं ?`[11]

परन्तु सबसे बड़ा रक्तपात अपनी ही औलाद से, अपने ही घर में तिरस्कृत एवं कष्टपूर्ण ज़िंदगी जीने और विच्छिप्तता के दिन बिताने वाली मां के बाहर और भीतर दोनों होता है। इस प्रकार इस रक्तपात को एक व्यापक धरातल प्रदान किया गया है जो केवल संजय के अन्तर्मन में या बुढ़िया मॉ के गले से ही नहीं होता है, बल्कि आज के सामाजिक परिवेश और कृत्रिमता के माहौल में जीने वाले नवयुवक और घर आयी नवयुवतियों के कुसंस्कारों के परिणामस्वरूप तिल-तिल कर भुगतने वाली इसी तरह प्रत्येक बूढ़ी पड़ती मॉ का रक्तपात है। जिसे बड़ी गहराई से कहानीकार ने पहचाना है। और जिसके माध्यम से उस ने समाज की एक दुखती नस पर उंगली रख दी। जैसा कि डॉ० संतबख्श सिंह ने भी कहा है --

`यह कहानी समाज से अलग पड़े आज के व्यक्ति का सही चित्रण प्रस्तुत करती है। पत्नी को वेश्या और मॉ को किसी सामान्य बुढ़िया से भिन्न न मानना सम्बन्धों की व्यर्थता को सामने लाता है। वहां रचना, पाठक और वृहत्तर यथार्थ के स्तर एक बिन्दुपर आ मिलते हैं।`[12]

इस कहानी पर भी सेक्स के खुले प्रयोग का गम्भीरता से आरोप लगता रहा है जो किसी हद तक सही भी है, परन्तु हमें यह देखना चाहिए कि इस सेक्स प्रयोग से क्या हासिल होता है ? क्या यह मात्र पाठकों की जिज्ञासा बांध

लेने या सस्ती लोकप्रियता अर्जित करने का लेखकीय प्रयास है ? दोनों बातें कहानी में नहीं दीखतीं, बल्कि कहानी एक अहम् लक्ष्य की ओर संकेत करती है । जिन यौन-दृश्यों का प्रयोग कहानीकार केवल उत्तेजक के रूप में ही करते रहे हैं, उसके द्वारा लेखक ने समाज के सामने महत्वपूर्ण प्रश्न खड़ा किया कि - मातृत्व बड़ा है या तात्कालिक क्षणिक आनन्द ? माँ की तकलीफ ज्यादा महत्वपूर्ण है या सेक्स ? दोनों में से एक युवा दम्पति या एक बेटा किस ओर बढ़ता है ? क्या वह माँ की पीड़ा को नजरंदाज करके अपने यौन सम्बन्धों में लिप्त हो जायेगा ? इस प्रकार यह कहानी व्यापक सामाजिक आधार को ले कर चलती है । यदि कहानीकार चाहता तो पुत्र द्वारा पत्नी को एकदम से उपेक्षित दिखा कर और माँ का पूर्ण पक्ष लेने वाली स्थिति में कहानी का आदर्श ढांचा खड़ा कर सकता था, परन्तु उसने गैर-ईमानदार न होने की गरज से आज के नवयुवक की नब्ज़ को पकड़ा और उसे पत्नी तथा माँ के बीच निरन्तर पिसता हुआ पेश किया अर्थात् वह एक विवशता में पड़ा हुआ है । वह पत्नी के साथ दुर्व्यवहार भी नहीं करना चाहता है, लेकिन उसके भीतर जैसे माँ की विच्छिप्तावस्था की आग-सी लगी है । वह न तो पूर्णत: माँ की ओर बढ़ पाता है और न ही पत्नी का साथ छोड़ पाता है । इस अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति आज के युवक की पशोपेश वाली नियति को उभारती है । परन्तु अंत में पुत्र पर माँ के प्रेम की विजय होती है, या परिस्थिति की गम्भीरता से माँ की ओर पुत्र का झुकाव बढ़ जाता है । उसके द्वारा खून से भीगी माँ को गोद में उठाना इस बात का संकेत है कि अभी भी पुत्र के हृदय में माँ के प्रति कहीं-न-कहीं जगह अवश्य बाकी है ।

इस महत्वपूर्ण प्रश्न के अलावा भी कहानी कुछ अन्य बिन्दुओं को भी छूती चलती है । यह व्यक्ति के अलगाव बोध और सम्बन्धों में उठने वाले तनाव को अधिकाधिक रेखांकित करती है, साथ ही साथ मूल्यबोध की बदलती स्थिति को हल्के से उभार देती है । कहानी में माँ का यह कथन कि `पिता तो परमात्मा है ` तत्कालीन भारतीय समाज में पारिवारिक सम्बन्धों की महत्ता और पितृ-सत्तात्मक परिवार का परिचायक है । पिता के बजाय पुत्र को अपनी अजनबियत

के लिए उत्तरदायी ठहराने वाली बदलती संवेदना का संकेत दूधनाथ सिंह द्वारा कहानी में बखूबी उभारा गया है। कहानी पिता और पुत्र के बीच उभरने वाली इस वैचारिक खाई की दूरी को उभारती है, जो कि दो पीढ़ियों के मध्य निरंतर बढ़ने वाले दरार का परिणाम है। पिता के अपराध को बेटे द्वारा इस कदर महसूस किया जाना ही पुत्र के लिए माता, पिता और पत्नी को छोड़कर चले जाने का पर्याप्त कारण बन जाता है। बारह वर्ष बीत जाने पर पिता की मृत्यु के पश्चात ही पुत्र का घर में आगमन आज के सम्बन्धों की विडम्बना को गहराई तक छूता है। यद्यपि पिता-पुत्र को टकराव का कहानी में मात्र उल्लेख है परन्तु यही टकराव पुत्र की अजनबियत का प्रमुख कारण बन जाती है। 'माँ', पिता को न समझ पाने और क्षमा न करने के लिए पुत्र को दोषी ठहराती हुई कहती है कि --

> 'बेटा। इतना हठ किस काम का। पिता तेरे क्या कम दुःखी थे ? लेकिन बेटा! बड़ों से कोई अपराध हो जाय तो उन्हें इस तरह कहीं सजा दी जाती है ? पिता तो परमात्मा हैं। और फिर वे भी क्या जानते थे ? बेटा! बड़ा वह है जो अपनी तरफ से सभी को क्षमा करता चले।'[13]

आज के युवक की अजनबियत वैवाहिक जीवन में संतुलित न हो पाने का क्रूर परिणाम है। घर में बुजुर्ग या पिता के प्रभाव से जबर्दस्ती होने वाली शादियां इस बढ़ती अजनबियत का एक महत्वपूर्ण कारण हैं, जिसके पीछे या तो झूठी मर्यादा या दहेज में मिलने वाली दौलत की अहम् भूमिका रही है ; परिणाम-स्वरूप अपने खानदान की खोखली मर्यादा को ढोने वाला आज का युवक दाम्पत्य जीवन को निराश और बर्बाद हो जाने की स्थिति में अनचाहे भाव से घसीटता रहता है। इन्हीं परिस्थितियों का शिकार कहानी नायक 'संजय' भी है। व्यक्ति का अपने ही परिवार से इस कदर कट जाना कि वह अपने ही घर में अजनबियत की जिंदगी जीने को विवश हो। जिस घर में उसका कभी पूर्ण वर्चस्व था उसमें ही

व्यक्ति द्वारा पत्नी का विरोध करने से डर और सब कुछ को ठण्डे मन से झेलते जाने वाली नियति का जीवन्त रूप यह कहानी प्रस्तुत करती है। जिस पत्नी के साथ वह सम्भोग कर सकता है, उसकी पूर्ति हेतु स्वयं को छोड़ सकता है या माँ का अपमान देख सकता है परन्तु प्यास लगने पर पानी मांगने में कई बार झिझकने की स्थिति बहुत गहराई से आज के युवक की आंतरिक पीड़ा और बेबस स्थिति का जरा-जरा उधेड़ देती है --

> 'वह परिस्थिति भांप चुका था और उन बातों में रस आने के बजाय उसे इतना थोथापन महसूस होता कि उसकी इच्छा होती कि वह कानों में उंगली डाल ले या जोर से चीख पड़े। लेकिन यह कुछ भी नहीं हो सका। बोला, 'जी मेहरबानी करें तो एक गिलास पानी पिला ही दीजिए।'[14]

बेटा घर आता है, तब तक समझौते के लिए बड़ी देर हो गयी थी, क्यों कि माँ विच्छिप्त हो चुकी थी। इस सम्बन्ध की पुनर्स्थापना में असफल होकर, वह पत्नी के साथ अपने सम्बन्ध सुधारने का प्रयास करता है पर इसकी अंतिम परिणति माँ के विनाश में होती है। इस कहानी में दूधनाथ सिंह धीरे से सामाजिक वर्जनाओं को तोड़ते दिखाई देते हैं। कहानीकार की सहानुभूति माँ से है, जिससे माँ के व्यक्तित्व में ऐसा कुछ नहीं चित्रित किया गया है जो उसके दृष्टिकोण और व्यवहार को चोट पहुंचाती हो। वे इस माँ की प्रतिमा को विच्छिप्तावस्था में दिखाकर संवेदनात्मकता का अधिक संचार करते हैं। वास्तव में यदि देखा जाय तो कहानी एक पूर्ण भावुक परिस्थिति को उत्पन्न करती है। दर-असल भावुकता के साथ सबसे बड़ी दिक्कत इस बात की है कि भावुक व्यक्ति की स्वयं अपनी भावुकता में पूरी आस्था नहीं बन पाती। इसलिए भावुकता को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए लेखक रह-रह कर अनेक युक्तियां गढ़ता है, अनेक परिस्थितियां पैदा करता है। 'रक्तपात' कहानी में एक से एक घटनाएं जुटाई गयी हैं, परन्तु लेखक के सामने सबसे बड़ी समस्या यह है कि बुढ़िया माँ को किन परिस्थितियों में धक्का मार

कर गिराया जाय, साथ ही धक्के मारने की यह स्थिति भी काफी नाटकीय है। इसलिए लड़के और बहू के सम्भोग का अवसर चुना गया, जाहिर है कि ऐसी स्थिति में माँ का वहाँ जानबूझ कर पहुंच जाना और बहू का भुंझला जाना स्वाभाविक ही था।

एक नाटकीय स्थिति को प्रभावशाली बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उसे विलम्बित किया जाय। इसलिए नाटकीय अंत के पहले दूर तक कहानी को धीरे-धीरे विलम्बित किया गया। इसी प्रकार अंतिम प्रभाव के लिए भी पाठकों के हृदय को पहले से तैयार रखना जरूरी है, इसलिए माँ द्वारा मुर्गियों का दरबा खोल देने से उत्पन्न खीझ की प्रतिक्रिया रूप माँ को बहू द्वारा घसीटता हुआ ले जा कर खाट पर पटक देना और माँ की तबियत ठीक न होने के बावजूद भी उन्हें भयंकर गर्मी वाली कोठरी में डाल देने के साथ पत्नी का उपेक्षापूर्ण कथन --

> 'ले तो चलिए। इन्हें गरमी-सरदी कुछ नहीं व्यापती। अब की माघ के महीने में बाहर नदी के किनारे लेटी थीं। लोग गये तो और हंसने लगीं।'[15]

आदि ने पाठकों का हृदय काफी गीला कर दिया। अंतिम प्रभाव के रूप में कहानीकार ने माँ की बेबस स्थिति दिखाकर परिस्थिति को गम्भीर बना दिया। जैसे - बुढ़िया को गाली देते-देते बकना, उसका औंधे मुंह ईंटों के घरौंदे पर गिरना, पत्नी के द्वारा माँ को ढकेल कर खाट पर सिर पकड़ कर बैठ जाना, बुढ़िया का लहु-लुहान हो जाना, पुत्र द्वारा दौड़ कर माँ को उठाना, चीख कर पानी मांगना और अंत में बुढ़िया द्वारा पुत्र की गोद में खून की 'कै' कर देना आदि। इस प्रकार देखते हैं कि माँ के साथ संतति का लगाव अन्य सम्बन्धों की अपेक्षा कुछ देर से ही टूटता है किन्तु टूट वह भी गया है। साठोत्तरी कहानीकार इस अलगाव अलगाव की सूचना बड़े निर्भयता से देते हैं। 'रक्तपात' का 'संजय' पत्नी और पिता से तो पहले ही कट गया है। अब माँ के साथ भी उसके सम्बन्धों में उतनी गर्माहट नहीं है, वह न तो पूर्णतः पत्नी के प्रति और न माँ के ही प्रति वफादार

सिद्ध हो सका । माँ की ओर यद्यपि वह बढ़ना चाहता है परन्तु उसमें पत्नी को भी नकारने का साहस नहीं है । सम्बन्धों का यह लिजलिजापन साठोत्तरी कहानियों की विशेषता है जो इस कहानी में उभर कर आया है ।

साठोत्तरी कहानी युग में फ्लैशबैक पद्धति की बढ़ती हुई लोकप्रियता से भी यह कहानी प्रभावित रही, जो बीच से शुरू होकर अंत से प्रारम्भ की ओर पात्र की स्मृतियों में संजोए बिम्बों के बीच हिलोरे खाती हुई बढ़ती जाती है । मनोवैज्ञानिकता के सहारे चेतना प्रवाह शैली भी इसमें पूर्ववर्ती कहानियों की तरह प्रयुक्त हुई है --

> 'एकाएक उसे आरती का ख्याल आया । दादा ने बताया था, 'आरती आयी हुई है ; बहुत हठ से बुलाया है ।' फिर वे हरी की प्रशंसा करते हैं । 'बहुत अच्छा लड़का मिल गया । आरती सुखी है ।' फिर दादा चुप हो गये । आरती सुखी है, जैसे यह बात कहीं दुरेद गयी ..... ।'[16]

संवाद की शैली भी दिखाई पड़ती है, परन्तु किसी महत्वपूर्ण बिन्दु को रेखांकित नहीं करती, बल्कि आज के पति-पत्नी के निरर्थक और औपचारिक अलाप भर हैं । कहीं-कहीं पर कथन में कटुता और व्यंग्य के दर्शन हो जाते हैं जो पति के ऊपर झींटाकसी के लहजे में फेंके गये हैं । परन्तु परिस्थिति और मानसिक बुनावट को ये संवाद अवश्य गहराई से छूते नजर आते हैं । जैसा कि पति-पत्नी के बीच चलने वाले रोमांस की पूर्व स्थिति को उभारने वाला यह कथन --

> 'लाओ, कुरता निकाल दूं । इतनी गर्मी में कैसे पहने रहते हो ये कपड़े ?' वे उठ कर सिरहाने की ओर चली आयी । तकिया एक ओर खिसका दिया और उसका सिर हाथों में उठाती हुई बोली, 'जरा उठो तो ।'[17]

वर्णनात्मकता भी एक दो स्थानों पर प्रयुक्त हुई है परन्तु लेखक का प्रयास पात्र या संवाद द्वारा ही स्थिति चित्रण की ओर अधिक दिखाई देता है । इस कहानी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि भावात्मकता के धरातल पर इतना अधिक सफल रहने के बावजूद इसके कथा-शिल्प की बुनावट में शिथिलता नहीं आने पायी । भाषा साधारण बोलचाल की हिन्दी है । फिर भी `रांध कर खा जाओ `, `नरक`, `बरसाती`, `झनझनाती`, `खाट`, `हूल-सी उठी` और `के करना` आदि क्षेत्रीय बोलियों का प्रयोग कथन की संप्रेषणीयता शक्ति में वृद्धि करते हैं, जो ज्यादा तो नहीं पर ढूंढने पर अवश्य मिल जायेंगे ।

`कोरस`

`कोरस` कहानी धूमनाथ सिंह की बहुचर्चित किन्तु दुरूह कहानी है । इस की दुरूहता का कारण इसका फैंटेसी शैली में लिखा जाना है । फिर भी यह कहानी अपने समय की पीड़ा को गहराई से छूती है । कहानी मुख्य रूप से इतिहास के मोहभंग स्थिति के दौर से गुजरने वाली मानसिकता की पृष्ठभूमि में लिखी गयी है ; इसलिए कहानी की विषय वस्तु बहुत कुछ राजनीति से जुड़ी है और इन राजनीतिज्ञों के साथ-साथ देश के भविष्य का नंगा रूप भी यह कहानी उभारती चलती है । अत: इसके चलते आज के युग में इसकी प्रासंगिकता अधिक बढ़ जाती है ।

वास्तव में यह कहानी फैंटेसी की भूमि पर फैलती तो है परन्तु प्रतीकात्मकता को भी नहीं छोड़ सकी । इसलिए प्रतीकात्मकता का पुट भी इस में सर्वत्र दिखाई पड़ता है ; खास कर इसके शीर्षक पर यह अधिक हावी रही है । `कोरस` का मतलब एक प्रकार का सहगान है जिसको आधार बना कर कहानीकार ने देश की राजनीति पर करारा व्यंग्य किया है । कहानी में प्रयुक्त `कोरस` गरीबों का खून चूसने वाले, झूठे-मूठे वर्ग के लम्बे चौड़े दावे करने वाले, मंच पर चढ-चढ कर बोलने वाले और देश की आर्थिक समस्याओं को केवल मौखिक हल करने वाले राजनेताओं द्वारा देश की समस्याएं रखने और वायदे करने वाले कोलाहल का प्रतीक है । चारों तरफ से नेतागण केवल एक स्वर में चिल्लाते रहे हैं कि हमारे सामने समस्याएं हैं । एक इस तरह की काली छाया है जिसका हम

पीछा कर रहे हैं । यह छाया क्या है ? यह काली छाया देश के अंदर मुंह फाड़ समस्याएं और साधनहीनता है । हमारे सामने इस देश के निर्माण की समस्याएं हैं, इनफ्रास्टक्चर खड़े करने की समस्याएं हैं, पब्लिक सेक्टर खड़ा करने की समस्याएं हैं, देश को मजबूती प्रदान करने के लिए पंचवर्षीय योजनाएं बनाने और उसे लागू करने की समस्याएं आदि का नेताओं द्वारा रोना-- रोते रहना एक स्वर में गाया जाने वाला 'कोरस' है ।

स्वतंत्रता प्राप्त होने के बाद भारतीय जनता की समस्त आशाएं चकनाचूर हो गयीं । पूरे स्वतंत्रता संग्राम के दौरान यह उम्मीद बनी रही कि जैसे ही गुलामी की जंजीरें टूटीं , अपना शासन स्थापित हुआ, कि यह सारा शोषण, असमानता, आर्थिक पराधीनता और दरिद्रता समाप्त हो जायेगी ; एक नए युग का आरम्भ होगा जिसमें उसकी भी हिस्से दारी होगी । लेकिन स्वतंत्रता के बाद ऐसा कुछ नहीं हुआ, उल्टे बेकारी, निर्धनता और दीनता दिन पर दिन बढ़ती गयी । इस सथ: गुलामी से मुक्त हुआ साधनहीन और कमजोर आर्थिक आधार वाला हमारा देश ही इस कहानी की काली छाया है जिसका पीछा सारे लोग कर रहे हैं । इसके पीछे इन नेताओं का मन्तव्य चाहे जो रहा हो, परन्तु इतना अवश्य है कि वे देश के आर्थिक आधार को मजबूत करने और गरीबी दूर करने के लिए तरह-तरह के मन्त्रव्य रखते हैं, कानून पास करते हैं और देश की बदहाली पर जी खोल कर रोते हैं । फिर भी वे इस काली छाया अर्थात् देश की खस्ता-हाली को बरकरार रखते हैं, क्योंकि यदि एक बार इस काली छाया का हल निकाल लिया गया तो उन्हें राजनीति के लिए अन्य लुभावने मुद्दे की तलाश में दर-दर भटकना पड़ेगा । इसलिए वे इस लम्बी छाया को जीवित रखते हैं जिस से समय-समय पर उसका फायदा उठाया जा सके । देश पर दिनोंदिन बढ़ते जाने वाला कर्ज-बोझ और भुखमरी तथा महामारी से त्रस्त गरीब जनता पर निरंतर हो रहे शोषण की विडम्बनापूर्ण स्थिति ही इन व्यक्तियों द्वारा छुप-छुप कर अपनी पसलियों पर काली लकीरें खींचते जाना है, क्योंकि इस आर्थिक पिछड़ेपन से परोक्ष रूप में वे भी प्रभावित होते हैं, जिसका पहले उन्हें आभास

नहीं हो पाता है ।इस प्रकार शोषण की प्रक्रिया में संलग्न रहकर वे स्वयं का भी शोषण करते रहते हैं ।

आजादी के इतने वर्ष बीत जाने के बाद भी देश की हालत वही है जो प्रारम्भिक दिनों में थी, जबकि जनता को इससे बेहतर स्थिति का ख्वाब था, जो पूर्ण होता नहीं दिखाई देता है । यही नेताओं द्वारा इन वर्षों को बड़ी जतन से बचा कर रखना है --

"वे सभी एक लम्बी छाया का पीछा कर रहे थे । उन्हें कई वर्ष हो गये थे । उन्होंने उन वर्षों को बड़े जतन से संचित कर रखा था । सब की नजरों से छिपा कर उन्होंने अपनी पसलियों पर उतनी ही काली लकीरें खींच रखी थीं । उन काले वर्षों के साथ एक-एक करके वे अपनी पसलियों पर काली लकीरें बढ़ाते जा रहे थे ।"[18]

स्कूल के पिछवाड़े वाला एक गड्ढे का दृश्य जिसमें ढेर सारे बच्चों का कतार में बैठना, सुअरों से परेशानी और चुल्लू भर पानी निकालने की बात आज के भारतीय धरोहर के धुंधले पड़ते भविष्य की ओर संकेत है । इन गड्ढों में लड़कों को परेशान करने वाले सुअर भारतीय नेताओं के प्रतिक हैं जो तरह-तरह के नियम कानून बना कर देश की भावी पीढ़ी के साथ खिलवाड़ करते रहते हैं, परन्तु संविधान बनाने के समय जो 14 वर्ष उम्र के बच्चों को नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा व्यवस्था की बात कही गयी थी, उसका क्या हुआ ? जिसके चलते गरीबी और निर्धनता में जीने वाले आज के विद्यार्थी कल के नागरिकों का भविष्य अंधेरे गड्ढे की ओर बढ़ रहा है । यही स्कूल के पीछे गड्ढे का होना अर्थात् शिक्षा कार्यक्रमों की असफलता और व्यर्थता साबित करती है । यथा --

"वह, शायद एक स्कूल का पिछवाड़ा था । वहां एक ईंटों का भट्टा था और मिट्टी निकालने की वजह से कई बड़े-बड़े गढ्ढे बन गये थे । गढ्ढों में ढेर सारे बच्चे जगह-जगह कतार में बैठे थे । और सुअरों से परेशान हो रहे थे । सूअरें हुंकड़ती हुई उनकी नंगी टांगों के पास मंडरा रही थीं ।"[19]

बच्चों द्वारा कतार बनाकर कुएं से चुल्लू भर पानी निकालना और वह भी नेताओं के लिए, यह देश में अपर्याप्त स्कूलों की ओर संकेत करता है। जहां पर इतनी बड़ी जनसंख्या में से बहुत थोड़े से ही लोगों के लिए शिक्षा मुहैया हो पायी है, वह भी बड़े-बड़े घराने और सुविधा सम्पन्न लोगों के बच्चों के लिए ही। फिर भी सुअरों से निजात पाने की बात हिन्दुस्तानी जनता का इन नेताओं के चंगुल में फंसे रहने वाली नियति के साथ-साथ उनकी गैर जिम्मेदाराना प्रवृत्ति की ओर संकेत है --

'वे सुअरों से निजात नहीं चाहते थे।' मैंने धीरे से अपने दोस्त से कहा।
'कोई भी सुअरों से निजात नहीं चाहता।' वह फुसफुसाया।
'यहां के बाशिंदे बड़े गैर जिम्मेदार हैं।'
'वे सिर्फ अपने बच्चों की अंतड़ियां सुअरों को सूंघने देते हैं।'[20]

नेताओं की आज्ञा से सुअरों का पूंछ पकड़ना और बच्चों की आवाज का पीछा करना आज की सिद्धान्तहीन एवं अन्धानुसरण वाली राजनीति का पर्दाफाश करती है। सुअरों और बच्चों का एक साथ झोंपड़ी में घुस कर किल-बिलाना इस बात का प्रमाण है कि जनता का शोषण करने वाले ये राज-नीति बहुरूपिए उन्हीं के बीच से आते हैं और उन्हीं के बीच रहकर भी उनका निरन्तर शोषण करते रहते हैं। नेताओं द्वारा दोहरे व्यवहार का प्रदर्शन, समाज में चोरी-कालाबाजारी और ढेर सारे अनैतिक कार्यों में संलग्न रहने के बावजूद मंच पर चढ़ कर आदर्शवादिता का हौआ बांधना उनकी कृत्रिम प्रवृत्ति वाले देवत्व का पर्दाफाश है।

नेताओं का मंच से झूठे-मूठे वायदे के साथ भाषण देना और समस्या हल करने का मिथ्या दंभ भरना तथा देश की अधिकांश जनता का भुखमरी, गरीबी और जीवन की न्यूनतम सुविधाओं से वंचित रह जाना ही नर-नारियों का थर-थर कांपना है। परिणामस्वरूप इन थर-थर कांपते लोगों के द्वारा देखा सदृश्य

नेता को मंच से घसीट कर बूढ़ों से सर कुचलवाना, लेखक की अपनी मान्यता है। क्योंकि इसके माध्यम से लेखक एक प्रकार के शोषण के विरुद्ध उठ खड़े होने वाली क्रान्ति का आह्वान करता है और भविष्य को भी यह संकेत देता है कि भारतीय लोकतंत्र में यह भेड़िया-धसान की प्रवृत्ति अधिक दिन चलने वाली नहीं है, एक दिन जनता अपने अधिकारों के प्रति सक्रिय होगी तो इन दुरंगे नेताओं को अपना हथियार डालना होगा अन्यथा उनका भी यही हश्र होगा जो मंच पर देवता का हुआ -

> 'बाहर मैदान में एक बड़ा सा मंच बना हुआ था। उस पर बैठा कोई 'देवता' प्रवचन कर रहा था और नीचे नर-नारी थर-थर कांप रहे थे। उन्होंने आव देखा न ताव, उस 'देवता' को झपाटे के साथ मंच के नीचे घसीट लिया और बूटों से उसका सिर कुचल दिया।'[21]

नर-नारियों द्वारा आखें निकाल कर हथेलियों पर रखना उनके समर्पण के साथ-साथ इस बात का भी सबूत है कि भारतीय जनता के पास धन के नाम पर केवल दो आँखें बची हैं, जो तटस्थ भाव से स्वयं के ऊपर किए जाने वाले जुल्म और शोषण को निरन्तर देखते रहने और बदले में दो आंसू टपका देने के सिवा कुछ नहीं कर सकतीं। इन आँखों को घिनौना सम्बोधित करना भी आज के प्रजातंत्र की विडम्बनापूर्ण स्थिति के चलते, सत्ता के गलियारे में पहुंचने वाले राजनीतिज्ञों की जनता के प्रति उदासीनता और उपेक्षा भाव को रेखांकित करती है, सत्ता प्राप्ति के बाद जिनके लिए जनता एक घिनौनी वस्तु है, जिसका अब कोई उपयोग नहीं रह गया --

> 'क्या तुम इन्हें बेच नहीं सकते ?'
> 'वहां ऐसी घिनौनी आखें नहीं बिकतीं।'
> 'क्या वहां कोई अजायब घर नहीं है ?'
> 'ऐसी घिनौनी आखें अजायब घर में नहीं रखी जातीं।'
> 'तब हम अपनी पगड़ियां दे सकते हैं।'
> 'हम लोग टाई पहनते हैं।'[22]

इस प्रकार काली छाया का पीछा करने वाले ये सारे के सारे लोग इस लक्ष्यहीन छाया के पीछे-पीछे अनजाने दिशा में बढ़ रहे हैं, इन्हें यह भी नहीं पता है कि यह काली छाया किस दिशा में जायेगी । देश की इस आर्थिक बदहाली को समाप्त करने के लिए इनके पास कोई नुस्खा नहीं है । अत: अपनी कमजोरी को छिपाने की गरज से ये जनता के सामने बार-बार देश की आर्थिक कमजोरी का रोना रोते हैं । इस प्रक्रिया में उनकी सारी धोखेबाजी, मक्कारी और गैर-जिम्मेदाराना प्रवृत्ति छिप जाती है । परन्तु ज्यादा दिन तक इस तरह वे भारतीय जनता को बेवकूफ नहीं बना सकते । इसलिए बार-बार जनता के सामने इसी बात की दुहाई देते रहने से यह एक घिसा-पिटा और आम सवाल बन कर रह गया । अत: जनता भी इनकी चालबाजी समझने लगी । परिणामस्वरूप जनता के सामने इन राजनेताओं की पोल खुल जाना ही इस काली छाया द्वारा सारे पीछा करने वालों को धता बताते हुए नदी के उस पार हो जाना है ।

इस छाया का पीछा करने वालों में केवल नेता वर्ग ही नहीं हैं, बल्कि जो दो व्यक्ति पीछे-पीछे चलते जा रहे हैं, वे बुद्धिजीवी वर्ग का प्रतीक हैं जो यह जानते हुए भी उनका अनुकरण कर रहे हैं कि ढिंढोरा पीटने वाले, ढोंग रचने वाले, ये सारे के सारे भ्रष्ट नैतिक और इतिहास में कालिमा से सम्पन्न लोग हैं । जब इन सारे लोगों के हाथों से वह लम्बी काली छाया निकल गयी तो इन्होंने लोगों को बेवकूफ बनाने के लिए इसी तरह एक व्यापक और प्रभाव-शाली दूसरे मुद्दे की तलाश शुरू कर दी । परिणामस्वरूप देश के ये लुटेरे इस प्रक्रिया में एक खतरनाक मोड़ से गुजरते हैं क्योंकि इन्होंने किसी महापुरुष की शव साधना का प्रयास प्रारम्भ कर दिया । परन्तु वहां भी वे असफल रहे क्योंकि भारतीय जनता किसी महान नेता या स्वतंत्रता आन्दोलन के शहीद क्रान्तिकारियों के बलिदान को शीघ्र ही भुला देने वाली है । अन्तत: इन हत्यारों ने किसी महापुरुष का शव न मिलने की स्थिति में उनके विचारों की ही शव साधना से काम चलाने का भयानक निर्णय लिया -

आज यह कहानी वर्तमान राजनीतिक परिवेश और परिस्थितियों में अधिक प्रासंगिक है क्योंकि इसकी विषय वस्तु ने यह सिद्ध कर दिया है कि जिन लोगों को हमने काली छाया के पीछे लगने वाले झूठे लोग कहा था, जो कि सच्चे अर्थों में हत्यारे थे और महात्मा गांधी के विचारों की शव साधना करने के लिए तैयार थे, वे ही आज हमारे ऊपर राज कर रहे हैं और अपनी मक्कारी, धोखेबाजी तथा मूल्यहीनता का जश्न मना रहे हैं। ये लोग कौन थे ? इस पर लेखक ने सीधे-सीधे नाम का खुलासा तो नहीं किया परन्तु इस प्रसंग में गांधीजी के विचारों की शव साधना वाली बात आने से स्पष्ट हो जाता है कि यह सारा का सारा आक्षेप कांग्रेस पार्टी पर है। क्योंकि स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान देश की सारी जनता ने और अन्य पार्टियों ने भी भाग लिया, एवं कष्ट उठाया, कुछ ऐसे भी नेता देश में थे जिन्होंने स्वतंत्रता संघर्ष तो कांग्रेस के साथ मिलकर लड़ा परन्तु आजादी प्राप्त होते-होते असहमति के चलते अन्य पार्टियों के निर्माण-कर्ता या कार्यकर्ता बन गये। परन्तु आजादी के बलिदान को समूचा का समूचा कांग्रेस पार्टी ने ही भुनाया, जिसके चलते उसकी शाख भी दिन प्रतिदिन गिरती गयी। इस बात के लिए गांधी जी पहले ही सतर्क थे। इसलिए आजादी प्राप्त होने और देश विभाजन के तुरंत बाद उन्होंने कहा था कि कांग्रेस पार्टी को भंग किया जाय। परन्तु आजादी के मूल्य को भुनाने के लिए कमर कसे कांग्रेसी नेताओं को यह बात रास न आयी। उन्होंने गांधी जी की यह बात मानने से इन्कार कर दिया और कांग्रेस पार्टी को भंग नहीं किया। यहां तक कि स्वार्थ में अन्धे नेताओं ने गांधी जी को धमकाया कि अब आप कांग्रेस के चवन्निया मेम्बर भी नहीं रहे। अत: आप हट जाइए। इस पर गांधी जी ने कहा था कि अब ईश्वर को चाहिए कि वह मुझे उठा ले क्योंकि ये लोग मेरी बात नहीं सुन रहे हैं।

इस प्रकार कांग्रेस द्वारा गांधी जी को और उनके विचारों को ठुकराना परन्तु गांधी जी के स्वर्गवासी होते ही उनके आदर्शात्मक विचारों का प्रचार-प्रसार करके वोट की राजनीति करना ही गांधी जी के विचारों की शव साधना

है जिसे यदि गांधी जी होते तो कदापि न चलने देते । देश की इसी यथार्थ विडम्बना की ओर इशारा करते हुए डा० कृष्णदत्त पालीवाल ने भी कहानीकारों की इस प्रतिबद्धता को उभारा है --

"राजनैतिक दलों के कार्यक्रमों की लाभकारी अवसरवादिता, मक्कारी, धोखेबाजी और फार्मूलाबद्ध तैयारी में सिद्धान्तहीनता एवं सरलीकरण साफ दिखाई देने लगा था । उस पृष्ठभूमि में कहानीकारों ने अपनी चुप्पी तोड़ी और परिवेश की विविध विसंगतियों से सीधा साक्षात्कार किया ।"[24]

वास्तव में यह कहानी आजादी से मोह-भंग का कटु अनुभव है, जिसे लेखक ने फैंटेसी का रूप देते हुए घटना को बहुत दूर तक भटका दिया है, फिर भी इसके कथन और फैंटेसी का रूप व्यर्थ का वाग्जाल नहीं है, बल्कि गम्भीर अर्थवत्ता को स्पष्ट करती हुई यह कहानी अपने गन्तव्य तक जाती है । यह दूसरी बात है कि सारी कल्पनाओं के उड़ान में लेखक के साथ-साथ पाठक को पैठ बनाने में कठिनाई का अनुभव होता है जिससे ऊब कर पाठक द्वारा दुरूहता का आरोप लगाना स्वाभाविक ही है ।

कहानी का मूल प्रश्न यह है कि सन् 1947 में शासन सत्ता किसके हाथ में आयी ? यह प्रश्न आज भी बेचैन कर रहा है । बाहरी तौर से देखने पर कांग्रेस सत्तारूढ़ हुई परन्तु सच्चे अर्थों में परोक्ष रूप से पूंजीपति वर्ग के हाथों में सत्ता आई । प्रमुख रूप से इस वर्ग ने सामंती और साम्राज्यवादी शक्तियों से गठन-बंधन किया । शोषक वर्ग की इसी त्रयी ने देश में आर्थिक संकट का विस्तार किया । देश की गरीब मजदूर जनता और अधिक गरीबी, भुखमरी और बेरोजगारी की आग में पड़ गयी । परिणामस्वरूप प्रजातंत्र पूंजीपतियों की सुविधाओं और नेताओं की घपलेबाजी का ही नाम हो गया । प्रजातंत्र के नाम पर जो कुछ हुआ और जो कुछ हो रहा है, उससे देश के नेताओं के मन्सूबे आज भी जाहिर हैं । अपनी समस्त नारेबाजी के बावजूद प्रजातंत्र सारे भारत के लिए एक सा भूमि-सुधार कानून न बना सका, जनता को दो वक्त की रोटी और तन ढकने को वस्त्र न

मुहैया करा सका । धनिक किसान और सूदखोर महाजन पनपते रहे, छोटे-छोटे खेतिहर की हालत बद से बदतर होती जा रही है ।

आज का परिवेश जिसमें 'आम आदमी' दम तोड़ रहा है, इसमें मानवीय मूल्यों की कबरें बन गयी हैं । आलम यह है कि आम आदमी को सामंती और पूंजीवादी शक्तियां कुचल दे रही हैं और तथाकथित प्रजातंत्र के रक्षक नेतावर्ग और पार्टियां केवल तमाशा देख रही हैं । देश की जनता को दिग्भ्रान्त करने के लिए खोखले नारों और महात्मा गांधी के विचारों का हौआ खड़ा किया जा रहा है । जिन्होंने आजादी को एक मूल्य बोध होने का, एक नैतिक प्रश्न होने का ढोंग रचा, ढिंढोरा पीटा, जो समस्याओं का हौआ खड़ा करते रहे और और जिसकी आड़ में अपनी नाकामयाबी पर धूल झोंकते रहे, वे ही जनता के सबसे बड़े शत्रु हैं । इस तरह वे एक प्रकार की आत्म विस्मृति में जी रहे हैं और गांधी, नेहरू तथा अन्य महान नेताओं के नाम पर एक काला इतिहास रच रहे हैं जो अंतः हमारी जनता के लिए बहुत महंगा पड़ेगा । इस प्रकार यह कहानी आजादी को झूठा मानते हुए उसके कर्णधारों के क्रूर मन्सूबे के खिलाफ लिखी गयी एक फैंटेसी है ।

'स्वर्गवासी'

यह कहानी दूधनाथ सिंह की कहानी कला का एक अलग रूप प्रस्तुत करती है। यद्यपि इसमें भी अन्य कहानियों की तरह अलगाव बोध, अजनबीपन और निराश मनःस्थिति की ही बयानबाजी है परन्तु जहां अन्य कहानियों के पात्र इस स्थिति में पड़ने पर भयानक पीड़ाबोध और टूटन की अनुभूति करते हैं, वहीं इसका पात्र सारी विपरीत परिस्थितियों को अपनी नियति मानकर उसी में आनन्द उठाता है । वह रोता नहीं, अपनी बेबसी पर किसी के सामने गिड़गिड़ाता नहीं, बल्कि ठहाके लगाकर हंसता है । सब कुछ को सहता हुआ फाकेमस्त ज़िंदगी का लुत्फ उठाता है । यह नहीं कि उसे अपनी इस उपेक्षा और जिल्लत भरी ज़िंदगी का एहसास नहीं है, या अपने परिवार वालों का ख्याल नहीं आता, बल्कि

सभी को साधु भाव से स्वीकार करता हुआ वह अपना एक अलग रास्ता तय करता है।

कहानी प्रतीकात्मक शैली में लिखी गयी, एक ऐसे व्यक्ति की अटपटी जीवन शैली का बयान है, जो अपने को निरन्तर खाता हुआ भी जीवित रहता है, वह जीवित ही नहीं रहता, बल्कि बड़े शान से अपनी जिल्लत भरी और कुत्ता घसीट ज़िंदगी का लुत्फ़ उठाता है। यद्यपि इसका पात्र 'कृष्णलाल' जिन परिस्थितियों में उपेक्षित और दुत्कार भरा जीवन जीने के लिए स्वेच्छा से तैयार है, वह पूरा का पूरा नरक से कम नहीं है, फिर भी वह काहिल और बेशर्मी की हद तक गिर कर जिस ढंग से अपने को उन परिस्थितियों में फिट करता है, उसी में स्वर्ग की अनुभूति करता हुआ अंत में मक्खियों के हवाले हो जाता है --

'फिर खर्राटों का अंतरा ... फिर सम ... फिर अंतरा ... फिर सम। मोजैक की फर्श कितनी सख्त है! वह करवट बदलता है। बांह के तकिए पर से उसका सिर एक ओर लुढ़क जाता है। होठों के कोनों से राल पिघलती हुई, मुटल्ले - से गाल पर एक ओर सरक रही है .... । फर्श पर वहीं .... होठों के कोने के पास .... दो-चार मक्खियां भिनभिना रही हैं।...'[25]

यह कहानी निम्नमध्यवर्गीय एक बेकार आदमी की वहशत भरी ज़िंदगी का चित्र प्रस्तुत करती है। यह व्यक्ति शुरू से ही ऐसा नहीं था। परन्तु परिस्थितियों ने उसे ऐसा बनने को मजबूर किया। पटवारी की नौकरी से भ्रष्टाचार के आरोप में निकाले जाने के कारण नौकरी बहाल करवाने की गरज़ से वह अपने जीजा के घर आता है। पहले उसे जिस माहौल से नफरत थी, उसी में अब वह अपनी संभावना तलाश करता हुआ दिन बिताने लगता है और एक स्थिति वह भी आती है जब वह उससे भी अधिक निकृष्ट स्थिति में पहुंच जाता है। वह स्थितियों से समझौता करते-करते इतना बेशर्म हो गया है कि हाथ पर हाथ धरे बैठे रहना और अपमानजनक माहौल में भी जीजा के घर रोटी तोड़ते रहना

उसकी नियति बन चुका है । इस प्रकार इस नरक में भी स्वर्ग के सुख का अनुभव करते हुए आत्म कुण्ठा और बेचैनी से गुजरने के कारण अस्थिर चित्त और विकृत मानसिकता वाला बन जाता है ।

कहानी मनोवैज्ञानिक धरातल पर भी फैलती नजर आती है जिसमें कहानी-कार ने विपरीत परिस्थितियों में पिसते रहने के परिणामस्वरूप पात्र की मन:-प्रकृति के अनुसार निरन्तर बदलने वाली मानसिकता को उभारा है । इसमें नष्ट होते हुए व्यक्ति की मानसिक बुनावट को उन्हीं परिस्थितियों में खोलने का प्रयास किया गया है जिसमें वह जीता है, अनुभव करता है और वहशत भरी हरकतें करता है । हर वास्तविकता को पात्र की मन:स्थिति के माध्यम से प्रस्तुत करने और विश्लेषित करने का लेखकीय प्रयास दिखाई पड़ता है, जिसके चलते कहानी में अनुभूतियों की सघन बुनावट आ गयी है । परिणामस्वरूप कहानी किसी एक केन्द्रीय पात्र के इर्द-गिर्द घूमती हुई लेखक के साथ-साथ पाठक को पात्र के विशिष्ट मानसिक जगत का साक्षात्कार कराती है और उसके सारे व्यक्तित्व को प्याज के छिलकों की तरह उधेड़ कर अलग-अलग कर देती है । वहां ऐसा कुछ भी नहीं रह जाता जो पाठक को अबूझ लगे या जिसे वह समझ न सके । इस प्रकार पात्र को अधोगति और कुण्ठा में जीता हुआ देख कर पाठक सहम सा जाता है जिससे एक प्रकार का संत्रास उत्पन्न होता है जो उसे दूर तक प्रभावित करती है --

'फिर एक भूत की तरह वह पिघले तारकोल वाली सड़कों, मकानों की छतों, लू में हरहराते पेड़ों या नाबदानों के पास लेटे, हांफते कुत्तों को घूरता रहता । फिर वह एक जगह से उखड़ कर जगह-जगह, यहां-वहां , गड़ जाता... अचल हो जाता । उसकी आंखें स्थिर हो जातीं और बाहर को निकल पड़तीं ।'[26]

पात्र के अंतस्थल में चलने वाली यह हलचल बहुत ही असामान्य है क्योंकि इसकी उत्पत्ति भी असामान्य परिस्थितियों में ही होती है । दरिद्रता, अशिक्षा जैसी स्थितियां किसी संवेदनशील व्यक्ति के लिए सामान्य नहीं कही

जा सकतीं हैं । यदि ऐसी स्थिति में कोई व्यक्ति पड़ा रहता है और लाख चीखने चिल्लाने एवं छटपटाने के बावजूद भी इसका कोई हल नहीं निकलता है तो वह व्यक्ति भीतर ही भीतर टूट जाता है । वह खुद को परिस्थितियों के हवाले छोड़ कर भाग्य के सहारे जीने की कोशिश करता है । परिणामस्वरूप उसे नारकीय माहौल में भी स्वर्ग की अनुभूति होती है । उसे छोटा सा छोटा काम भी बहुत भारी लगने लगता है । वह पहले से ही ऐसी आशंका पालने लगता है कि यदि ऐसा होगा तो क्या होगा ? और इसी उधेड़बुन में अपना कीमती समय व्यर्थ में गंवाता रहता है, जबकि उसके वश का कुछ भी नहीं होता है बिना उल्टे सीधे विचारों के चपेट में चक्कर काटने के --

'..... अगर पिता जी मर गये । वह दीवार की चमकती धुंद में अपनी आखें गड़ा लेता .... अगर मर गये ? कैसे वह हरे-हरे बांस कटवा कर टिक्ती बनवायेगा ? कितनी जल्दी करनी पड़ेगी ? कौन-कौन लोग कंधा देंगे ? उसे लग्गी लेनी पड़ेगी । बारह दिन तक लगातार ज़मीन पर सोना पड़ेगा और खोपरे में खाना पड़ेगा ।'[27]

दूधनाथ सिंह विकृति और विसंगतियों को यथासंभव जीवन्त रूप में उभारने की अत्यधिक क्षमता रखते हैं । इसीलिए उनकी कहानियों में आने वाले पात्रों के व्यक्तित्व की सारी की सारी असभ्यता, मूर्खता और भौड़ापन सूक्ष्म रूप से उभर कर सामने आ जाता है । कहानी का 'कृष्ण लाल' केवल परिस्थितिवश ही ऐसा ऊल-जुलूल व्यवहार नहीं करता बल्कि वह दिमागी रूप से भी पहले से ही सनकी और विकृति मानसिकता वाला है । उसे तो उसे अपनी छोटी-छोटी भांजियों के साथ ऐसे भद्दे और मूर्खतापूर्ण खिलवाड़ में मजा आता है --

'छोटी भांजी को इशारे से पास बुलाकर उसने उंगली और अंगूठे से उसके गालों को इतने जोर से दबाया कि उसका मुंह चिड़िया की चोंच की तरह खुल गया । मुंह खुलते ही पान की भरी पीक पूरी की पूरी उसने भानजी के मुंह में उलट दी ... ।'[28]

अब प्रश्न उठता है कि कहानी के पात्र की इस प्रकार अधोगति का क्या कारण है ? क्या यह उसके द्वारा स्वयं निर्मित की हुई परिस्थितियां हैं या ऊपर से थोपी गयी ? कहानी के अनुसार यही लगता है कि इन परिस्थितियों के लिए वह स्वयं जिम्मेदार है क्योंकि यह पात्र, समकालीन पतन, अचेतनता और मूर्खता से ग्रस्त है । उसने जीवन में किसी प्रकार की जिम्मेदारी नहीं निभाई । बचपन से आज तक पिता की कमाई खाता रहा और अब नौकरी से निकाले जाने पर सारी बेशर्मी और उपेक्षा के बावजूद जीजा जी की कमाई पर आश्रित हो गया । अपनी हरकतों के कारण ही रिश्वतखोरी के चक्कर में पटवारी की नौकरी से हाथ धो बैठता है । जीजा के घर रहने पर भी वह घर वालों से ताल-मेल बैठाने के बजाय उनकी कमियों को ढूंढता फिरता है । इस प्रकार यदि देखा जाय तो यह पात्र इस बेशर्मी और आवारागर्दी के सिवा दुनिया से कुछ अर्जित ही नहीं कर सका ; जैसा कि कहानीकार का कथन है --

'संकरी, भंभाती गलियों में लू और धूप से बचता हुआ, एक लावारिस शहरी सांड की तरह, वह कूड़े के ढेर सूंघता हुआ, इधर-उधर भटकता रहता । किसी पान की दुकान से सुपारी की दो-तीन मुफ्त की डालियां, या एक आने की मूंगफली, या मीठे सेब, या काबुली चने चुगता हुआ अनिद्रा, भय, संताप और भ्रष्टाचार की इस दुनिया से वह मुक्त रहा ।'[29]

यही वह दंश है, जिससे दूधनाथ सिंह के पात्र एक तरह की दहशत पाल लेते हैं और प्रयास करते रहने के बावजूद भी वे वापस नहीं लौट पाते । इसी परिस्थतीय विवशता और अनजाने भटकाव में ही उन्हें स्वर्ग महसूस होने लगता है और महसूस करता है कि जैसे ऐसा करके वह सारी दुनिया से बदला ले रहा है । अपने में स्वयं असामान्य हो जाना तो मनोवैज्ञानिक तथ्य है, साथ ही बीच-बीच में अपने आसपास के घुटन भरे माहौल को देख कर पात्र का दु:खी होना भी स्वाभाविक है । परन्तु कहानीकार इसके लिए अधिक सजग दिखाई पड़ता है । वह पात्र के भीतर आत्म दया और भावुकता उभरने नहीं देना चाहता है । अत: जैसे ही पात्र इस ओर बहकने की कोशिश करता है, लेखक उसे तुरंत दबोच लेता

है । फिर उसी अधोगति में बहकने के लिए रास्ता साफ कर देता है । यथा --

> ' ... लेकिन पिता का ख्याल आते ही उसे अपने भीतर एक अपराध भाव महसूस होने लगा । `अब यही तो परेशानी है ` - वह शिकायत के लहजे में बुदबुदाया । पिता के बुढ़ापे और असहायता पर उसे चिढ़ आने लगी । ... फिर उसे पत्नी का खयाल आया । ज्यादा बच्चे होने की वजह से उसके दांत फैल गये थे और बाहर निकल आये थे । '[30]

दूधनाथ सिंह इस कहानी में मनस्तत्व के सहारे तत्कालीन वास्तविकता को एक नरक के रूप में प्रदर्शित करते हैं । यह भी संभव है कि कहानीकार द्वारा चित्रित पात्र की यह असामान्यता कुछ पाठकों को आरोपित और रोमाण्टिक लगे । लेकिन कहानीकार भी इस क्षेत्र में माहिर है ; यही वह लेखक द्वारा जांची परखी प्रविधि है जिसके माध्यम से वह मानव दशा के सत्य को बड़ी सफलता से एक संत्रास और हारर में बदल देता है । परन्तु यहां एक बात उल्लेखनीय है कि इस प्रकार मानसिक धरातल पर लिखी गयी कहानियों में घटना और चरित-चित्रण की शैली का परित्याग करना लेखकीय कौशल का प्रमाण है । इसमें सारी घटनाएं अन्त:पटल यानी मन के भीतर ही भीतर घटित होने वाली विशेष स्थिति में फंसे पात्र की आंतरिक बुनावट पर आधारित होती हैं जिसका ये धीरे-धीरे खुलासा करती चलती हैं और अंत में पाठकों को चरम सीमा तक उत्सुक करके समाप्ति की घोषणा कर देती है ।

कहानी में पात्र के मानसिक बुनावट के माध्यम से कुछ अन्य छोटे-छोटे सामाजिक सवालों से भी लेखक टकराता है । आज शहरी जीवन के निम्नमध्यवर्गीय माहौल में पिता किस प्रकार अपनी बेटियों की स्वतंत्रता के नाम पर उनके पतन का भागीदार बन जाते हैं, इसको यह कहानी बखूबी उभारती है । पिता द्वारा घर आने वाले हर नये व्यक्ति के सामने अपनी लड़कियों के नाचने-गाने का बखान करना और आग्रहपूर्वक बेटी को नचाना आज की मध्यवर्गीय ओछी मानसिकता और माहौल दोनों का खुलासा करती है । बेटियों द्वारा बाहरी लड़कों से अनैतिक

सम्बन्ध रखना और घर में बैठ कर सुल्लम-सुल्ला बातें करना इस विद्रूपता को और भी गहराई से उजागर करती है। स्वर्गवासी अपनी भानजी के पतन का साक्षी भी बनता है, लेकिन कुछ कर सकने में असमर्थ रहता है, जो यह सिद्ध करता है कि अकेला व्यक्ति चाह कर भी इन विकृतियों का हल नहीं ढूंढ़ पाता है।

कहानी मुख्य रूप से चेतना प्रवाह शैली का अनुसरण करती चलती है क्योंकि सारी घटनाओं का केन्द्रबिन्दु पात्र का मन:पटल है। अत: किसी अन्य शैली के लिए इतनी सफलता की गुंजाइश नहीं दीखती, इस प्रकार पात्र के आंतरिक हलचल को उभारने में इस शैली के माध्यम से दूधनाथ सिंह ने अच्छी कुशलता दिखाई। उदाहरणस्वरूप पात्र की अमन स्थिति और बेचैनी को बढ़ाने वाला यह मनमोहक अतीत आज भी कहीं न कहीं उसके मस्तिष्क के कोने में जीवित है। यथा --

"तब वह छोटा था। कितना सुख था तब। कितनी सारी चीजें मुफ्त में मिल जाती थीं। ... वह पिता के साथ-साथ पड़ताल पर जाता। गन्ने का रस, हरे चने, दही चिवड़ा, दूध मलाई, आम - ठेलमठेल। एक बार तो के-दस्त आने से वह मरते-मरते बचा था। ... और बुआ के यहां के पुए। दांतों से काटो तो घी चूने लगता।"[31]

भाषा में कस्बाई शब्दों का आवश्यकतानुसार प्रयोग मिलता है। जो पात्रगत तत्कालीन स्थिति को प्रभावकारी लहजे में प्रस्तुत करते हैं; फिर भी भाषा का टोन पात्र की मानसिक स्थिति के अनुसार बनता-बिगड़ता रहता है। यथा --

"जैसे किसी ने भोथरी छुरी से अचानक उसका गला रेतना शुरू कर दिया हो ... गली में घुसते ही उसने जो कुछ देखा, उससे हतप्रभ रह गया। उसकी टांगों में एक झुरझुरी सी रेंगती हुई ऊपर चढ़ने लगी। ... वैसे इसका आभास उसे कई दिनों से था।"[32]

`आइसवर्ग`

`आइसवर्ग` दूधनाथ सिंह की ऐसी कहानी है जो आधुनिक मध्यवर्गीय परिवार के हर व्यक्ति को भीतर तक छूती है। यह आज के सम्बन्धों के बिखराव को अंतिम बिन्दु तक रेखांकित करती हुई इसके लिए न केवल किसी एक व्यक्ति को जिम्मेदार ठहराती है, बल्कि पूरे परिवार, यहां तक कि इस आधुनिक जीवन-शैली और पैसे के लिए मची आपाधापी को भी अपनी गिरफ्त में लेती है। कहानी का मुख्य बिन्दु पारिवारिक सम्बन्धों में आने वाले ठहराव और ठण्डेपन के कारणों की जांच पड़ताल करना है ; जिससे सामाजिक बदलाव का एक और नग्न रूप उभर कर सामने आ सके और साथ ही साथ इस पीड़ा से गुजरने वाले व्यक्ति की चीख पुकार का बेबाक ढंग से पाठकों को अनुभव हो सके। इस प्रक्रिया में लेखक एक हद तक सफल रहा, क्योंकि इस पारिवारिक बिखराव को मानसिक बिखराव के साथ जोड़ते हुए और अधिक गम्भीर बनाने में उसकी अहम् भूमिका रही है। यथा --

`उसे लगा कि सभी अपने आने का अहसान जता रहे हैं और असुविधा महसूस कर रहे हैं। यह विचार मन में आते ही उसके दिल को अंदर-ही-अंदर कहीं बहुत गहरी ठेस सी लगी। क्या सच में अब वह सब कुछ लौट नहीं सकता ? क्या सच में उसने अपराध किया है ? क्या मात्र उसका `अकेलापन` ही उसका अपना है ?`[33]

कहानी आज के समाज में विघटित मूल्यों और पारिवारिक सदस्यों के मध्य ठण्डे पड़ते सम्बन्धों की कहानी है। इसमें आइसवर्ग पारिवारिक सदस्यों के मध्य एक दूसरे के प्रति व्यवहार में बढ़ने वाली उदासीनता का प्रतीक है। कहानी का `विनय` अपने जीवन में फैली अजनबियत और वीरानगी को दूर करने के लिए या यूं कहें, अपने एकांत जिंदगी से ऊब कर अपने बड़े भाइयों, दीदी और उनके बच्चों आदि को बुलाता है, परन्तु स्वयं परिवार वालों के व्यवहार में उसे जो रूखापन दिखाई पड़ा, उससे उसका अवसाद और अधिक बढ़ गया, ठीक आइसवर्ग की तरह। यथा --

`ऊपर से नीचे तक उसका सारा बदन सुन्न पड़ गया। गाड़ी हल्के-

हल्के सरक रही थी । बहन ने खिड़की पर से उसका हाथ परे ठेल दिया । वह उसे देखती हुई रोती जा रही थी और वह अपनी जगह पर खड़ा उसे देख रहा था । ... फिर जैसे वह होश में आया कि बहन को विदा देनी चाहिए ।'[34]

आज सामाजिक विघटन से कहीं अधिक पारिवारिक विघटन हुआ है । यह आधुनिक कहानीकार की एक बड़ी समस्या है । परिवार के भाव संवलित सम्बन्ध आर्थिक दबाव के कारण आज दिन पर दिन टूटते जा रहे हैं । फिर भी परिवार के व्यक्तियों की दूषित मानसिकता का भी उतना ही हाथ है, जितना अर्थ का । परिवार और पारिवारिक सम्बन्धों के प्रति एक मोह आज भी मूल रूप से विद्यमान है । उस मोह को कोई पोषण न मिलता देख कहानीकार क्षुब्ध होता है, जिससे एक जटिल कुण्ठा की पृष्ठभूमि तैयार होती है जो पारिवारिक सम्बन्धों के टूटने के त्रास को रूपायित करने वाली कहानियों में स्पष्ट झलकती है जिसका एक उदाहरण 'आइसबर्ग' है । सम्बन्धों का यह ठण्डापन परिवार के व्यक्तियों के स्टेशन पर पहुंचते ही दिखाई पड़ जाता है । जहां भाइयों के इतने दिनों बाद मिलने पर एक दूसरे से लिपट जाना था और जी खोल कर स्वागत करना था, वहां सिर्फ एक कृत्रिम मुस्कुराहट और बदले में चुप्पी का माहौल इस बेगानेपन को और गम्भीर बना देती है । यथा --

'बच्चे सभी नींद की खुमारी में थे । उसने एक बार उनकी तरफ देखा और मुस्कराया । फिर कोई कुछ नहीं बोला । वह एक रिक्शा अलग तय करके बैठ गया और उसे आगे-आगे चलने को कह दिया ।'[35]

इसी प्रकार घर पहुंचने पर प्यार भरी बातें और उल्लास के स्थान पर खाने की फरमाइश और खाने में देर देखते हुए सभी का होटल में खा लेना परिवार के बीच की आत्मीयता को एक गहरी ठेस है । 'विनय' ने शायद कुछ स्नेह और कुछ निर्णय पाने के लिए सब को बुलाया था, परन्तु बदले में 'जगत' का गुस्सा हो कर जाना, सांत्वना की जगह उल्टे डांट खाना, 'सुबोध' का भी चुपके से प्रोग्राम बना देना और 'बेबी' से कहलवा भर देना । साथ ही भोजन

के एवज में 125 रुपए का चेक पकड़ा देना और अंत में 'बेबी' का भी जल्दी ही चले जाना आदि घटनाएं उसके अवसाद को घटाने के स्थानपर बढ़ा देती हैं।

कहानी इस पूरे पारिवारिक बिखराव के मध्य आशा की रेखा जो अभी बहन के रूप में बची हुई है, को उभारती है। बहन के दिल में अभी भाई के प्रति कहीं-न-कहीं जगह बाकी है। इसका प्रमाण आइसवर्ग की 'बेबी' है परन्तु इस एक से परिवार के रिश्तों का क्या बनता बिगड़ता है। वह भी अपने इस परिवार को इकट्ठा रखने में कोई महत्वपूर्ण भूमिका नहीं अदा कर सकती है क्योंकि उसकी अपनी सीमाएं हैं। उसका स्थान तो उसके ससुराल में निश्चित है। अत: वह चाह कर भी इस बिखराव को रोकने में असमर्थ है। भाई के इस प्रकार अजनबियत की स्थिति को देख कर बहन की यह प्रतिक्रिया सम्बन्धों के बीच आज भी बची हुई आत्मीयता को उभारती है --

'सो तो है ही।' कहकर वह हंसने लगता है और फिर क्षण-भर बाद उसी तरह अपने में ही रहता। बहन को रुलाई आने लगती और वह होठ काटती दूसरी ओर देखने लगती।'[36]

कहानी आज के पारिवारिक बिखराव को ही नहीं उभारती, बल्कि व्यक्ति के अपने आंतरिक बिखराव की भी भयानकता को उभारती है। व्यक्ति का यह आंतरिक टूटन उसके सम्बन्धों में आने वाली गहरे दरारों का परिणाम है; जिसमें घुटता-घुटता व्यक्ति उस अजनबियत की स्थिति में पहुंच गया है कि उसे उसके अपने ही छोड़ कर बहुत दूर निकल गये हैं। वास्तव में गलती केवल परिवार वालों की ही नहीं है, बल्कि स्वयं अजनबियत में जीने वाले उस व्यक्ति की अपनी कमजोरी और हरकतों की भी है जिनके चलते स्वयं को उसने अन्य सदस्यों से गम्भीर रूप से काट लिया। यही वह 'विनय' है जिसने हर तरह से अपने को अकेला छोड़ दिया था। अत: यह दया का पात्र कदापि नहीं हो सकता। इसी ने पहले उपेक्षा द्वारा औरों को आहत किया था। वह दोनों भाइयों में से किसी के भी विवाह में नहीं पहुंचा था। बदले में तार भेजा था जिसे दादा ने

गुस्से में फाड़ डाला और बहन ने भी उसे पत्र में लिखा कि 'तुम इतना परायापन क्यूं दिखलाते हो ।'

परन्तु आज स्थितियां बदल चुकी हैं । 'विनय' अपने इस एकरस जीवन से ऊब ही नहीं, बल्कि त्रस्त हो गया है । उसके अतीत की गलतियां उसे कुरेदती हैं और वह बार-बार बेचैनी में चीखता-चिल्लाता है । 'बेबी' के पास पत्र में वह लिखता है कि --

' 'बेबी' मैं चाहता हूं कि मुझे भी लगे कि मैं आदमियों के बीच में हूं । मेरे भी चारों तरफ लोग हैं । जो मुझे पहचानते हैं ; और भी किन्हीं से सम्बन्धित हूं । मैं तुम सब के बीच में अपने को महसूस करना चाहता हूं । बेबी, मुझे बार-बार लगता है कि जीवन मेरी मुट्ठियों से पानी की तरह फिसल गया है ।'[37]

आज 'विनय' अपने सम्बन्धों को सुधारना चाहता है । वह परिवार के अन्य सदस्यों में उस आत्मीयता को ढूंढने की कोशिश करता है, जिसे स्वयं उसने दस साल पहले ही तिलांजलि दे दी थी । इस आत्मीयता को पाने के प्रयास में उसकी स्वयं अपनी आत्मीयता नहीं रह जाती है ; वह असफल ही नहीं होता, बल्कि बुरी तरह से टूट जाता है । परिवार के सदस्यों का इकट्ठा करने का उसका यह प्रयास मूर्खतापूर्ण साबित होता है, क्योंकि जहां कुछ भी एक जैसा न हो, वहां परिवार के सदस्यों के बीच निकटता की आशा व्यर्थ है । परिवार के सारे सदस्य एक-एक करके चले जाते हैं । रह जाती है सिर्फ हल्की-हल्की एक पीड़ा, गम्भीर अवसाद और कुछ न कर पाने की छटपटाहट, जो 'विनय' को कुरेदती अवश्य है ; परन्तु परिचित कराती है एक सचाई से, एक नंगे मोह से --

'कितना इंतजार था । किस तरह उमंग की एक लहर आयी थी और अब जैसे उस लहर के पीछे आने वाली सारी लहरें कहीं फिर शांत हो गयी थीं । कितनी कल्पनाएं संजो रखी थीं उसने । उन सब के आने की । किसे प्रोग्राम मन-ही-मन बना रखे थे - - - - - - क्या यह सच है कि अकेला आदमी हमेशा अतिरिक्त आशा या अतिरिक्त निराशा से काम करता है ?'[38]

परिवार के सदस्यों के इस पुनर्मिलन का भयानक अंत होता है। `विनय` की अपने भाइयों से लगभग कोई बातचीत नहीं हो पाती ; यद्यपि बहन से थोड़ा बहुत होती भी है तो वह भी मात्र औपचारिकता के रूप में, क्योंकि बहन तो आत्मीयता दिखाती है परन्तु विनय भाइयों के दुर्व्यवहार से क्षुब्ध कुछ खीझ और कुछ पश्चाताप के मूड में रहता है। परिवार के सदस्यों द्वारा इस प्रकार से उपेक्षित और अकेला छोड़ देने की स्थिति में उसे सम्बन्धों का आखिरी सूत्र दस साल से अलग रहने वाली पत्नी के हाथ में दिखाई पड़ता है परन्तु वह भी अंतिम समय में छूट जाता है क्योंकि `बेबी` ने गाड़ी चलाने के पहले जाते-जाते यह संदेश दिया कि उसकी पत्नी ने आत्महत्या कर ली। इस प्रकार वह कभी न उबरने वाली अजनबियत और वीरानेपन का शिकार हो जाता है जिसे वह स्वयं महसूस करता है और `बेबी` को पत्र में लिखता है कि --

` `बेबी` यह अकारण नहीं है कि इस तरह के जीवन से मैं सदा के लिए विदा ले रहा हूं। इस सम्बन्ध में थोड़ी भी बहस बेकार है। यही समझ लो कि यदि हमारे भीतर आत्मा जैसी कोई वस्तु है (शरीर की तो बात ही क्या) और यदि हमारे सम्बन्ध या हमारे अनाचार उस आत्मा पर भी खरोंच लगा सकते हैं ; तो मेरी उस आत्मा में भी घाव हो गया है।`[39]

कहानी का यह अलगाव केवल समझदार और गम्भीर रूप से अपने प्रति चिंतित परिवार के बड़े सदस्यों के ही मध्य नहीं उभरा बल्कि भविष्य से निश्चिंत और सांसारिक विकृतियों से बेखबर रहने वाले बच्चों के बीच भी चलता है, जो उस पारिवारिक बिखराव के माहौल को और अधिक गम्भीर एवं तनावपूर्ण बना देता है। परिवार में आने वाले इन सारे बच्चों में साथ-साथ खेलने की कोई रुचि नहीं। वे अलग-अलग गुट बनाकर खेलते हैं जिसका परिणाम अन्ततः झगड़ा होता है। इन बच्चों के दिल में किसी प्रकार अन्य सदस्यों के प्रति अपनापन नहीं जो आज की शहरी मानसिकता का परिचायक है। `विनय` जैसे ही बच्चों के साथ मनोविनोद करने की कोशिश करता है, वे सहम कर अंदर भाग जाते हैं। उन्हें उसके डाकू होने की संभावना प्रतीत होती है।

समाज में फैली मूल्यहीनता की स्थिति को हल्के से छूने का प्रयास भी कहानी में दिखाई पड़ता है जिसके चलते दो पीढ़ियों के मध्य वैचारिकता की खाई अधिक गहरी होती चली जाती है। कहानी का 'जगत' जो कि विनय से छोटा है, उसका इस हद तक गिर जाना कि शराब के नशे में 'विनय' को उल्टा-सीधा बक देता है। यहां तक कि वह अपने दादा को भी नहीं छोड़ता -

'तुम झूठे हो,' उसने मेज पर जोर से मुक्का मारा। तुमने अपने दादा जी से क्या सीखा ? उनके कितने नाज़ायज़ बच्चे हुए जवानी में ? - - - तुम्हें पता है ?' वह उठकर खड़ा हो गया, 'आज आराम से पेंशन उड़ा रहे हैं और हुक्का गुड़गुड़ा रहे हैं। और साले हमें उपदेश देते हैं।'[40]

शराब का यह दृश्य पूरे कलहपूर्ण पारिवारिक वातावरण को जीवंत कर देता है। यद्यपि देखने पर यह कुछ ज्यादा ही उग्र रूप ले लेता है परन्तु इसके माध्यम से पारिवारिक बिखराव अपने चरम सीमा तक दिखाई पड़ता है। कहानीकार ने यहां यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि परिवार के दूसरे सदस्यों के व्यवहार में आने वाली उदासीनता और आक्रामकता की छोटी-छोटी बातों को भी लोग कुछ अतिरिक्त संवेदनशीलता से लेते हैं, परन्तु दूसरे के प्रति अपने व्यवहार की बड़ी-बड़ी गलतियों के प्रति साधु भाव रखते हैं, जो कि अन्य के लिए क्षोभ का कारण बन जाती हैं। दूसरों में अपने लिए सहानुभूति खोजना और स्वयं अपने में दूसरों के लिए सहानुभूति से कोसों दूर निकल जाना आज के पारिवारिक बिखराव का प्रमुख बिन्दु है। ऐसा लगता है कि कहानीकार का यह अपना निर्णय है कि जहां प्रत्येक व्यक्ति परिवार के माहौल में इस कदर अलग-थलग पड़ गया हो कि उन्हें मुख्य धारा में नहीं जोड़ा जा सकता हो तो उन्हें वापस लाने का सारा प्रयास व्यर्थ हो जाने की संभावना बढ़ जाती है। क्योंकि तब बहुत देर हो चुकी होती है और हर व्यक्ति का अपना-अपना अलग रास्ता तय हो चुका होता है जहां से वह जानबूझ कर वापस नहीं आना चाहता।

कहानी बहुत कुछ मानसिक धरातल पर ही चलते रहने के कारण इसमें परिस्थितिगत बिम्बात्मक शैली अधिक प्रभावशाली दिखाई पड़ती है। इसके

माध्यम से कहानीकार न सिर्फ अलगाव बोध या पारिवारिक सम्बन्धों के बिखराव को ही गम्भीरता प्रदान करता है, बल्कि पात्र के सारे शारीरिक और मानसिक दशा को जीवंत कर देता है। पात्र जिस मानसिक उधेड़बुन से गुजरता है, उसकी एक-एक हरकत को यह शैली उभारती हुई इस हलचल को एक आकार देती है --

'इस याद से उसके अन्दर एक अजीब-सी गर्मी का संचार होने लगता। उनके अंग-अंग फड़कने लगते और देह बरबस कुछ मांगने लगती। उसे लगता कि देह की यह मांग पूरी हो जाये तो उसके तुरंत बाद ही उसे चित्रा की इस याद से भी ग्लानि और नफ़रत हो जायेगी। लेकिन फिर उसकी याद की यह गर्माहट उसके मन में एक तूफान की तरह उठ कर उसे बेचैन कर देती - - - -।'[41]

चेतना प्रवाह शैली का रूप भी यहां बहुत कुछ मुखर दीखता है जो स्मृति बिम्बों के माध्यम से कहानी को आगे बढ़ाने में अहम् भूमिका अदा करती है। यद्यपि वर्णात्मक शैली की भी कुछ झलक यहां देखी जा सकती है, पर वह एक नए रूप में है जिस पर आसानी से किस्सागोईता के लिए उंगली नहीं उठाई जा सकती है जैसा कि प्लेटफार्म पर बारिश वाली रात्रि का यह जीवंत चित्र --

> 'सदर फाटक के ऊपर एक बहुत बड़ा ज्योतिषी और हस्तरेखाविद इन शब्दों को मुट्ठियों में जकड़े हुए कांप रहा था : 'श्री - - - सिंह। भारतवर्ष के महान हस्तरेखाविद। अपने भूत, वर्तमान और भविष्य का कच्चा चिट्ठा खुलवाइए।'[42]

भाषा का जहां तक सवाल है, वह बोलचाल की खड़ी बोली है जिसमें तत्समकता के प्रति झुकाव तो है परन्तु इतना भी नहीं कि पात्र की सहजता और भाषा की प्रभावशीलता दब जाय। अतः आवश्यकतानुसार 'चुंधी-चुंधी', 'थुल-थुल' 'घटाटोप' और 'अवकचाना' जैसे शब्दों का भी प्रयोग हुआ है जो कि दूधनाथ सिंह की अपनी विशेषता है। इसमें एक बात और उल्लेखनीय है कि अंग्रेजी शब्दों का ज्यादा प्रयोग है जो आज के शहरी मध्यवर्गीय व्यक्ति की मिक्सचर एंग्लोहिन्दी

भाषा का प्रतिनिधित्व करती है। ऐसा शायद पात्रों के हिसाब से किया गया है, जिसमें वह माहौल पूरा का पूरा जीवंत हो उठता है जिसका चित्र कहानीकार उभारना चाहता है। यथा --

> 'उसने पांचों उंगलियां खोलकर दिखाईं, 'नहीं ... पांच दर्जन पहाड़ी छोकरियों को ... फारेस्ट डिपार्टमेण्ट में यही तो आराम है ... । ' ... वट पिटी फार यू ..., यू हैव इनहेरिटेड नथिंग ... तुम .... क्या तुम दोगले नहीं हो ? वह फिर उठकर खड़ा हो गया, 'हो --हो --हो ---हजार बार हो --यू आर ए बास्टर्ड ---यू हैव इनहेरिटेड नथिंग ---आई से -----।'[43]

'प्रतिशोध'

'प्रतिशोध' कहानी भी दूधनाथ सिंह की पहचान एक शहरी निम्न-मध्यवर्गीय कहानीकार की बनाती है। कहानी प्रतीकात्मक है, यद्यपि प्रतीक पूर्ण रूप से सारी कहानी पर हावी नहीं होने पाता, परन्तु कहानी का मूल बिन्दु वही है। शीर्षक देखने पर ऐसा लगता है कि पात्र द्वारा कोई खतरनाक प्रतिशोध लिया गया होगा, पर यह प्रतिशोध आज के युग में घुट-घुट कर जीने वाले, हर तरह से लाचार बेरोजगार व्यक्ति का है, जिसमें न तो किसी प्रकार गोला-बारूद और न खून-खराबे का आतंक है। बस दबी जुबान से अपना विरोध जता देना ही इस युग में काफी है। जहां सारे लोग परिस्थितियों की मार से इन चंद अफसरशाहों के सामने जिबह होने को कतार में खड़े दीखते हैं, वहीं अकड़ कर अपने अधिकार की मांग करना एक बड़ी बात है, जिसे कहानी नायक ने कर दिखाया। परिणामस्वरूप उसे इस बात का संतोष है कि उसने अपना प्रतिशोध ले लिया। उसे लगा कि इस पराजय में वह अकेला ही नहीं, बल्कि अन्य चेहरे भी उसका साथ दे रहे हैं। यथा--

'एक अजीब सामान्य - एक विचित्र - से पराभव का अपनाया, जिसमें एक दूसरे से जुड़े हुए हैं और निश्चिंत हैं। ऐसा सोच कर उसे थोड़ी सी शान्ति महसूस हुई कि चलो, वह अपने पराभव में अकेला नहीं है। क्यू में खड़े एक आदमी की तरफ देखकर वह अनायास ही मुस्करा पड़ा, जैसे उसे पहचान रहा हो।[44]

कहानी स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उत्पन्न हुई परिस्थितियों में चलने वाले दफ्तरों की भेड़िया-धसान, कारगुजारियों पर बड़ा ही तीखा व्यंग्य है, जो दफ्तरों की धकापेल जिंदगी, कभी न खत्म होने वाली कार्यवाही, एक दूसरे के सिर मढ़ने वाली जिम्मेदारी, काम छोड़ बातूनी माहौल एवं उसके बीच बेरोजगारी को ढोते हुए पिसते रहने वाले दम्पत्ति की आत्मपीड़ा को उभारती है। कहानी का आरम्भ ही दफ्तर के खौफनाक माहौल से होता है, जिसमें कर्मचारियों का चित्र किसी हत्यारे से कम नहीं दीखता। कर्मचारियों की इस मुद्रा के चित्रण द्वारा लेखक ने प्रारम्भ में ही 'हारर' का दृश्य स्थापित कर दिया जो इस बात का संकेत है कि इन्हीं परिस्थितियों के बीच पिसने वाला युवक किस प्रकार टूट-टूट जाता है, फिर भी उसके जीने में एक प्रकार का साहस है, एक प्रतिशोध है, इस दुच्ची ज़िंदगी के खिलाफ जो उसे जीने देना नहीं चाहती। फिर भी वह जीता है अपने बूते पर और जूझता है निरन्तर इस प्रकार के मुर्दाफरोशों से जो दफ्तरों में अपना जाल बिछाए हैं। यथा --

'पर्दा हटा कर ज्यों ही कोई अन्दर दाखिल होता - वे क्षण भर को चश्मे के अन्दर से झांकते और फिर आंखें फाइलों में गड़ा लेते। जैसे उनमें भयानक हत्याकाण्डों और निरीह मौतों की खबरें लिखी हुई थीं, जिनकी वे मातमपुर्सी कर रहे थे।'[45]

कहानीकार चित्रण के ही स्तर पर नहीं, बल्कि भाषा के स्तर पर भी दफ्तरी जीवन का जीवंत और यथार्थ रूप उभारता है। दफ्तरों में इस तरह के पलने वाले गैर जिम्मेदाराना व्यवहार, व्यर्थ में समय गंवाने, और झपकी

लेते रहने का चित्र तथा इन सब के बीच इधर-उधर की ठोकरें खाने वाला एवं बाबुओं की झिड़की सुनने वाले आम आदमी की पीड़ा इस निचले तबके की नौकरशाही को नंगा कर देती है । ये दफ्तरी कर्मचारी केवल कार्य करने में ही आलसी और निकम्मे नहीं हैं, बल्कि आचार और व्यवहार में भी हद से गये-गुजरे एवं असभ्य हो गये हैं, जिसका प्रमाण इनकी भाषा है --

' ऐ ' वह चौंक गया । फिर उठ खड़ा हुआ । केवल एक शब्द 'लंच' । और घड़ी की ओर इशारा । फिर दूसरे लोगों को आवाज देने लगा, 'घोष बाबू चलिए बाहर ... । हाय रे, मर गये । सरकार साली ... उसे कितने बैलों की जरूरत है । सांडों की एक भी नहीं । सब यहां आते ही कूट दिये जाते हैं ... ।'[46]

इस प्रकार कहानीकार ने 'सत्येन्द्र' के माध्यम से दफ्तरी जीवन का जो खाका खड़ा किया, वह पूरा का पूरा अपने आप में एक सचाई है । इस सड़ी गली व्यवस्था का शिकार आज केवल 'सत्येन्द्र' और उसकी पत्नी ही नहीं है बल्कि इस दुर्व्यवस्था और नौकरशाही की तानाशाही को मूक होकर सहने वाले लाखों-लाख युवक इन विवश परिस्थितियों को अपनी नियति मानकर ढोते हैं और बदले में विद्रोह का एक भी स्वर नहीं उठता । उनका सारा का सारा विद्रोह आंतरिक ही रहता है, जो निरंतर अपने आप से एक लड़ाई लड़ते रहते हैं । इतना तो मानना ही पड़ेगा कि साठोत्तरी कहानियों में विद्रोह के स्वर को जितना उग्र और आक्रामक होना चाहिए था, उतना वह हो नहीं सका । इस का कारण तत्कालीन सामाजिक और बहुत कुछ आर्थिक दिवालियापन है । शायद व्यक्ति कुछ इतना निराश हो चुका है कि उसे आज यह महसूस होने लगा कि वह व्यवस्था को बदल नहीं सकता । इतना अवश्य है कि युवा मानस आज अपने से टकराने वाले प्रतिरोधी वर्गों को समझ गया है । उसके मन में आग भी है परन्तु इस आग को अभी ज्वालामुखी बनने में देर है । जैसा कि दफ्तर के कर्मचारियों के व्यवहार से तंग आकर 'सत्येन्द्र' फूट पड़ता है -

'बेकार तो दरअसल आप हैं। टकराते हैं दिन भर यहां - - - -' उसने वाक्य अधूरा छोड़ दिया। वह जानता था कि शान्त भाव से भी वह ऐसी बात कह देगा तो वे भुन जायेंगे।'[47] पर दूसरे ही पल उसका सारा गुस्सा डर में बदल जाता है और फिर वही पराभव उस पर हावी हो जाता है कि -

'... उसे ऐसा नहीं करना चाहिए था। अब वे कुछ नहीं होने देंगे। अब अगर वह एकदम टूट गया होता तो उसे उठाकर गांठ लगा देते और चलता कर देते। अब वे उसकी चिंदिया करके रद्दी की टोकरी में डाल देंगे या खिड़की से बाहर हवा में उड़ा देंगे।'[48]

इस प्रकार ऐसे चित्रण से आज के युवक का परिस्थितिय अन्तर्द्वन्द्व उभर आता है जो लाख उपेक्षा और अपमान का घूंट पी कर भी अपने स्वाभिमान को दबा जाता है और अपने भीतर उबलने वाले विद्रोह की आग को हमेशा के लिए बुझा देना चाहता है। इस स्थिति में साठोत्तरी कहानीकार यह सोचता है कि यदि उग्र क्रान्ति का घोस किया जाय तो वह बनावटी प्रतिबद्धता और थोथी नारेबाजी होगी। परिणामस्वरूप ऐसा वर्णन जीवन की वास्तविकता से कट जायेगा, जैसा कि दूधनाथ सिंह ने भी स्वीकार किया है --

'अगर इस यथार्थ को छोड़ कर कोई सर्वहारा क्रान्ति के बारे में सोचेगा तो वह साहित्य में ही नहीं, समाज में भी और राजनीतिक धरातल पर भी साथ ही साथ विचारधारात्मक एवं विकासात्मक स्थितियों के धरातल पर भी उतना ही झूठा साबित होगा, जितना कि साहित्य में।'[49]

कहानी में दूधनाथ सिंह के ईमान का स्तर उनकी रचना-कौशल के समक्ष प्रतीत होता है इसलिए कहानी में भी एक वास्तविकता की घुटन और दबाव को कथायुक्त करने के लिए अपेक्षित एकाग्रता और गम्भीरता महसूस होती है। कहानी मध्यवर्गीय शहरी जीवन की विसंगतियों को ढोने वाले और अपने अधिकार के प्रति सजक युवा दम्पत्ति की बेरोजगारी और बेबसी का मार्मिक चित्र है। इस शहरी मध्यवर्गीय जीवन की भयानकता के मुख्य रूप से बेरोजगारी, आवासीय

मजबूरी और भुखमरी तीन बिन्दु हैं जो अलग-अलग न होकर बेरोजगारी के मूल मुद्दे से गम्भीर रूप में जुड़े हुए हैं। वास्तव में गांव छोड़ कर शहर आनेवाला हर व्यक्ति मुख्य रूप से इन्हीं तीनों बिन्दुओं पर जूझता है।

इस बेरोजगारी का शिकार युवक और युवतियां दोनों हैं। परिणामस्वरूप बेरोजगारी और वैवाहिक जीवन के उत्तरदायित्वों के बीच एक बेरहम व्यंग्य पलता है जिसके दबाव में युवक दीन-हीन बन जाता है। अतः वह जीवन में एक ऐसे रास्ते पर बढ़ता है जिस पर अन्धेरे का दबाव बढ़ता जाता है। फिर भी वह युवक केवल इसलिए चैन की सांस लेता है कि उसके जैसे अन्य लोग भी इन्हीं परिस्थितियों से जूझ रहे हैं, उन्हें देख कर वह हार मानने को तैयार नहीं दीखता, बल्कि इस खूंखार और लिजलिजे जीवन को चुनौती के रूप में स्वीकार करता है। इसी बेरोजगारी का शिकार 'सत्येन्द्र' भी है। पत्नी की नौकरी पर परिवार का गुजारा चलता है परन्तु एक समय वह भी आ जाता है जब पत्नी की नौकरी भी काम नहीं आती और वह उसकी तनख्वाह लेने के लिए दफ्तर का चक्कर काटता फिरता है। दफ्तर का चक्कर लगाने, दफ्तर के बाबुओं की घुड़की और पत्नी की झिड़की में पिसने वाला बेरोजगार युवक अपनी बदहाली एवं विवशता पर स्वयं के होंठ चबाने के सिवा कर ही क्या सकता है। यथा --

> 'अक्सर ऐसे में उसके दिमाग में हार कर एक शब्द टकराता - आत्महत्या। लेकिन उन्हें लगता कि यह शब्द भी केवल जासूसी किताबों में आता है।'[50]

कहानी में यदि एक तरफ दफ्तर की यमदूतीय कार्यवाही में पिसने वाले व्यक्ति का असहाय कंकाल नजर आता है तो दूसरी और शहर की समस्याग्रस्त ज़िंदगी में तिल-तिल कुढ़ने और मर कर कर जीने वाली ज़िंदगी का सच्चा एहसास है। कहानीकार की तरफ से कुछ अतिरिक्त थोपा-थापी नहीं दीखती। फिर भी स्थिति को अधिकाधिक गम्भीर बनाने में उसने कोई कसर नहीं छोड़ी। मकान की तंगेहाली और उसकी विरूपता तो हमें अवश्य

ही अंदर तक दहला देती है । परन्तु यही वह सचाई है जिसका सामना आज शहर की निम्न मध्यवर्गीय जनसंख्या कर रही है । शहरी जीवन की यह विद्रूपता अपने भयावह रूप में उभरने वाली आज की परिस्थितियों में जीने वाले व्यक्ति की जिजीविषा और बदहाली की गाथा है । यथा --

'वर्षा होती तो छत पर बूंदें आतीं - जैसे छत को पसीना हो रहा हो । नीचे अपने अंधेरे, कच्चे कमरे में आधी-आधी रात तक यह सुनार अंधेरे की छाती में कीलें ठोकता । आंगन में रखे नीचे वाले किराएदारों के जूठे बर्तनों से सड़ी मछली की बू और छज्जे के कोने से पेशाब का भभका पूरे कमरे में भर जाता ।'[51]

दिन भर दफ्तर का चक्कर लगाते रहने से थककर चूर हो जाना, शाम को घर आने पर पति-पत्नी के बीच झगड़ा और मानसिक तनाव।तिस पर भी रात को खटमलों का यह आतंक इन विसंगतियों की भयानकता को और अधिक बढ़ा देता है । परिस्थितियों की इस प्रकार बढ़ती हुई गम्भीरता के माध्यम से कहानी-कार यह साबित करना चाहता है कि इन समस्याओं का सामना केवल सत्येन्द्र और उसकी पत्नी को ही नहीं करना पड़ रहा है, बल्कि आज शहर की लगभग अस्सी प्रतिशत जनसंख्या इसी की गिरफ्त में है । यह दूसरी बात है कि अभी शहर में नया-नया आने वाला यह नवविवाहित दम्पत्ति इससे अपरिचित होने के कारण कुछ ज्यादा ही भयावह महसूस कर रहा है । परन्तु एक दिन ऐसा आयेगा जब ये भी इसी दमघोटू माहौल में अपने को स्थापित कर लेंगे । तब इन्हें भी सब कुछ सामान्य लगने लगेगा और ये भी राहत महसूस करेंगे । जिस प्रकार अन्य लोग जीना सीख गये हैं, ठीक वैसे ही ये लोग भी सीख जायेंगे और शहर अपनी इसी गति से चलता रहेगा । जैसा कि खटमलों के आतंक के बारे में मकान मालिक का यह वक्तव्य --

'आप भी कुछ कर देखिए । जो यहां आता है, पहले यही शिकायत करता है । फिर लोगों को आदत पड़ जाती है । आप को भी आदी होना पड़ेगा । कलकत्ते में रहेंगे साहब, तो ट्राम-बस, खटमल-मच्छर

से भाग कर कहां जायेंगे ।'[52]

आर्थिक दबाव युवा मानस को आज दबोचता जा रहा है । इसका प्रमुख कारण आर्थिक दायित्वों में निरन्तर होने वाली बढ़ोत्तरी और मध्यवर्गीय युवक के आर्थिक स्रोत में आने वाले ठहराव की स्थिति है । जहां पढ़े-लिखे युवक को आर्थिक घुटन तोड़ रही है, वहीं जीने के लिए अभिशप्त और आर्थिक त्रास से तंग, बेरोजगार युवक को यह आत्म पीड़ा की स्थिति से गुजरने को मजबूर कर रही है । यह बेरोजगार युवक केवल असुविधा और तंगी का ही अनुभव नहीं कर रहा है, बल्कि भूख से छटपटाने वाले बच्चे और भूखी रहकर दूध न निकलने की स्थिति में भी बार-बार स्तनपान कराने को मजबूर पत्नी के हृदय की कचोट को भी सहने को मजबूर दीखता है । यथा --

'जब वह भूखा ही सो जाता और नींद में सिसकियां लेने लगता तो वह बरबस लेट कर स्तन उसके मुंह में दे देती । बच्चा एक आक्रमणकारी की तरह झपट्टा मार कर स्तन पकड़ लेता और चुभलाने लगता । वह बार-बार उसका पेट छूती और उठने का इंतजार करती । बच्चा थक जाता और चिड़-चिड़ाकर चीखना शुरू कर देता ।'[53]

लेखक द्वारा भूखा का वर्णन किसी प्रचार के लिए न होकर बल्कि सन्दर्भ को सशक्त बनाने का प्रयास है । शहर की संस्कृति काफी कुछ कृत्रिमता और औपचारिकता से पूर्ण होती है जिसमें दरिद्रों के लिए मकान में कोई जगह नहीं होती। अत: मकान मालिक को दिखावे के लिए कुछ न कुछ करना पड़ता है । इसलिए 'सत्येन्द्र' और उसकी पत्नी स्वयं तो आम और डबलरोटी पर गुजारा करते हैं परन्तु दिखाने के लिए चूल्हा जलाते हैं जिससे कि किसी को उनकी खस्ता-हाली का एहसास न हो सके । यह चित्र शहरी जीवन के खोखलेपन को गहराई तक उभार देता है जिसमें कृत्रिमता की भी जीवन में अहम् भूमिका की ओर लेखकीय संकेत दिखाई पड़ता है ।

इन शहरी विसंगतियों से कम भयानक यह शहरी मानसिकता नहीं है जिसमें यहां के लोग जीते हैं। कहानी में इसी शहरी मानसिकता से त्रस्त लोग आसपास रहकर भी अलग-अलग अजनबियत की ज़िंदगी बिताने को मजबूर होते हैं। उनके दिल में अन्य किसी के प्रति थोड़ी सी भी सहानुभूति नहीं होती। दूसरे की पीड़ा और दु:ख-दर्द उनके लिए दूर से आती हुई किसी चीख-पुकार से ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं है, जिससे उनका कोई लेना-देना नहीं रहता। उन्हें तो बस दूसरों पर फ़ीटा-कसी करने, पड़ोसी को नीचा दिखाने और उस की कमजोरियों की नुक्ताचीनी निकालने भर के लिए मौका हाथ लगने की देर है। `सत्येन्द्र` और उसकी पत्नी की मजबूरियों को कोई नहीं समझता, एक तो ये बिचारे परिस्थितिवश मजबूरी में दिन काटते हैं और ऊपर से पड़ोसियों का यह व्यंग्य उन्हें अंदर तक सिहरा देता है --

> `नया जोड़ा है ... ।` नया कहां है साहब। बेकारी का सुख है।`
> `सो तो ठीक, लेकिन पेट महाराज का क्या होता है।`[54]

इस प्रकार कहानी के नायक का प्रतिशोध मनुष्य की तरह जीवित रहने और जीवन से हार न मानने में है। कहानी के अंत में जब वह पूर्ण रूप से पराजय स्वीकार करता है, तब भी उसके मन में एक प्रकार का स्वागत भाव है क्योंकि वह अपने जैसे अन्य लोगों को भी उसी स्थिति में महसूस करके संतोष की सांस लेता है। एक नये मानवीय सहानुभूति से भरा-भरा वह अपने साथ खड़े अजनबी को देख कर मुस्करा पड़ता है ; ऐसा लगता है कि उसने उसको पहचान लिया है। उत्तर में वह व्यक्ति भी मुस्करा देता है। इससे ऐसा लगता है कि मानो यातना की समता ही इस शहरी बेगानेपन को मिटाने का एक नुस्ख़ा है।

कहानी भाषा और शैली के स्तर पर अपने परिवेश और परिस्थिति को चित्रित करने में बहुत अधिक सफल रही है। कहानीकार ने दफ्तरी जीवन के चित्रण को जीवंत बनाने के लिए उसी मानसिकता के अनुसार ही पात्र का नामकरण किया है जिसका अच्छा उदाहरण दफ्तर का `चण्डूल` है। इस पात्र के नाम से जैसे दफ्तरी जीवन का आधा रूप हमारे दिमाग में कौंध जाता

है और रही-सही कसर इस पात्र के व्यवहार और संवाद के माध्यम से लेखक ने पूरी कर दी । यथा --

> 'हा व - - - - ' । वह शून्य में भौंक्ता, 'और क्स भार । मुफ्त का पैसा - - - - - सरकार देती है । पसीने की कमाई है ।' उसने भौंकना बंद करके फुटपाथ पर थूक दिया और लोपड़ी का पसीना पोंछ कर यों छिड़का जैसे गंगाजल छिड़क रहा हो ।'[55]

कहानी की भाषा भी परिस्थिति और परिवेश के अनुसार बदलती रहती है । दफ्तरी जीवन के चित्रण में कहीं-कहीं अनगढ़ और असभ्य भाषा का प्रयोग मिलता है, परन्तु शहरी जीवन के चित्रण में बोल-चाल की शुद्ध हिन्दी का प्रयोग हुआ है । फिर भी प्रभावकारिता और जीवंतता को ध्यान में रखते हुए अंग्रेजी के साथ-साथ अन्य शब्दों 'साइनी', 'टहोका' , 'मातमपुर्सी ', 'जीना हलकान', 'लिथड़ा', 'बगलगीर' आदि शब्दों का भी प्रयोग मिलता है । कहानी में सर्वत्र हारर दृश्यों का बड़ा ही खुलकर प्रयोग मिलता है जो शहरी जीवन के चित्रण में स्थिति की गम्भीरता तक पहुंचाता है । परन्तु दफ्तरी जीवन के चित्रण में भयानकता का उग्र रूप ले लेता है । यह संत्रास का दृश्य परिवेश में ही नहीं बल्कि पात्र के मस्तिष्क में भी साथ-साथ चलता है । 'सत्येन्द्र' के भी मस्तिष्क में बार-बार ये डरावनी अनुभूतियां घर कर जाती हैं । यथा --

> 'उसे लगा वह गिर गया है और मौत निश्चित है । वह मौत जिसके बाद वह सड़क पर चलता हुआ दिखेगा - नत-शिर, पसीने में लिथड़ा, अवाक्, अनिश्चित । उन्होंने घेर लिया था और अब वे छोड़ नहीं सकते थे । वे उसे अवश्य ही उस संदेह चीत्कार में शामिल कर लेंगे ।'[56]

जहां तक शैली का प्रश्न है, मुख्य रूप से किसी एक के प्रति आग्रह नहीं है । फिर भी चेतना प्रवाह शैली, हास्य-व्यंग्य शैली, वर्णात्मक और संवादात्मक शैली सभी का आवश्यक्तानुसार बराबर का योगदान है । कहानी में गम्भीरता के साथ-साथ बीच मेंमनोविनोद की भी स्थितियां आती हैं, परन्तु कहानी के थोड़ा आगे बढ़ते ही पुन: गम्भीरता घर कर जाती है क्योंकि लेखक उन्हीं परिस्थितियों

और प्रश्नों से टकराता चलता है जिससे आज का शहरी मध्यवर्गीय व्यक्ति जूझ रहा है ।

`धर्मक्षेत्रे : कुरुक्षेत्रे`

यह कहानी दूधनाथ सिंह की अब तक की अंतिम परन्तु सबसे सशक्त कहानी है, जिसने यह साबित कर दिया है कि यदि कलाकार में सामर्थ्य और कला के प्रति समर्पण भाव होता है तो उसके लिए पुराना और नये का कोई फर्क नहीं । वह पुराने प्रसंगों में भी जान फूंक कर वर्तमान में उसे अधिकाधिक प्रासंगिक बना सकता है । ऐसा ही इस कहानी के साथ होता है ; यद्यपि इसकी थीम तो अतीत में चलने वाले नारी व्यापार के धंधे से गम्भीर रूप से जुड़ी हुई है, फिर भी वह आज के परिवेश में पलने वाले पूंजीवादी व्यापार के फैलाव, विसंगतियों और उस दल-दल में फंसे व्यक्ति की व्यावसायिक कलाबाजियों को एक-एक कर उभारती है । इस प्रकार यह अतीत का भयावह रूप वर्तमान में भी हमें भीतर से अधिकाधिक छूता है । पूंजीवादी व्यापार के चमक-दमक में फंसने वाला गांव का सरल व्यक्ति भी एक क्रूर दानव की भूमिका अदा करने लगता है । वह नैतिक रूप से इतना गिर जाता है कि उसे अपनी बहन-बेटी और बहू को बेचने में तनिक भी हिचक नहीं होती, बल्कि वह इन सब कार्यों को एक हुनर और चालाकी के रूप में लेता है जैसा कि कहानी में `लेडी महतो` का यह उपदेश -

`छोटी बच्ची हो तो गुड़-मिठाई दे के फुसलाओ. पता करो कि किस घर में कौन औरत दुख-त्रास में है - मेल-जोल बढ़ाओ. उसको दुख-त्रास से निजात दिलाने के सपने दिखाओ. साड़ी-ब्लाउज दो. टटका मीठा दो. मीठा बोलो. बेटी-मेहर बेचने वाले की नस टोते रहो - - - - तो इसीलिए हुनर है ।`[57]

इस प्रकार आज व्यक्ति को पैसा चाहिए, सिर्फ पैसा, चाहे जानवर चुराकर, सेंध लगाकर या फिर अपनी ही बहू बेचकर । कहानी का `सिउ महतो`

इसी प्रकार की मानसिकता से ग्रस्त है। वह अपनी बहू को गर्भावस्था में बेचने के लिए जंगल में ले जाकर सीकड़ से बांध देता है। यह स्थिति व्यक्ति के जानवर हो जाने वाली मानसिकता का परिणाम है।

कहानी मुख्य रूप से समाज में चलने वाले चोर-बाजारी, नैतिक-पतन, पूंजीवादी त्रस्त मानसिकता, स्वार्थपरता और सबसे पीड़ादायक स्थिति नारी के खुल्लम-खुल्ला व्यापार की क्रूरताओं का पर्दाफाश करती है। यह भारत जो कभी धर्म क्षेत्र के नाम से विख्यात था, उसी में आज कुरुक्षेत्र मचा हुआ है। जहां देश की स्त्रियों का रोल महाभारत की द्रौपदी से कम नहीं है। यद्यपि महाभारत में द्रौपदी को पाण्डवों ने धर्म के रास्ते पर कुर्बान किया था, फिर भी उन्हें इसके लिए बहुत अधिक पछतावा और ग्लानि थी। परन्तु यहां जो नारी जंजीर से बांध कर बिकने के लिए सरे आम बाजार में खड़ी है, उसके लिए किसी को ग्लानि तो क्या, सहानुभूति के दो बोल भी नहीं निकलते, उल्टे ऊपर से उसकी पीड़ा में चुटकी लेने, गाली देने और उसे निरंतर लांछित करने का प्रयास दीखता है।

कहानी एक ऐसे बिन्दु की ओर संकेत करती है जहां हमें आज के परिवेश में विचारणीय प्रश्नों से टकराना पड़ता है। वह यह कि क्या नारी आज बिकी की वस्तु नहीं रही? या उसे हमने स्वतंत्रता के नाम पर कितना अधिकार दिया? समाज में आज वह किन परिस्थितियों में जी रही है और उसका जीना कितना सार्थक है? अब यदि इन प्रश्नों की कसौटी पर वर्तमान व्यवस्था को कसा जाये तो शायद ही सफलता हाथ लगेगी। हम यह मानते हैं कि यद्यपि वे परिस्थितियां नहीं रहीं जिसमें प्राचीन काल में नारी सरेआम बेची जाती रही, फिर भी वह आज बिकी की वस्तु बनी हुई है। पुराने रूप में न सही, आधुनिक बाजारू तरीके से ही सही, वह बिक अवश्य रही है। यह जो सामाजिक ढांचा पुरुष द्वारा खड़ा किया गया, उसके चलते सीकड़ से बांध कर न सही, पैसों के लालच में स्वेच्छा से ही माडलिंग फिल्मी दुनिया और सबसे ज्यादा सुन्दरी

प्रतियोगिताओं के रास्ते वह बिकने को मजबूर है। इसलिए कहानी हमें आज भी गहराई से छूती है।

कहानी ग्रामीण क्षेत्र में पलने वाले इस अनैतिकतापूर्ण औरत के धन्धे को उसकी सम्पूर्ण कलाबाजियों के साथ उभारती है। पूरी कहानी इसी धन्धे के दौरान आने वाले उठा-पटक और उसमें लिप्त रहने वाले `सिऊ महतो` के इर्द-गिर्द घूमती है ; परन्तु यह भी नहीं कि केवल `सिऊ महतो` ही इस अमानुषता का शिकार है, बल्कि इसमें समाज के तथाकथित सम्भ्रान्त व्यक्ति, यहां तक कि मठ के पुजारी और महंत भी लिप्त दीखते हैं। जो यह सिद्ध करता है कि यह बुराई समाज में कितनी गहराई से पैठ बनाए हुए है। `सिऊ महतो` इस धन्धे का बादशाह है परन्तु यहां तक पहुंचने के लिए उसे कई स्तरों से गुजरना पड़ता है। जिससे इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्ति मानसिक रूप से एकाएक इतना क्रूर नहीं बन सकता है। उसके मानसिक दिवालियेपन में धीरे-धीरे विकास होता है, जैसा कि `सिऊ महतो` के साथ हुआ है। पहले उसके द्वारा गाय बैलों की चोरी करना, नकब लगाना और अंत में मानव व्यापार को क्रूर गम्भीरता में उसे महारत हासिल हो जाती है। जैसा कि `सिऊ महतो` के गुरु `लेंडी महतो` का कहना है --

`गाय गोरू छोरने से हाथ साफ होता है. बदन में फुर्ती आती है. चोर की बुद्धी खुलती है. लेंडी महतो कहते थे कि पक्के चोर को गु-खउके कउए की तरह होना चाहिए. माने, जितनी दफे गलती करेगा उतना ही पोढ़ा होगा।`[58]

इस धन्धे में गुरु बनाने की आवश्यकता को भी कहानीकार ने उभारा है, जो समय-समय पर सुझाव और नियमों से परिचित कराता रहे। चोरबाजारी के धन्धे का बादशाह `सिऊ महतो` का भी गुरु `लेंडी महतो` है, जिसका प्रयास अपने शिष्य को अधिकाधिक निपुण बनाना है। हम कहानीकार की इस बात पर चौंक जाते हैं कि क्या चोरी जैसे अनैतिक क्षेत्र में भी कोई नैतिक नियम होते हैं ? परन्तु होते अवश्य हैं, भले ही दूसरे की सहायता के लिए नहीं,

परन्तु अपनी कला में सफलता की संभावना की दृष्टि से इसे उपयोगी कहा जा सकता है। जैसा कि 'लेंडी महतो' अपने चेले को शिक्षा देता हुआ कहता है --

'अपने गांव-जवार में चोरी मत करो. हितई-नतई वको रहो. किसी का विस्सास न करो. चोरी का इलाका बदलते रहो. फंस जाओ तो आराम से जेहल काटो. जेहल में सान्ती से रहो. हमेसा मरियल दिखो. दोसरे के आगे दीन-हीन बनि के दांत चियारते रहो. कभी सान मत बघारो. कभी सहको मत।'[59]

यदि देखा जाय तो कहानी मूल्यहीनता की गम्भीर स्थिति को बहुत बारीकी से उभारती चलती है। इसके जितने पात्र हैं, अक्सर वे मूल्यहीनता से त्रस्त दीखते हैं। इससे बड़ी मूल्यहीनता का और क्या प्रमाण हो सकता है जब व्यक्ति अपनी बहू बेटियों को बेचना शुरू कर दे और अपने नफे के लिए जीवित बच्चे को दफनाने पर उतारू हो जाए। मनुष्य में दया नाम की शक्ति का इस प्रकार लोप हो जाना भी इसी गम्भीर परिस्थिति की ओर संकेत है जबकि वह मनुष्य और पशु में अंतर की क्षमता से रहित हो जाता है। यह मनुष्य की सबसे बड़ी विडंबना नहीं तो और क्या कही जायेगी, जब घर का ससुर जिसे बहू का स्पर्श करना भी पाप है, वह फोंटा पकड़ कर बहू को घसीटता है और सास को छुड़ाने को कौन कहे, स्वयं भी वह इस क्रूर कार्य में शामिल हो जाती है तो सारी मानवीयता की धज्जियां उड़ जाती हैं। पारिवारिक कलह का यह दर्दनाक दृश्य किसी अन्य कल्पना लोक की उड़ान नहीं, बल्कि हमारे पारिवारिक सम्बन्धों के वास्तविक तह तक लेखक की पैठ का प्रमाण है --

'ओसारे में खड़ी उसकी पतोह सामने पड़ गयी तो उसने आव देखा न ताव, झट से फोंटा पकड़ा और आंगन में गिराकर लतियाने लगा। ऊपर सिऊ बो एक पीढ़ा लेकर दौड़ी और दे धबादब, दे धबादब. बहू ने चीखना चिल्लाना शुरू किया।'[60]

यहां औरत के ऊपर केवल पुरुष वर्ग ही नहीं शोषण और जुल्म कर रहा है, बल्कि स्वयं औरत भी औरत के इस शोषण में भागीदार है। हर औरत प्राय: एक दिन बहू बनती है और सास की ज्यादतियों का शिकार होती है, परन्तु स्वयं जब वह सास की भूमिका में उतरती है तो अपने पिछले दिनों को भूल कर नए जोश-खरोश के साथ मोर्चा सम्हालती है। यह मनुष्य की नियति है या यूं कहें कि औरत जाति की विडम्बना है। जिस व्यवहार के लिए वह बार-बार सामाजिक ढांचे और ईश्वर को कोसती रही, उसी भूमिका में वह स्वयं एक दिन आ उतरती है। यद्यपि कहानी में कहानीकार ने इस बात को ज्यादा तरजीह नहीं दी है। फिर भी 'मरकटवा' के मन में उठने वाले औरत के प्रति सहानुभूति का यह गुब्बार इस स्थिति को स्पष्ट कर देता है। यथा --

'वो तो औरत है। लेकिन आजकल औरतें ही औरतों से ज्यादा खार खाती हैं. कितना दरबेसा बेचारी को! और उस पर भी इस हालत में! हमीं लोगों के डर के मारे तो मिनकी नहीं गरीब! नहीं, एके हाथ में माई, मुंह में माटी लेह लेती.'[61]

कहानी बहुत कुछ मनोवैज्ञानिकता को उभारती हुई दो पात्रों के बीच चलने वाले मानवीयता और क्रूरता के संघर्ष को उभारती है। लेखक ने बड़ी चालाकी से इस क्रूरता पर मानवीयता की विजय दिखाई है जिसके चलते वह आदर्शवादी होते-होते बच गया। यदि लेखक प्रारम्भ से ही मरकटवा को पिता की हर हरकतों के विरुद्ध खड़ा कर देता तो उसके चरित्र की स्वाभाविकता के नष्ट हो जाने का खतरा बढ़ जाता, परन्तु अंतिम समय पर मरकटवा का हृदय परिवर्तन दिखा कर लेखक अपने मन्तव्य में सफल रहा। स्थूल रूप से देखने पर ऐसा लगता है कि कहानीकार ने प्रेमचन्द की तरह हृदय परिवर्तन दिखा कर सारे झंझटों से मुक्ति पा ली है। परन्तु यदि ध्यान से देखा जाय तो इस हृदय परिवर्तन और प्रेमचन्द की कला में काफी अंतर है। प्रेमचन्द के पात्र में जहां जीवन भर गम्भीर रूप से बुराइयों में लगे रहने के पश्चात् उनमें एकाएक विस्फोटक हृदय-

परिवर्तन होता है, वहीं `मरकटवा` में इसकी नींव कहानी के प्रारम्भ से ही बनती दीखती है । वह अपनी मां द्वारा पत्नी पर किये गये अत्याचार से काफी क्षुब्ध है । फिर भी वहां मां-बाप की मर्यादाओं के चलते कुछ नहीं बोल पाता, भीतर ही भीतर घुटता रहता है । औरत की यह हालत देख कर मरकटवा का मन गीला हो जाता है, जैसा कि कहानीकार ने चित्रित किया है --

`धुएं से बचने के लिए उसने अपनी गर्दन पीछे की तो माथे का अंचल सरक गया और रोशनी में उजला, हठीला मुख झलक उठा. मरकटवा ने पहली बार उसे इस तरह खुला-खुला देखा. उसे अपने मां-बाप पर गुस्सा आने लगा. मन में उमड़ती हुई गालियों को उसने रोका और जैसे दुःख और बेबसी में मुरझा गया ।`[62]

`मरकटवा` के मन के भीतर चलने वाला यही अन्तर्द्वन्द्व अन्त में एक विस्फोट के रूप में सामने आता है । इसके लिए कहानी के अंत की परि-स्थितियां भी जिम्मेदार हैं जिनके चलते इस हृदय-परिवर्तन को एक मनोवैज्ञानिक और मानवीय आधार दिया गया । कहानी में सारे समय पिता का इस धन्धे में साथ देते रहने के बावजूद अंत में बच्चे को जिंदा दफनाने के प्रश्न पर `मरकटवा` की निर्दयता जवाब दे जाती है जिसका परिणाम पिता-पुत्र के बीच होने वाला खूनी जंग है जिसमें दोनों ही ढह जाते हैं । `मरकटवा` के रूप में आज के युवक का सामाजिक बुराइयों के प्रति विद्रोह का स्वर उभारा गया है, परन्तु दोनों के ढह जाने का चित्रण यह प्रदर्शित करता है कि आज समाज की बुराइयों ने इस हद तक समाज को अपने में चपेट रखा है कि अकेले व्यक्ति का विरोध में उठ खड़ा होने पर उसका भी हश्र यही होगा जो `मरकटवा` का हुआ । अतः आज आवश्यकता है सम्पूर्ण जागरण की । फिर भी अंत में `मरकटवा` की मृत्यु द्वारा लेखक ने यह संकेत दिया कि जिस संकल्प के चलते `मरकटवा` ने कुर्बानी दी, वह सफल रहा ।

कहानी चुपचाप सब कुछ सहने वाली बेबस नारी का चित्रण नहीं है,

भले ही कहानीकार ने अपनी तरफ से उसे चाहे जितना विवश दिखाने का प्रयत्न किया हो, फिर भी उसका गुबार एक दो स्थानों पर फूट ही पड़ता है। वह इस सामाजिक ढांचे को तोड़ने के लिए बेचैन दीखती है परन्तु परिस्थितिवश ऐसा शायद कुछ नहीं कर सकती। यह भारतीय नारी ही है जो लाख उत्पीड़न सहने के बावजूद अपनी सास से मुंह नहीं खोलती, परन्तु उससे भी क्या चुप रहा जाय जिसके साथ वह पत्नी की भूमिका में कई दिन बिता चुकी है। तभी तो उसके वक्तव्यों में एक प्रकार का अपनत्व, उलाहना और आक्रोश भरी आत्म-पीडा फूट पड़ती है --

'अरे, तू का मरद नहीं है ? अपनी अम्मा का दुद्धू पीता है ? चाहे बेंच-कीन के ही सही, हम तेरी घरवाली बन के आई थीं . और तू देखता रहा ? निकल जाने देता. हम चली जाती कहूं नदी-इनार फान जातीं . बाकी, तू तो सच्चो भडुवा है, उस हरामी के कहे से हमें ई जंगल-झार में संकिड़ से झाने है.'[63]

कहानी की थीम गांव की है, जिससे इस पर ग्रामीण परिवेश और संस्कृति का गहरा असर है। फिर भी एक बात जो इसे अन्य ग्राम्य कथाओं और आंचलिक चित्रण से अलग करती है, वह यह कि अन्य पूर्ववर्ती कहानीकारों से अलग गांव के मोहक चित्रण से दूर है, जिसमें कहानीकार ने गांव की सचाई को उसकी सारी विसंगतियों और विदूपताओं के साथ पकड़ने की कोशिश की है। गांव में होने वाली बैलों की चोरी, नकब काटना, सरल ग्रामीण युवतियों को बहलाते-फुसलाते हुए एक का घर उजाड़ कर दूसरे का बसाने का बिजनेस, ग्रामीणों का अंधविश्वास, मठ और महंतों का पेशा, मंत्र और चेला मूड़ने की परिपाटी आदि सभी कुछ जीवंत रूप में उभर कर सामने आते हैं। कहानी के इस ग्रामीण परिवेश को और अधिक गहराई प्रदान करने में भाषा की अहम भूमिका रही। गांव के शुद्ध रूप को उभारने में भाषा को और अधिक सक्षम बनाने की दृष्टि से कहानीकार को अश्लील शब्दों से भी परहेज नहीं है। यदि वह उसके द्वारा

वास्तविक चित्र उभारने में सफल होता है --

> 'बड़का वाला सींकड़ करिहाइ में लपेटि ले.' सिऊ महतो ने कहा ।
> 'सींकड़ का होई बाबू ?' मरकटवा ने अपनी बाल-जिज्ञासा प्रकट की.
> 'तोरे गंड़िया में डाले के बा .' सिऊ खुन्सा कर बोला.
> उधर सिऊ वो अपनी पतोह के विदाई-समारोह में लगी हुई थी.
> लेकिन औरत थी कि काठ की तरह चुप थी.
> थोड़ी देर बाद आगे-आगे सिऊ, बीच में बहुरिया और पीछे-पीछे सतुआ - भूंजा गंठिआये, पानी की मेंटिया लाठी में टंगाये मरकटवा वन कटे की ओर चले.'[64]

परन्तु एक बात इस कहानी में जो खटकती है, वह है अति आंचलिकता, जिसके चलते कई-कई स्थानों पर भाषा समझ से परे दिखाई पड़ती है । फिर भी लेखकीय कौशल के कारण पाठक को ऐसा लगता है कि जैसे लेखक ने बहुत बड़ी बात कह दी और वह उसी में रससिक्त हो जाता है । वास्तव में अपनी भाषा के प्रभावकारी शक्ति से कहानीकार ने पाठकों की उत्सुकता को बांध लिया है जिससे कुछ-कुछ अबूझ स्थिति में भी पाठक मजा लेता रहता है और वाह-वाह करता चलता है । यद्यपि लेखक ने कहानी के प्रत्येक पृष्ठ पर कुछ कठिन शब्दों का अर्थ व्याख्या सहित दिया है, फिर भी ये कहानी में प्रयुक्त शब्दों की दृष्टि से पर्याप्त नहीं लगते । जो भी हो, पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इस कहानी की अस्सी प्रतिशत सफलता का रहस्य यह भाषा ही है । इस भाषा के शब्द केवल आंचलिक क्षेत्रों से उठा-उठाकर ही नहीं रख दिये गये हैं, बल्कि एक-एक शब्द पात्र की मानसिकता में परिवेश की जीवंतता के साथ विस्फोट करता चलता है । यथा --

> 'बालू में मनभोग डालोगे तो सोचते हो, मनभोग खाने को मिलेगा ?' सिऊ बो ने ताना मारा.
> 'मेरी बात का जवाब दे .' सिऊ ने आवाज ऊंच की.

'बाफ-बंजर लाये हो तो भोगेगा कौन ? अब काहे चुन-चुना रहे हो ? कोई घंट में पानी देने वाला भी नहीं रहेगा .' सिऊ वो ने बिफर कर कहा.
'तो खदेरो हरामिन को. वंस-बरखा नहीं देगी तो कितने दिन बैठा के खिलायेंगे . 'सिऊ उठ गया.'[65]

कहानी मुख्य रूप से संवादात्मक शैली में आगे बढ़ती है, परन्तु इन्हीं संवादों और वार्तालापों में पात्र की मानसिक बुनावट, परिवेश का उचित एहसास, कथा प्रसंग की पृष्ठभूमि और सबसे बड़ी बात पात्र की चारित्रिक उठापटक एक झटके के साथ उभर आती है। यद्यपि ये संवाद बहुत बड़े नहीं हैं परन्तु अर्थ-गर्भित और प्रभावशाली हैं --

'गाली देगी तो थोबड़ा पीछे घुमा देंगे, समझी . हमारा भी नाम मरकटवा है. ' उसने अंधेरे में मूछों पर ताव दिया.
औरत चुप.
'किसका पेट लिए फिर रही है ?' मरकटवा ने डिबिया में से खैनी निकाली और हथेली पर मलने लगा.
'तेरा तो नहीं है न ! ' - औरत ने भड़क कर कहा.
'चुप बुजरी ! मेरा कैसे होगा ?' उसने खैनी ठोकीतो बरगद पर गादुर फड़फड़ा उठे .'[66]

इसके अलावा वर्णात्मक शैली, चित्रात्मक और कहीं-कहीं व्यंग्य का भी पुट मिलता है, पर इन सभी शैलियों में एक साम्य है। वह यह कि सभी में पात्र की मानसिक स्थिति और ग्रामीण परिवेश का दबदबा कम नहीं हो पाया है। इस प्रकार एक आंचलिक माहौल में यह कहानी फ्लैश बैक तकनीक के सहारे अंत से प्रारम्भ की ओर पीछे हटती चलती है। कहानी का प्रारम्भ जिस बनकटे के जंगल से होता है, उसी में पिता-पुत्र के खूनी जंग के बाद समाप्त हो जाती है।

संदर्भ

1. `रीछ` कहानी, `सपाट चेहरे वाला आदमी` कहानी संग्रह, दूधनाथ सिंह, पृ0 16
2. वही, पृ0 25
3. वही, पृ0 37
4. वही, पृ0 23
5. वही, पृ0 35
6. वही, पृ0 29
7. वही, पृ0 36
8. वही, पृ0 31
9. वही, पृ0 23
10. `रक्तपात` कहानी, वही, पृ0 160
11. वही, पृ0 157
12. `नयी कहानी : कथ्य और शिल्प` - डा0 संतबख्श सिंह, पृ0 210
13. `रक्तपात` कहानी, `सपाट चेहरे वाला आदमी` कहानी संग्रह - दूधनाथ सिंह, पृ0 146
14. वही, पृ0 160
15. वही, पृ0 159
16. वही, पृ0 148
17. वही, पृ0 156
18. `कोरस` कहानी, वही, पृ0 130
19. वही, पृ0 131-32
20. वही, पृ0 132
21. वही, पृ0 133-34
22. वही, पृ0 135
23. वही, पृ0 139

24. `समकालीन कहानी : आठवां दशक` - डा० कृष्णदत्त पालीवाल, `सारिका`, दिसम्बर 1985, पृ० 73
25. `स्वर्गवासी` कहानी, `सुखान्त` कहानी संग्रह - दूधनाथ सिंह, पृ० 32
26. वही, पृ० 30
27. वही, पृ० 31-32
28. वही, पृ० 21
29. वही, पृ० 29-30
30. वही, पृ० 17
31. वही, पृ० 25
32. वही, पृ० 11
33. `आइसवर्ग `, `सपाट चेहरे वाला आदमी` कहानी संग्रह - दूधनाथ सिंह, पृ० 108
34. वही, पृ० 128
35. वही, पृ० 107
36. वही, पृ० 111
37. वही, पृ० 111
38. वही, पृ० 114
39. वही, पृ० 112
40. वही, पृ० 124
41. वही, पृ० 122
42. वही, पृ० 128
43. वही, पृ० 125
44. `प्रतिशोध` कहानी, वही, पृ० 105
45. वही, पृ० 79
46. वही, पृ० 82
47. वही, पृ० 96
48. वही, पृ० 96

49. `साक्षात्कार`, `साठोत्तरी कहानियां : दूधनाथ सिंह, कुछ प्रश्न और विचार`, पृ० 182-83
50. `प्रतिशोध` कहानी, `सपाट चेहरे वाला आदमी` संग्रह - दूधनाथ सिंह, पृ० 103
51. वही, पृ० 103
52. वही, पृ० 91
53. वही, पृ० 94
54. वही, पृ० 93
55. वही, पृ० 83
56. वही, पृ० 85
57. `धर्मक्षेत्रे : कुरुक्षेत्रे` कहानी - दूधनाथ सिंह, `हंस` पत्रिका, अगस्त 1995, पृ० 17
58. वही, पृ० 16
59. वही, पृ० 16
60. वही, पृ० 18
61. वही, पृ० 15
62. वही, पृ० 16
63. वही, पृ० 16
64. वही, पृ० 21
65. वही, पृ० 18
66. वही, पृ० 15

साक्षात्कार

स्थान - इलाहाबाद

9 सितम्बर 1996 ई०

साठोत्तरी कहानियाँ - कहानीकार दूधनाथ सिंह की दृष्टि में —

कुछ प्रश्न और विचार

० जनवादी कहानियों से आपका तात्पर्य क्या है ? और आप इसे किस रूप में स्वीकार करते हैं ?

दरअसल यह एक भ्रामक धारणा है, यह इतनी ही भ्रामक है, जैसा कि नई कहानियां ; यानी कि नई कहानी आन्दोलन के सम्बन्ध में जितनी भ्रामक धारणा अकहानी, सचेतन कहानी, सहज कहानी की धारणाएं हैं, उतनी ही भ्रामक जनवादी कहानी की अवधारणा भी है । इसकी वजह यह है कि कहानियों में जो बदलाव आए उसको पारिभाषित करने के लिए तरह-तरह के लोगों ने शब्द गुत्थुओं का आविष्कार किया । यशपाल, विष्णु प्रभाकर या आजादी से पूर्व कहानी लेखक जैनेन्द्र आदि की कहानियों से पृथक् करने के लिए कहानी विधा के साथ `नई ` शब्द जोड़ा गया । लेकिन उस समय नवीनता की बहुत बातें पिछले कहानीकारों में भी थीं और उस नवीनता के बहुत सारे गुण साठ के बाद के कहानीकारों में भी दिखाई पड़ता है । ऐसा नहीं है कि यह कोई बंधी हुई धारा है ; उसके जरा सा इधर हो जाने पर नई कहानी रहेगी, और जरा सा उधर हो जाने पर नई नहीं रह जायेगी । इसी तरह जब हमारे कुछ मित्रों ने `एण्टी-स्टोरी` कहानी की बात चलाई तो इसका भी कोई विशेष महत्व नहीं है । मैं स्वयं व्यक्तिगत तौर पर उस कहानी का वकालत नहीं करता। अभी काशीनाथ सिंह ने मेरे बारे में कहा है कि -`हम लोगों में सबसे ज्यादा अकहानी से प्रभावित थे ` कैसे उन्होंने यह कहा, शायद भाषिक प्रयोगों या फंतासी प्रयोगों की वजह से कहा होगा । तरह-तरह के नए प्रयोग, कहानीकारों की कहानी करने की कोशिशें, इसको अकहानी का पर्याय मान लिया गया, लेकिन अकहानी के जो बुनियादी सवाल हैं, उसमें लोगों द्वारा बिस्तरों पर लिखी गयी कहानी उसका एक मूर्त प्रतीक है । ऐसा नहीं है कि काशीनाथ सिंह में वे गुण या दुर्गुण नहीं हैं ; लेकिन कुल मिलाकर उसी तरह कहानी को जनवादी कहना भी इसके लिए एक नाम देना है ।

अब अगर उस नाम को लेकर प्रश्न उठाया जाय कि जनवादी कहानी क्या है ? तो सीधी-सीधी बात यह है कि जो कहानी प्रगतिशील तत्वों से, जनता के दु:ख-दर्द से, जनता की समस्याओं से और खासकर आज के राजनैतिक दौर में सामाजिक मोड़ पे जो जनता के बीच में शक्ति के केन्द्र हैं, या जो अशक्ति के केन्द्र हैं, जो तक्लीफ के केन्द्र , या जो यातना के केन्द्र हैं, शोषण के केन्द्र हैं, उनको और जो शक्ति के केन्द्र हैं, उन सारे तत्वों को और सभी चीजों को एक कहानी अपने में समेट रही है ; अगर समेटते हुए वह जनता की बुनियादी तक्लीफें, खास कर जनता की तरफ से शक्ति का स्रोत जो संसद की तरफ जाता है, जो जनता की बुनियादी तक्लीफ है, या उसकी समस्याओं को कहानी चित्रित करती है तो उसके लिए कुछ मित्रों ने जनवादी कहानी का नाम दिया । अब देखिये तो जनता के दु:ख-दर्द को आजादी के पहले की कहानियाँ भी चित्रित करती हैं ; प्रेमचन्द की कहानी `ठाकुर का कुँआ`, `कफन`, `नमक का दरोगा` आदि क्या करती हैं ? ऐसा नहीं है कि वे जैनेन्द्र की कहानियों की तरह अन्तर्मुखी या व्यक्तिवादी व्यवस्था की कहानियाँ हैं ; बल्कि आम जनता के दु:ख-दर्द को उभारती हैं । इसलिए जनवाद की कोई परिभाषा की जाए तो उसके अन्तर्गत कहानी को बांधने की परिकल्पना, या उसको घेरने की परिकल्पना बहुत अच्छी बात नहीं है ; अत: जनवादी कहानी कोई अलग से विधा नहीं है, वह कहानी जो जनता की तक्लीफों, यातनाओं, उसकी कठिनाई को चित्रित करती है, इसका सीधा अर्थ है कि वह तत्व के स्तर पर कहानी को चित्रित करे, कहानी जनोन्मुख ज्यादा हो, या होनी चाहिए, या जो कहानी हुई है, इस तरह उसकी भाषिक संरचना के स्तर पर जिस कहानी में जनता की बोलियों से उसकी शब्दावली और मुहावरों से भाषा का आर्कीन, जो बना है, इधर की कहानियों में इसको ही जनवादी कहानी कहते हैं । अब अगर इस तर्क से देखें तो उदय प्रकाश की कहानी को जनवादी कहानी नहीं कहेंगे क्या ? लेकिन उसमें भी बहुत सारी चीजें जो जनवादी

कहानी कहने वालों की दृष्टि से उन अवधारणाओं को लादने की दृष्टि से उसमें बोलियों का प्रभाव नहीं के बराबर है, उसके बावजूद उसमें जनोन्मुखता है ।

० तो क्या हम यह कहें कि यह यथार्थवाद का ही एक रूप है ?

कह सकते हैं, यथार्थवाद कोई बनी बनाई अवधारणा नहीं है, इसलिए यथार्थ का अर्थ वास्तविक घटना सन्दर्भ नहीं, यथार्थ का अर्थ होता है, साहित्यिक यथार्थ, संरचनात्मक यथार्थ, देखने में बाहर एक घटना नहीं भी हो सकती है, परन्तु कहानी में वह विश्वसनीय हो सकती है, इसीलिए कहानी में यथार्थ का काम एक विश्वसनीयता करती है । कहानी का मुख्य जो घटक है, वह है साहित्य का, संरचना का, या विश्वसनीयता का या पढ़ते वक्त या सुनते वक्त या विश्लेषण करते वक्त वह विश्वसनीय है कि नहीं ; हो सकता है कि जीवन में समाज में इस तरह की घटनाएं न पायी जाती हों, लेकिन वह संरचना में विश्वसनीय है, इसीलिए वह यथार्थ घटना का वास्तविक चित्रण नहीं है, बल्कि अवास्तविक चित्रण भी हो सकता है अगर वह विश्वसनीय है ।

० तो क्या, जनवादी से आपका तात्पर्य जनता की पीड़ा और दर्द को चित्रित करने वाली कहानियों से है ?

सोचते हैं लोग ऐसा ही, और जनता में ज्यादातर व्यापक जन समूह, उसके लिए मैंने कहा जो शक्ति का केन्द्र है वह जनता है । वह शक्ति का स्रोत जो सामंती जमाने में ऊपर से नीचे की ओर प्रवाहित होता था, परन्तु प्रजातांत्रिक समाज में वह एक तरह से उलट गया, इसीलिए साहित्य के उत्स या उसकी अवधारणाएं भी उलट गयीं, एक ज़माने में वह राजा या राजदरबार या हीरो एवं नायक से लगी हुई थी, चाहे वह राम हो या कृष्ण हो, अथवा पृथ्वीराज हों या कोई भी हों, इसमें शक्ति के स्रोत ऊपर से नीचे की ओर है ।

परन्तु अब वह बात नहीं इसीलिए इसका नायकत्व भी नीचे से ऊपर की ओर जाता है कि नहीं । चूंकि शक्ति का स्रोत उलट गया, ऐसी स्थिति में वह किसी आभिजात्य वर्ग का चित्रण नहीं है, क्योंकि आभिजात्य राम में हो सकता है, पृथ्वीराज में या कृष्ण में हो सकता है, यह अपौरुषेय तत्व या सामंती तत्व हो सकता है । लेकिन जब शक्ति का स्रोत नीचे की ओर से प्रवाहित हो रहा है तो उसके साथ साहित्य की अवधारणाएं और धारा भी उलट गयी है, इसीलिए इसका नायकत्व भी जिसके जिम्मे है, वह जरूर कहीं न कहीं समस्याओं के स्वरूप हैं, जो समाधान मांगती है ; परिणामस्वरूप कहानी में वस्तु तत्व का प्राधान्य हो गया । कुछ लोग उसके ही हिसाब से भाषा और शिल्प को बनाने के परम लालसी है एवं उसी तरह की मॉंग भी करते हैं ; वे एक तरह से साहित्य के स्रोत को उलटने की कोशिश करते हैं, जो सामाजिक पावर के सेंटर हैं, उसको उलटना चाहते हैं ; यह कैसे हो सकता है कि पावर सेंटर्स नीचे हो और साहित्य का सेंटर ऊपर हो ?

○ छठे दशक के बाद कहानी विधा क्षेत्र में अनेक आन्दोलन चले, और आप की कहानी किसी एक खास आन्दोलन में न सिमट कर सम्पूर्ण साठोत्तरी आन्दोलनों का सार तत्व लिये है, ऐसा क्यों ?

आन्दोलन से मेरा कोई करीबी सम्बन्ध नहीं रहा, हालॉंकि हम लोग एक साथ लिखते रहे थे, अकहानी आन्दोलन के हमारे कुछ मित्र साथी थे ; गंगाप्रसाद विमल, जिन्होंने लिखना लगभग बंद कर दिया, अरविन्द उपाध्याय लिख रहे हैं, लेकिन उनकी कहानियां किसी भी वाद या आन्दोलन या एकदम बंधी नपी-तुली विचारधारा के अन्तर्गत नहीं आतीं । कहानी के लिये जो स्रोत थे, वह जीवन से या साहित्य से आने वाले स्रोत थे ; स्थिति यह थी कि जो अनुभव बाहर था, उनको कहानी में संकल्पना द्वारा या रचनात्मक कल्पना द्वारा रचने का प्रयास होता रहा । इसमें कई बार मेरी कहानियॉं `नई कहानी` आन्दोलन की परम्परा में लगती थीं और कई बार अकहानी या वाद के आंदोलनों

से भी आगे चली गयी । इस प्रकार नपे-तुले आन्दोलन के जो सूत्र थे उन सूत्रों में कोई कहानी बंधी नहीं, उसकी वजह यह थी कि कभी मैं उनको मानने के लिए तैयार नहीं था । आज भी कहानी लिखते वक्त या कोई भी चीज लिखते वक्त किसी आन्दोलन या किसी विचारशील या बंधी नपी विचारधारा को मानकर मैं कभी भी रचना में संलग्न नहीं हुआ ।

विचारधारा अगर है तो वह एक ही है, कि साहित्य का सत्य उसमें प्रतिबिम्बित होना चाहिए ; और साहित्य के सत्य प्रतिबिम्बित होने का मतलब है, जो हमारा जन समाज चारों ओर से हमारे आगे-पीछे, ऊपर-नीचे, जो हमारी ऐतिहासिक सिद्धियां और ऐतिहासिक परिवर्तन, परिवर्तन और विकास की अन्तर्धाराएं वह किसी न किसी रूप में हमारी कल्पना और हमारी रचना के माध्यम से अभिव्यक्त हो जाय । अगर वह नहीं है तो सिर्फ किसी चमत्कार या वाद, आन्दोलन या किसी विचारधारा को सिद्ध करने के लिए लिखा गया साहित्य महत्वपूर्ण नहीं माना जा सकता है ।

इसीलिए अगर तुम देखोगे तो मेरी शुरू की कहानियों से लेकर अब तक की कहानियों में बहुत ज्यादा परिवर्तन, विकास परिलक्षित होगा, ऐसा नहीं कि जो पहली कहानी है या जो शुरू की कहानी है, तथा बाद की कहानियों की सिद्धियाँ संकुचित होती चली गयीं । मैंने हर कहानी का शिल्प, उसकी भाषा तथा संवेदना को अलग से ढूंढने का प्रयास किया ; क्योंकि एक ही चीज को बार-बार लिखने का कोई अर्थ नहीं रह जाता ।

० आपकी कहानियों में सामाजिक दायित्व और यथार्थ के प्रति आग्रह तो दिखाई पड़ता है, परन्तु सर्वहारा क्रान्ति के प्रति, प्रतिबद्धता खुल कर सामने नहीं आने पायी । ऐसा क्यों ?

एक कम्यूनिष्ट होते हुए भी और क्रान्ति में विश्वास रखते हुए भी, मैं कला रचना के क्षेत्र में, लेखन के क्षेत्र में, कला और संरचना के क्षेत्र में किसी भी

विचारधारा को अपर्याप्त मानता हूं ; और दूसरे यह कैसे घटित होना चाहिए इसके लिए कहानी या उपन्यास की घटना नहीं लिखा जाना चाहिए, अगर मुझे लिखना ही है तो मैं यह लिखूँगा कि सर्वहारा आन्दोलन की आज वास्तविक स्थिति क्या है ? पार्टी स्पिरिट् की वास्तविक स्थिति आज क्या है ? एक पार्टी का कार्यकर्ता और आन्दोलन की जो भूमिकाएं हैं, वह जगह-जगह पर क्या रूप लेती हैं यानि उनकी वास्तविक स्थिति क्या होगी, उनका जो रचनात्मक विधान होगा वह मेरे लिए ज्यादा महत्वपूर्ण होगा। वैसे जो मैं इस वक्त कहानी लिख रहा हूं, वह कहानी एक नक्सलाइट की है जो अन्ततः एक गांधीवादी धरने के लिए प्रेरित करता है । मैं जानता हूँ कि इस पर हमारे नक्सलाइट मित्र, इस बात का जब कहानी आएगी तो बहुत बुरा मानेंगे कि आपने ऐसा क्यों दिखाया ; ऐसी रणनीति जो नक्सलवादियों (NAXALITES) या सी. पी. आई . एम. एल. की नहीं है । लेकिन मुझे इससे कुछ लेना देना नहीं है कि सी. पी. आई. एम. एल. की रणनीति क्या है ? सवाल यह है कि समाज और जनता के बीच में वह कूटनीति, या वह रणनीति या वह विचार-धारा एक वस्तुतत्व के रूप में कैसे घटित हो रही है, जैसे घटित हो रही है, उस तरह मैंने मार्क्सवाद को लेकर अपनी कई कहानियां लिखीं, जिसके लिए एक बार पैदल चलते हुए नामवर सिंह ने कहा कि भाई इधर सी. पी. एम. की विचारधारा आपकी कहानियों में बहुत दिखाई पड़ रही है, तब मैंने नामवर जी से कुछ कहा नहीं, पर मैं उनसे कहना चाहता था कि, एक ज़माने में आप मेरी कहानियों की आलोचना इसलिए करते थे कि मेरी कोई विचारधारा नहीं है, और आज इसलिए कहानियों की आलोचना करते हैं कि इसमें विचारधारा है । लेकिन दोनों समयों में विचारधारा का आग्रह नहीं, बल्कि इस बात का आग्रह था कि विचार कैसे वस्तु तत्व में परिवर्तित होते हैं, घटनाओं के बीच में बदलते हुए, तकलीफ पाते हुए, आगे बढ़ते हुए या पीछे हटते हुए, हमारे समाज में विचारधाराएं किस तरह का रोल अदा कर रही हैं ? क्या वह अवसरवादी रोल अदा कर रही हैं ? या क्या जनता की चेतना में, कुछ जोड़ रही हैं ? क्या परिवर्तन और विकास के

लिए स्थितियाँ पैदा कर रही हैं, या उसके प्रति एकदम उदासीन है ? ये बातें मेरे लिए एकदम महत्वपूर्ण हैं, मैंने स्वयं सैद्धान्तिक सर्वहारा क्रान्ति की बात नहीं की, क्योंकि सैद्धान्तिक सर्वहारा क्रान्ति के बारे में मैं अगर आज लिखूँगा तो उतना ही झूठा साबित होऊँगा जितना कि किसी ज़माने में `खेत उजागर` लिखकरके कृष्ण शंकर साबित हुए थे, या `बीज` उपन्यास लिखकर अमृत राय साबित हुए या `लाल परिवार` कहानी लिखकर नीलकान्त साबित हुए ।

एक कहानी भैरवप्रसाद गुप्त ने लिखी थी जिसमें भूख से मरती हुई औरत के सामने जब रोटी परोसी जाती है तो वह पूछती है कि किस गेहूँ की रोटी है, लोग बताते हैं कि अमेरिकन गेहूँ की रोटी है, वह प्राण त्याग देती है परन्तु अमेरिकन गेहूँ की रोटी नहीं खाती । इस समाज में अगर इतने विचार-वान निचले तबके के लोग हैं, बूढ़ी मरती हुई औरत अगर सिद्धान्त के लिए मर-मिटने को तैयार है, `बीज` उपन्यास का नायक हमारे समाज में सचमुच होता, अगर तेलंगाना मूवमेण्ट पर लिखा गया `खेत उजागर` उपन्यास का नायक हमारे बीच सचमुच अन्तर्वस्तु के रूप में मौजूद होता तो आज हमारे समाज का परिवर्तित और विकसित रूप कुछ दूसरा ही होता । लेकिन वे स्थितियाँ, विचारधारा को पहले ही सम्पूर्ण मानकर उसके हिसाब से कल्पित की गयी । फिर मैं वही बात कहूँगा कि जीवन में तेलंगाना एक समय में यथार्थ था लेकिन संकल्पना में क्योंकि वह यथार्थ बदल गया था और लेखक उस बदले हुए यथार्थ को न देख कर उस पुराने यथार्थ को देख रहा था, या 418 के अन्तर्गत आने वाला सड़ा हुआ गेहूँ हमारे ज़माने में सन् 1972 तक सारे लोग खाते थे, और कोई भी उसे खाने से मना नहीं करता था, क्योंकि हमारे यहाँ खाने के लिए पर्याप्त गेहूँ नहीं था । यदि सारे हिन्दुस्तान के लोगों ने उस वक्त मना कर दिया होता तो अमेरिकन साम्राज्यवाद की यह नयी पहल नहीं होती ।

इसीलिए किसी भी विचारधारा को मानने का वास्तविक सन्दर्भ यह है कि हम चाहते हैं कि हमारा समाज उस विचारधारा के अनुसार फैले और विकसित हो, परिवर्तन और विकास की स्थितियाँ आएँ, और जनता की वास्तविक मुक्ति संभव हो, किन्तु नहीं संभव हो रही है। अगर वास्तविकता में नहीं संभव हो रही है, जैसा कि जो मार्क्सवाद का जनाधार है, वह किस रूप में दिखाई पड़ रहा है ? क्या वर्गों के आधार पर हमारी जनता एकत्र है ? ऐसा नहीं है, बल्कि उसकी जगह जातियों के आधार पर एकत्रीकरण या पोलेराइजेशन (POLARISATION) की बातें चल रही हैं। अब अगर एक मार्क्सवादी होने के नाते मैं अपनी जनता की एकता वर्गाधारित दिखाऊं तो यह झूठ है क्योंकि वर्गाधार को तोड़ने वाली शक्तियां जातिगत आधार पर इकट्ठी दिखाई दे रही हैं। ऐसी स्थिति में अगर साहित्य में वर्गाधार के आधार पर एक सर्वहारा क्रान्ति की बात करेगा तो वह बिलकुल झूठ होगी, यानि कि राजा विश्वनाथ प्रताप सिंह का किया हुआ ज्यादा सच, आज बनिस्पत जी० टी० रणदिवे या ज्योति बसु का किया हुआ। उसका यह कारण नहीं कि वैचारिक धरातल पर विश्वनाथ प्रताप सिंह सही हैं और जी० टी० रणदिवे या ज्योति बसु गलत हैं ; बल्कि हमारे समाज की कुछ परिस्थितियाँ ऐसी हैं जिसमें एक गलत विचारधारा से सम्पन्न आदमी समाज को और अधिक खराबियों की तरफ ले जाने वाला सही दिखाई दे रहा है, और जो शोषित जनता, जनता के लिए निर्मित सिद्धान्तों को मानने वाले लोगों का एकारुक जनाधार नीचे खिसकता हुआ दिखाई दे रहा है। वह उस जनाधार को बनाने के लिए जातिगत और जातिवादी समाधानों से समझौता करने के लिए कहीं न कहीं राजनीतिक तौर पर तैयार है, अब यह एक यथार्थ है। अगर इस यथार्थ को छोड़ कर कोई सर्वहारा क्रान्ति के बारे में सोचेगा तो वह साहित्य में ही नहीं, समाज में भी और राजनैतिक धरातल पर भी साथ ही विचारधारात्मक एवं विकासात्मक स्थितियों के धरातल पर भी उतना

ही झूठा साबित होगा, जितना कि साहित्य में । इसीलिए मेरी कहानियों में सर्वहारा क्रान्ति के प्रति, प्रतिबद्धता नहीं आने पायी ।

o छठे दशक के बाद कहानीकारों ने कहानियों में फेंटेसी, प्रतीकात्मकता और आयरनी आदि का प्रयोग करके कहानी को अधिकाधिक दुरूह बना दिया, इससे कहानी अपना एक बड़ा पाठक वर्ग खो दे रही है । अत: क्या इससे रचनाकार का वास्तविक दायित्व पूरा होगा ?

यह सभी लेखकों, कहानीकारों पर छोड़ देना चाहिए कि वे फंतासी का प्रयोग करते हैं या नहीं, प्रतीकात्मकता का प्रयोग करते हैं या नहीं । अगर उस तरह से देखिए तो `कफ़न` कहानी भी एक फंतासी है ; लेकिन उसकी विश्वसनीयता बनी हुई है, बावजूद उसके एक अविश्वसनीयता का माहौल है, परन्तु वह अपनी बात को कहने के लिए कलात्मक `रिवाइस` है । इसी प्रकार फंतासी एक कलात्मक `रिवाइस` एक कलात्मक तरीका है अपनी बात को कहने का ; जैसे `पक्षी या दीमक` में `ब्रह्म राक्षस का शिष्य` या `विपात्र` में मुक्तिबोध ने इसी कला का प्रयोग किया है। यह हर लेखक पर छोड़ देना चाहिए । जो कहानी और कहानी पाठकों के बीच में अंतराल है उसका कारण यह नहीं कि कहानी में फंतासी है या कहानी में प्रतीकात्मकता बढ़ गयी । उस अंतराल का कारण दूसरा है । अक्सर इस अंतराल को नजरंदाज करके कारण को फंतासी और प्रतीकात्मकता शिल्प आदि बताया जाता है ।परन्तु उसका कारण हमारे समाज की गरीबी है । आज हमारे समाज में साठ, सत्तर या लगभग अस्सी प्रतिशत लोगों के लिए खाने-कमाने यानि अपनी रोजी रोटी चलाने के लिए, और जो बड़े लोग हैं उनको अधिक धन जमा करने से किसी भी तरह फुर्सत नहीं है । यह दुहरे तरीके हैं जो सुविधा सम्पन्न हैं । वह और अधिक सुविधा सम्पन्न होने के लिए व्याकुल है, जो तक्लीफ में है, यातना में है, उनको दो वक्त की रोटी भी मुहाल है, ऐसी स्थिति में साहित्य जो एक कला है, जो संरचना है,

वह आदमी से, अपने समाज से, अपने इर्द-गिर्द के लोगों से फुर्सत मांगती है और वह फुर्सत तब आदमी के पास होती है जब वह बहुत सारी उन समस्याओं से निजात पा जाय जो उनको फुर्सत से वंचित करती हैं। चूँकि हमारे समाज में फुर्स त नहीं है, अधिकांश लोगों के पास इसलिए कहानी पढ़ने और कहानी लिखने के बीच में अंतराल है, न कि फंतासी के कारण न तो प्रतीकात्मकता के कारण।

इससे पाठक वर्ग खोया नहीं है, यह एक गलतफहमी है। अच्छी कहानी वह चाहे जितनी प्रतीकात्मक हो, किसी भी फेंटेसी में लिखी गयी हो, उसे पाठक वर्ग पढ़ता है। लेकिन पाठक वर्ग कम है। एक कारण तो मैंने पूर्व में ही बताया। दूसरा यह है कि हमारा हिन्दी क्षेत्र बहुत विल्प है भौगोलिक या जियोग्राफी के लेबल पर। इसमें जगदलपुर से बस्तर तक गोण्डा, धनबाद तक उधर समझ लो कि हरियाणा तक पूरी की पूरी जनता बिखरी हुई है। जनता की बोलचाल की भाषा उसकी समस्याएं, बातचीत करने का ढंग, उनके भीतरी बुद्धिवर्ग उनमें अलग-अलग जो लेयर्स हैं। अब लेखक जो अपनी कहानी मान लो कि झरिया और धनबाद की खानों के बारे में लिखता है तो बस्तर में रहने वाले आदमी के लिए वह अजनबी है, हरियाणा में रहने वाले आदमी के लिए वह अजनबी है। ये बहुत सारे कारण हैं जिससे पाठक वर्ग उसने खोया है, यह नहीं कि उसका कारण फंतासी या प्रतीकात्मकता है; बल्कि कहानी को कलात्मक बनाने के लिए फंतासी और प्रतीक के जो प्रयोग हैं, उसने हिन्दी कहानी के शिल्प में ही नहीं, उसके कथन धर्मिता में भी बहुत कुछ जोड़ा है, और कहानी एक वर्ड-स्टैण्डर्ड यानी विश्व मानदण्ड के हिसाब से बहुत ऊँचाई पर स्थापित हुई। इसने कहानी में योगदान दिया है न कि कहानी को कमतर किया है।

० छठे दशक के बाद कहानीकारों ने यौन सम्बन्धों का खुलकर चित्रण क्यों किया ? इसके माध्यम से कहानीकार अपनी किस रचनाधर्मिता को उजागर करना चाहता है ? साथ ही इस प्रकार के चित्रण के पीछे कौन-कौन से कारक काम कर रहे थे ?

इसके लिए मेरे ऊपर बड़े-बड़े कई आरोप पत्र गढ़े गए । लोग शुरू से ही लेकर `रक्तपात`, `रीछ`, `शिनाख्त` आदि कहानियों की आलोचना करते रहे । कुल मिलाकर मैं यह कहना चाहूँगा कि यह एक तरह की नासमझी पर सारा प्रयोग है । उसके उस हिस्से पर लोगों का ध्यान ज्यादा गया जो यौन चित्रण से सम्बन्धित थे, उसके कारक तत्व क्या थे ? कारण क्या था ? उस पर लोगों का ध्यान नहीं गया । जैसे `रक्तपात` कहानी में एक ऐसी माँ है जो विस्मरण में चली गयी है, विच्छिप्त है, बेटे के स्मृति में ऐसा हुआ, वह बेटा घर आता है, उस बेटे की पत्नी को माँ यानी अपनी सास के प्रति कोई संवेदना नहीं है, वह युवा है, वह अपने पति से यौन सम्बन्ध चाहती है, लेकिन पति अंत तक माँ का जो विस्मरण है, उसकी तकलीफ, उसके पूरे विहेबियर, पूरे व्यवहार, उसके घर जाने में, अपने घर के चित्रण में, उस रात में, उस माँ को देखने में और इसी प्रकार सारे चित्रण में जैसे कि सेक्स एक गौड़ चीज है । माँ की तकलीफ ज्यादा महत्वपूर्ण है, सेक्स उसमें इस बात को उभारने के लिए आया है कि मातृत्व बड़ा है कि तात्कालिक क्षणिक यौन आनन्द ; दोनों में एक युवा दम्पति या एक बेटा क्या करता है ? किस तरफ बढ़ता है ? क्या माँ को नजरंदाज करके वह अपने यौन सम्बन्धों में लिप्त हो सकता है या नहीं । अब इस बात पर ध्यान नहीं दिया गया कि वह ऐसा नहीं कर सकता, वह एक विवशता में पड़ा हुआ है । वह पत्नी के साथ दुर्व्यवहार भी नहीं करना चाहता है ; लेकिन उसके भीतर जैसे अपने माँ की विच्छिप्तता की आग-सी लगी हुई है । अब इस बहुत ही गहरे मानवीय सम्बन्धों की तकलीफ की ओर लोगों का ध्यान न जाकर यौन सम्बन्धों पर ही टिक जाता है ।

इसी तरह `रीछ` कहानी को कुछ लोगों ने एकदम यौन सम्बन्धों की कहानी समझ लिया ; जबकि उस कहानी में चित्रित किया गया है कि अगर आप अतीत को नहीं भुलाते तो दो स्थितियां पैदा होंगी या आपके सामने दो विकल्प हैं। कि या तो आप अतीत को खा जाइए या अतीत आपको खा जाएगा। उस कहानी में यह घटित होता है कि अतीत केवल अतीत की बात है। उसे वर्तमान में लाकर समस्याएँ नहीं खड़ी करनी चाहिएँ। नहीं तो वह एक जंगली जानवर या रीछ की भूमिका अदा करता है। अब मान लो मैं कहानी सिर्फ इस फार्मूले पर लिख देता तो क्या होता यह कहानी सिर्फ कहानी होती। इस बात को कहने के लिए जैसा कि राममनोहर लोहिया कहा करते थे कि `आदमी को पीछे देखू नहीं होना चाहिए, आगे देखू होना चाहिए` यदि आदमी पीछे देखू होता है तो क्या फर्क पड़ता है इस बात को कहने के लिए मैंने एक प्रेम और वात्सल्य के मिश्रण का सहारा लिया।

एक ऐसा व्यक्ति है जिसका एक अतीत है। वह उसको भूल ही नहीं पाता इसलिए वहअतीत एक भालू के बच्चे की तरह उसका पीछा करता है, यदि कोई व्यक्ति किसी भी अतीत बीते हुए दिनों की कोई दुर्घटना भी याद करता है तो वह रोमांचित हो उठता है। इसी तरह जब कोई पिछले प्रेम प्रसंग को याद करता है तो वह पहले भालू के एक छोटे और बड़े ही प्यारे बच्चे की तरह उस व्यक्ति के पीछे पीछे लगा हुआ आता है। धीरे-धीरे वह बच्चा बड़े होने के साथ खूँखार होने लगता है। खूँखार किस संदर्भ में ? भारतीय संदर्भ में वह उसको छिपाने लगता है, कहीं घर में, जो बेसमेंट है उसमें वह छिपाता है। वह अपने दाम्पत्य जीवन को नष्ट नहीं होने देना चाहता है ; लेकिन वह अतीत का प्रेम है, वह बार बार उलट कर आता रहता है, कभी वह दीवारों पर, कभी खिड़कियों के शीशों पर पंजे से खुरचकर निशान बनाता है। यह सारा स्मरण का घर है, स्मृतियों का घर है, वह बार-बार पहले एक बच्चे के रूप में आता है, धीरे धीरे खूंखार होने लगता है क्योंकि दाम्पत्य में एक विश्खलन होने

का डर है । कोई भी अपना दाम्पत्य जीवन चाहे वह एक मध्यवर्गीय समाज का व्यक्ति हो, तोड़ना नहीं चाहता है । हम अपना दाम्पत्य जीवन अपने पुरातन प्रेम के लिए नष्ट करना नहीं चाहते । इस पर भी यदि बाल-बच्चे हों, बीबी हो तो कोई अपना दाम्पत्य जीवन क्यों नष्ट करेगा ! प्रेम सब लोग करते हैं परन्तु इसमें इस बात का चित्रण है कि वह रोमांस, वह अतीत कैसे सरोचता है ? किस तरह से लड़ता है, किस रूप में घायल करता है, किस हद तक खून-खून करता है, उस आदमी को उसके दाम्पत्य जीवन को एक प्रकार से नरक में प्रवर्तित कर देता है और अन्ततः क्या होता है ? दो ही रास्ते बचते हैं । या तो हम अतीत के उस रीछ को मार डालें जिसके लिए वह अंतिम युद्ध करता है, या वह अतीत ही उसको मार दे । जब वह सोचता है कि वह उसको पछाड़ कर अब स्वतंत्र है, उस समय भी अतीत नष्ट हुआ नहीं होता है, तभी वह उछाल मारता है और उसका ब्रह्माण्ड फोड़ कर ससके सिर को दो टुकड़े कर देता है । यह कहानीकार का निर्णय है कि वह इन दोनों निर्णयों में से क्या निर्णय करता है ? वह अतीत को हमेशा के लिए नष्ट करने का निर्णय करता है या वह इसको वर्तमान रूप में ले आता है । इन सारे प्रयत्नों के बावजूद, युद्ध के बावजूद, अंततः अतीत दुःखद रूप से तुमको नष्ट करने के लिए आकर बैठ जाता है ।

अब यह कहानी है, इस कहानी को लेकर लोगों ने सेक्स की तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की । अरे भाई ! कहानी आप ध्यान से पढ़िए, कहानी में जो पोरसन बाकायदा थोड़े मोटे टाइप में छपे हैं, उन पर ध्यान दीजिए । आप कहानी को एक सामान्य, एक बहुत ही कम बुद्धि वाले पाठक की तरह पढ़ते हैं । यहाँ तक कि बड़े-बड़े आलोचकों ने एक कमबुद्धि वाले पाठक की तरह इस कहानी को पढ़ा है । आज के पहले 'अनीश उपाध्याय' ने एक लम्बा क्वेश्चनेयर हमारे पास भेजा था कि इसका जवाब कल्पना में छापना है, मैंने उसका जवाब दिया था, पता नहीं उन्होंने उसे छपवाया या नहीं । लेकिन किसी ने यह प्रश्न नहीं किया ।

इसी तरह `सेक्स` पर सम्भोग पर मैंने सिर्फ एक कहानी लिखी है और वह कहानी है `शिनाख्त` ।उस कहानी में यह है कि अगर हम इतना ही चरित्रहीन न होते तो हम देवदास होते, यानी सेक्स आदमी को देवदास नहीं बनाता, देवदास बनने के लिए बड़े त्याग की आवश्यक्ता है । यह बात इस कहानी में कही गयी है कि यह प्रेम नहीं है, यह घटिया किस्म का सेक्स है । इस कहानी के अंत में जब वह निकलता है तो चारों ओर धुंध और आँधी का चित्रण है, इसके माध्यम से यह उभारा गया है कि यह विकृत सेक्स का निराकृत रूप है ।

मैंने अभी `प्रेम` नामक कहानी लिखी तो इस पर लोगों को लगा कि कैसे फिर मैंने ऐसा लिखा । यह कहानी मैंने जानबूझ कर लिखी कि लोगों को यह नहीं समझना चाहिए कि मैंने इस तरह की कहानी लिखना छोड़ दिया । इसमें एक बहुत ही यंग लड़के का प्रेम एक लड़की से होता है । उस लड़की की दादी कहती है कि तुम लड़के के साथ भाग जाओ । यह कहानी फैंटेसी में है, यह एक आदिवासी समाज की सातवीं-आठवीं शताब्दी की कथा है । वह लड़की कहती है कि नहीं मैं इसके साथ नहीं जाऊंगी । यह लड़की जो बोलती ही नहीं थी, कहानी के दौरान वह सिर्फ अंत में बोलती है, उसके पहले वह लड़के का कोई विरोध नहीं करती, वह उसको खूब सजाता है, उसके साथ लेटता भी है, फिर भी कुछ सेक्स का बर्ताव नहीं है, लेकिन जैसा कि रोमांस की हद, प्रेम की हद और प्रेम का अतिरेक है । उस प्रेमातिरेक से प्रभावित होकर रात के अंधेरे में लड़की की दादी उठती है, कहती है कि जब तक वे लोग जंगल से लौटें, तुम लोग भाग जाओ । लड़की कहती है कि मैं नहीं जाऊंगी, यह भगोड़ा है, यह मुझे ले जायेगा, घर में रखेगा या फिर प्रेम करेगा और मैं कुढ़ूँगी, तड़पूँगी । मुझे छोड़ देगा और बार-बार प्रेम करेगा और मैं मरूँगी जिऊँगी, यह प्रेम करेगा फिर करेगा, कई बार प्रेम करेगा ।

लड़का कहता है मैं भाग आया हूँ । मुझे अपने भाइयों से डर है । वे आलसी

हैं । मुझे कैसेलोगों से जिनके पास काम नहीं होता, मुझे उनसे डर लगता है, मैं भाग आया ।

इसके बाद वह लड़का उस लड़की से पैंतिस वर्ष बाद मिलने आया । जंगल के किनारे एक व्यक्ति घोड़े से उतरता है और अपने अंगरक्षकों को नदी तट पर छोड़ कर घर के दरवाजे पर आता है और आवाज देता है । औरत निकलती है और उसको पहचान लेती है । तत्पश्चात् घर के अन्दर ले जाती है । इसके बाद इधर-उधर की बातें होती हैं । कोई बहुत फर्क नहीं है उनमें । उसके बाद वह पूछता है कि बच्चों के बाप कहां गये हैं ? वह सहज भाव से कहती है - झगड़ कर भागा है, कई दिन हो गये, फिर लौट आता है । आ ही जायेगा । लड़कों के बारे में बताती है कि दो हैं । एक सोलेह साल का होकर भी पाँच वर्ष का ही है और दूसरा लकड़हारा है जो गोशाले में काम करता है ।

वह व्यक्ति अपना परिचय राजा का ज्योतिषी के रूप में देता है । बच्चों के बारे में कहता है कि बड़ा लड़का राजा का अंगरक्षक और लड़की राज-नर्तकी के पद पर है, उसका नाच देखे बिना राजा को नींद नहीं आती । परन्तु छोटे लड़के के बारे में कहता है कि वह संन्यासी हो गया । बड़े मजे में है, बड़े महंत जी की खूब सेवा करता है, बूढ़े हो गये हैं, जाने ही वाले है और जल्द ही गद्दी पर बैठायेंगे । यानी जो संन्यासी है वह भी कैरियर में है ।

कहानी आज की है । एक आदमी अपने आई० ए० एस० दोस्त के पास ठहरा हुआ है, उसके घर में सोया हुआ है और उसका दोस्त आफिस गया हुआ है । एक फोन आता है, आवाज आती है, आप फलाँ साहब बोल रहे हैं ? आप मेरी माँ को जानते हैं ? हाँ आज के पैंतिस साल पहले तब मेरी माँ मेरी उम्र जितनी है उतने साल की थी, उसका यह नाम है । वह कहता है कि अच्छा तुम लोग यहाँ हो । जवाब में लड़का कहता है - हाँ मैं यहीं हूँ, माँ ने आप को बुलाया है । वह कहता है कि मेरा फोन कैसे मिला ? अखबार के दफतर से, हालाँकि आप बहुत बूढ़े हो गये हैं, माँ ने कहा आप को ले चलूँ । वह कहता है कि नहीं मैं कला आऊँगा ।

जब वह नहा धो कर निकलता है, भीड़ में धंसता है, `एण्ड द स्टोरी लीप्स` । कहानी यकायक फंतासी का ल्प ले लेती है । एक लड़का आठवीं सदी की फंफाई हुई नदी के किनारे नंग-धड़ंग खड़ा है और कहानी के अंत में जब वह आदमी घोड़े पर बैठ कर चला जाता है तो एकाएक कहानी वर्तमान में चली आती है । वह आदमी टैक्सी करके उस औरत के यहां आता है । वह टैक्सी से चौराहे पर उतरता है, पैसा देने के पश्चात् टैक्सी वाला जाने को हुआ तो वह आवाज दे कर रोकता हुआ कहता है कि अभी तो मैं उतरा नहीं, फिर उसने टैक्सी का पिछला दरवाजा खोल कर एक नर कंकाल को निकाल कर कन्धे पर लादता है । इधर-उधर देखता हुआ गली में मुड़ जाता है, घर का नम्बर पहचान कर ठठरी कन्धे से उतारता है और फिर दीवार से टिकाकर घंटी बजा देता है । कहानी यहीं समाप्त हो जाती है ।

यह स्टोरी अच्छी है । इसमें बहुत सारे लोगों को प्रेम दिखाई पड़ता है । इससे अच्छा रोमांस हिन्दी में किसी ने नहीं लिखा, और न ही इतना गहरा रोमांस, इस पर भी लोगों को सन्देह है । वास्तविकता यह है कि मैंने सेक्स की विकृतियों का नहीं बल्कि सेक्स की निर्थकता पर अवश्य ही कहानियां लिखीं । एक इस तरह की भी लिखी वह इसलिए कि जिसको बहुत बड़ी चीज नयी कहानियों के दौरान माना जाता था, वह जो बड़े रोमांटिक और काल्पनिक तरीके से चित्रित किया गया उसको मैंने ज्यादा यथार्थ ढंग से चित्रित किया है, बस कारण यही है ।

० सेक्स का कहानियों में प्रयोग के पीछे कारण क्या है ? और इस मानसिकता के पीछे कौन-कौन से कारक काम कर रहे हैं ?

कुछ भी हो सकता है यह एक आक्रान्तता है, यह वस्तु की आक्रान्तता है कि आप को कौन सी चीज प्रभावित करती है, आपकी संकल्पना में लिखने के लिए कौन सी चीज आकर्षित करती है, आपकी कल्पना को प्रेरित करती है

इत्यादि-इत्यादि । अब इसमें अगर किसी लेखक को यौन-तत्व बहुत अधिक आकर्षित करते हैं तो जाहिर है वह लिखेगा ही । लेकिन हमारे समाज में यह बहुत छोटा सत्य है, खास कर हमारे समाज में इतनी बड़ी समस्याएं हैं, इतनी बड़ी तक्लीफें हैं कि उसमें व्यक्ति के स्तरपर ये चीजें बहुत छोटी हैं और निरर्थक हैं । अत: यदि इनके बारे में लिखना भी चाहिए तो एक कथात्मक छोटे से हिस्से के रूप में लिखना चाहिए, यह हो सकता है । लेकिन एक बहुत बड़े हिस्से के रूप में लिखना बहुत अच्छी बात नहीं है । समाज में बहुत सारी चीजें घटित होती रहती है, मैंने फिर कहा सारी चीजें जो समाज में घटित होती हैं, वह संकल्पना का यथार्थ है, रचना का यथार्थ है, यह कोई जरूरी नहीं कि वे बने और बनने के बावजूद यदि वे समस्याएं हमारे समाज की अन्तर्धारा, परिवर्तन और विकास की स्थितियों को बहुत दूर तक परिभाषित और निर्देशित नहीं करती तो उनको अपने लेखन का हिस्सा एक कहानीकार को नहीं बनाना चाहिए या कम बनाना चाहिए । कारक तत्व कुछ नहीं है । केवल लेखक की इच्छा, उसके पीछे कोई सामाजिक कारक तत्व नहीं है ; ऐसा नहीं कि समाज में सेक्स बहुत ज्यादा घटित हो रहा है, इसीलिए सेक्स पर बहुत ज्यादा लोग कहानी लिख रहे हैं ।

o इनके पहले जो कहानीकार थे उनकी रचनाओं में सेक्स का चित्रण कम दिखाई देता है परन्तु ज्यों-ज्यों नई पीढ़ी के कहानीकार आ रहे हैं उनमें सेक्स चित्रण की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है, आखिर क्यों ?

मुझे ऐसा नहीं लगता, बल्कि यह लग रहा है कि इधर के लेखक यौन सम्बन्धों पर कुछ कहानियां जरूर लिख रहे हैं परन्तु उनका प्रतिशत बहुत कम है ।

o यहां तक पत्रिकाओं में जो चित्र मुख्य पृष्ठ पर निकलता है, यद्यपि वह उतना खुला नहीं होता परन्तु देखने पर लगता है कि लेखक इस के माध्यम से काफी कुछ उभारना चाहता है।

हाँ, यह बहुत कुछ उम्र का भी फर्क है। इस बीच जो नये कहानीकार हैं, वे बहुत यंग हैं, जवान हैं, उनको ये चीजें भाती हैं, क्योंकि अभी उनमें समाज को देखने के लिए, समाज के विस्तार को देखने के लिए अनुभव उस हद तक नहीं आने पाया है, इसलिए वे इन चीजों को ज्यादा अपनी कहानियों का अंग बनाते हैं। लेकिन धीरे-धीरे वे भी जब समाज में धसेंगे, और समाज के विस्तार को, उसकी समस्याओं के विस्तार को अनुभव करेंगे तो बहुत सारी दूसरी चीजों को भी ग्रहण करेंगे, और ग्रहण कर भी रहे हैं। पहले की अपेक्षा आज कहानियों में यौन तत्व का चित्रण मेरे विचार से कम है, ऐसा नहीं कि बिलकुल नहीं हो रहा है, लेकिन कम हो रहा है।

o अभी कुछ समय पहले देवदास की चर्चा आई थी, जिसको आपने शुद्ध प्रेम से युक्त कहा। अब प्रश्न उठता है कि प्रेम रहित सेक्स और प्रेम युक्त सेक्स इन दोनों में नैतिक और अनैतिक क्या है? किसको हम नैतिक एवं किसको अनैतिक मानेंगे?

प्रेम रहित सेक्स तो बिलकुल अनैतिक है, वह व्यभिचार है, वह बलात्कार भी है, अगर मान लीजिए औरत तैयार भी है और यदि आप में वह प्रेम नहीं है तो वह एक प्रकार का अर्द्धबलात्कार ही है। उसको हम बहुत महत्व नहीं देते हैं। लेकिन दूसरा जो प्रेम युक्त सेक्स है उसके लिए दोनों पार्टियों की स्वीकृति होनी चाहिए। अगर सेक्स रहित प्रेम है और वह चलता है तो इसमें एक प्रकार की असंभवता है जिसके पीछे सामाजिक कारण हैं। देवदास के समाज में जहां इतने अधिक सामाजिक बंधन हैं, उस सामाजिक बंधन से मुक्त होकर एक लड़की मुहल्ले

मुहल्ले के एक लड़के से प्रेम नहीं कर सकती है यदि वह प्रेम करती भी है या एक लड़का प्रेम का इजहार कर भी सकता है तो भी उस प्रेम को प्राप्त नहीं कर सकता है। किसी भी हालत में वह न तो सेक्स को और न ही प्रेम को प्राप्त कर सकता है। ऐसी स्थिति में, सेक्स रहित प्रेम सामाजिक कारणों से उत्पन्न होते थे ; और प्रेम युक्त सेक्स भी काफी छिपाव-दुराव के कारण कभी-कभी होता था, लेकिन उसकी परिणतियां क्या होती थीं, गर्भपात, औरतों के मरने में। उस ज़माने में गर्भपात जैसे साधन पूरी तरह वैधानिक नहीं थे और आज भी बहुत सारी इस तरह की लड़कियों का जीवन ही खराब हो जाता है ; चाहे भले ही प्रेम के बाद सेक्स की पूर्ति क्यों न हुई हो।

प्रेम रहित सेक्स तो लगभग बलात्कार है, लेकिन सेक्स रहित प्रेम केवल सामाजिक बाधाओं की वजह से ही संभव है। अत: कोई लड़का या कोई लड़की ऐसा नहीं चाहेगा। सेक्सुअल फुलफिलमेंट प्रेम को मुक्त करता है, बढ़ाता है उसका अंत नहीं करता। अगर प्रेम में सेक्स नहीं मिलता है तो उस अवरोध के पीछे सामाजिक कारण है, जो पुराने समाज में ज्यादा था परन्तु आज भी ये कारण मौजूद हैं।

० आपकी कहानियों में आत्मपरक प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति अधिक उभर कर सामने आयी है ; इसके बारे में आपका क्या विचार है ?

मेरी शुरू की कहानियों में और संग्रहों में व्यक्तिवादी शैली का स्तर है ; लेकिन उसका कारण ऐतिहासिक या जिसको न समझने के कारण साठ के बाद वाले कहानीकारों पर अक्सर व्यक्तिवाद का आरोप लगाया जाता है। साठ के पहले जब नई कहानी आन्दोलन पूरी तरह चल रहा था, और इस आन्दोलन के अन्तर्गत लिखने वाले बड़े-बड़े लेखक चाहे वह निर्मल वर्मा हों, कृष्णा सोबती हों, मन्नू भण्डारी, मोहन राकेश, मार्कण्डेय हों, सारे लेखकों की रचनात्मक मानसिक बनावट आजादी के पहले अपने किशोर वय की है। इनमें से बहुत से लेखक सन् 1942 के आन्दोलन के प्रत्यक्षदर्शी थे, और कुछ ने इसमें भाग भी

लिया था जैसे कि फणीश्वरनाथ रेणु । कहने का मतलब यह है कि सारे नई कहानी आन्दोलन से सम्बद्ध लेखकों के लिए आजादी एक मूल्य थी, एक वैल्यू, एक आदर्श, एक नैतिक उपलब्धि थी, इसीलिए आजादी के बाद जब नई कहानी आन्दोलन शुरू हुआ तो इनकी कहानियों में भी जिन सामाजिक आन्दोलनों का चित्रण है, वह आदर्शात्मक है, वह एक नीति से बंधा हुआ है । रेणु की कहानियों में निर्मल वर्मा और मार्कण्डेय की कहानियों में, चाहे वह घनघोर यथार्थवाद की ही कहानियां हों, उसमें काफी रोमाण्टिक सजगता दिखाई पड़ती है, परन्तु सब में एक नैतिक मूल्य लगा हुआ है । क्योंकि आजादी की उपलब्धि उनके लिए नैतिक उपलब्धि है । इसलिए यदि रोमांस है, प्रेम है तो वह भी एक नैतिकता के प्रश्न के साथ-साथ जोड़ा हुआ है । अगर कोई परिवर्तन, कोई यथार्थ प्रश्न, कोई बीमारी है तो उसके साथ भी एक नैतिक लगाव है जैसे 'बादलों के घेरे' जैसी कहानी में एक समग्र नैतिकता के साथ उस मरीज की पूरी मानसिकता का चित्रण पूरे सांस्कृतिक माहौल में हुआ है ।

किसी को भी यह अंदाजा नहीं था कि नेहरू द्वारा संचालित स्वतंत्रोत्तर भारत में जो आजादी का मूल्य था वह धीरे धीरे विघटित होने लगेगा । उसको सबसे पहले जिसने पहचाना वह कहानीकार नहीं बल्कि मूलतः कवि था । वे हैं गजानन माधव मुक्तिबोध जिन्होंने यह पहचाना कि आजादी एक अधूरा स्वप्न है । उन्होंने यह भी पहचाना कि आजादी के बाद जो हमारे देशी लोग हैं जिनको प्रेमचन्द ने कभी 1932 ई० या 1936 ई० में कहा था कि - गोरे साहब की जगह अगर काले साहब आ भी जायं तो भी हम आजादी से उतनी ही दूर रहेंगे, जितना आज हैं । तो वह सब सैंतालीस के बाद घटित हो रहा था, गोरे साहब की जगह काले साहब आ गये और उन्होंने हमारी आजादी का पूरा का पूरा उपभोग अपनी जनता के शोषण के रूप में करना शुरू कर दिया, हालांकि शोषण के जो अंग-उपांग थे, वे एकदम प्रत्यक्ष रूप से आजादी के तुरंत बाद नहीं दिखाई देते थे, जवाहरलाल नेहरू की वजह से एक पूरा का पूरा गांधियन एटीट्यूड की वजह से, एक मूल्यबोध, एक नैतिक प्रश्न, एक नैतिकता का लगाव

एवं आजादी की लड़ाई का अभी पूरा का पूरा असर था, उस समय के नेताओं पर, जिससे भ्रष्टाचार बदनीयत, बुराइयां और शोषण यह सीधे-सीधे नहीं दिखाई दे रहा था। लेकिन जो प्रजातांत्रिक स्पैराश्टर्स जो उसका पूरा का पूरा यंत्र प्रजातंत्र था उसमें यह चीज अपने आप में निहित है। क्योंकि हमने अंग्रेजों से ये चीजें उधार ली हैं।

अब यह जो विघटित मानसिकता थी, जो ऊपर से दिखाई नहीं दे रही थी, उसको मुक्तिबोध ने सबसे पहले उभारा, इसलिए अंधेरे की कविता का जो शीर्षक है, वह उसका सबसे बड़ा सिम्बल है; कि प्रजातांत्रिक भारत एक नए अंधेरे में प्रवेश कर रहा है, जिसमें फांजी दस्तों से लेकर डोमा उस्ताद तक आज के जो माफिया हैं, आज का जो धन लोलुप पूरा का पूरा संसार है, भारतीय समाज है, वह सारा का सारा अपने अन्धेरे में मार्च करता हुआ दिखाई पड़ रहा है। यह माहौल था जिसमें हमने शुरू की कहानियां लिखीं। माहौल क्या था ? यानी आजादी वास्तव में एक विघटित मूल्य के रूप में हमारे सामने उपस्थित थी। जब तक लड़ाई बाहर वालों से होती है तो आदमी सीना तान के खड़ा हो जाता है; किन्तु जब लड़ाई अपने घर में होती है तो आदमी अन्तर्मुखी हो जाता है, वह मुंह नीचे लटका लेता है। जब लड़ाई अपने बाप से, अपनी माँ से, अपने भाई या अपने परिजनों से होगी तो आदमी तुरंत कत्ल कर देने के लिए तैयार नहीं होगा, वह मुंह लटका कर दूसरी तरफ चला जाता है। यानी जब तक हमारी लड़ाई एक उपनिवेशवादी सरकार से थी, तब तक तो यह लड़ाई या संघर्ष सीधा था, लेकिन जब विघटित मूल्यों का संघर्ष अपनी ही जनता से, अपने ही लोगों से होना शुरू हुआ तो हमारी जनता में, हमारे बुद्धिजीवियों में एक अन्तर्मुखता का विकास हुआ। सन् साठ के बाद कहानियों में अन्तर्मुखता का असली कारण यह ऐतिहासिक दाण है न कि व्यक्तिवादिता। यह कहानीकार की अपनी व्यक्तिगत अभिव्यक्ति नहीं है। इस ऐतिहासिकता को न समझने के कारण सन् साठ के बाद वाली कहानी का विश्लेषण बहुत कुछ गलत हुआ।

अब प्रश्न उठता है कि क्या कारण था अन्तर्मुखता का या अपने लोगों से ही लड़ाई का ? घूस लेने वाले, भ्रष्टाचार करने वाले, हमें सताने वाले, हमारा शोषण करने वाले, बाहर का कोई विदेशी नहीं था ; वह अपने ही देश की एक प्रजाति थी । वह प्रजाति जो कल तक इण्डियन नेशनल कांग्रेस के झण्डे के तले खड़ी थी, अपने जनता की लड़ाई-लड़ने के लिए । और जनता को भी, बुद्धिजीवियों को भी, नेशनल बुर्जुआजी एवं किसानों तथा मजदूरों को सबको साथ लिये हुए वही लोग एकदम अलग होकर, बाकी लोगों को अलग कर के, एक तरह से प्रारम्भिक भ्रष्टाचार में लिप्त हो गये ।

यह वह समय था, दुरूह और कठिन समय था जबकि कोई गाइड लाइन नहीं थी, कोई निर्देशक शक्ति नहीं थी, या कोई विचारधारा नहीं थी । सन् 1953 और फिर सन् 1957 तक प्रगतिशील लेखक संघ का सफाया हो गया । लेखन और बुद्धिजीवियों के क्षेत्र में कोई ऐसी विचारधारा नहीं रह गयी जो अपने लोगों के द्वारा किये हुए शोषण के खिलाफ वह नवयुवकों को, नए लोगों को और बुद्धिजीवियों को एक मत करे, और खड़ा हो सके ; क्योंकि उस वक्त सब लोगों को यही लगता था कि नई नई आजादी है - - है, यानी बुद्धिजीवियों को भी लगता था । जो सी०पी०आई० सन् 1952 के एलेक्शन में अपोजीशन की सबसे बड़ी पार्टी थी, उसका तेलंगाना आन्दोलन में सफाया हो गया । लोग अण्डरग्राउण्ड हो गये थे, कुछ जेलों में सड़ रहे थे, कुछ गिरफ्तार हुए । इस प्रकार प्रगतिशील लेखक संघ भी समाप्त-प्राय हो गया । एक ऐसी स्थिति में जो नया लेखक संघ आया, उसके सामने निर्देशित करने वाली, उसको गढ़ने वाली, उसको रूप देने वाली कोई विचारधारा नहीं थी । क्या कारण है कि केदारनाथ सिंह का पहली कविता संग्रह सन् 1960 में छपा । उसके बाद दूसरा काव्य संग्रह 1980 में छपा ? कभी सोचते हो, इसके बारे में, यह जो बीच का पूरा बीस साल का जो अंतराल है उसमें न लिखने का या चुपके से लिखते रहने का क्या कारण है ? इस बात को सोचना चाहिए । उस वक्त सन् साठ के बाद के कहानीकारों की जब घर में अपने लोगों से ही लड़ाई हुई तो वे अन्तर्मुखी

हो गये । इतिहास के जिस दर्पण को सामने रख कर जो वास्तविकताएं थीं, उन वास्तविकताओं को अपनी रचनाओं में रखकर सन् साठ के बाद के कहानीकारों ने ढालना शुरू किया । वह वास्तविकता क्या थी ? निर्देशक विचारधारा का निरूपक विचारधारा का एक लेखक को गढ़ने और रूप देने, उसको समृद्ध करने वाली, उसके लेखन को सम्पन्न बनाने वाली, गाइड लाइन विचारधारा का लगभग अभाव था । यद्यपि पूरी तरह नहीं रहा, लेकिन था अवश्य ।

ऐसा नहीं कि सन् साठ में हम लोग कम्यूनिस्ट पार्टी में नहीं थे । यानी मैं भी सन् साठ में झोला लेकर कलकत्ता में ट्रेड यूनियन का काम करता था। यह नहीं कि मैं नहीं था, लेकिन वहां पर कोई विचारधारा नहीं थी । वहां पर विधानचन्द्र राय की सरकार थी । फिर कांग्रेस की सरकार बनी । बाद में कांग्रेस सरकार ने नक्सलाइटों और उसके कार्यकर्ताओं का सन् 1967-68 ई० में किस तरह से बूचर किया, वह भी सी०पी० एम० के कार्यकर्ताओं का नक्सलाइटों के नाम पर बूचर किया । उस वक्त एक बुद्धिजीवी और सेंसटिव किस्म के संवेदनशील लेखक का अन्तर्मुखी हो जाना, अपने ही घर में लड़ाई से एक नए किस्म की यातना और दु:खवाद का पैदा होना, आदि के परिणामस्वरूप कहानियां पिता पर, पत्नी पर, भाई-भाई के अलगाव पर, पुत्र पर, बूढ़े लोगों पर, प्रेम एवं सेक्स पर लिखी गयीं । इस व्यक्तिवादिता का कारण ऐतिहासिक है और इस ऐतिहासिकता के विकास को जाने बिना हिन्दी कहानी के विकास को नहीं समझा जा सकता है । इस प्रकार सन् साठ के बाद के सारे कहानीकारों को हटाकर ज्ञानरंजन को हटाकर, काशीनाथ सिंह को हटा कर, दूधनाथ सिंह को हटाकर, रवीन्द्र कालिया को हटाकर, गिरिराज किशोर को हटाकर, महेन्द्र भल्ला को हटाकर, हिन्दी कहानी का इतिहास नहीं लिखा जा सकता है ; बीच में एक ऐसी घाटी आ जायेगी जिसे कूद कर आप सन् सत्तर और पचहत्तर की कहानियों पर नहीं पहुंच सकते । इस व्यक्तिवादिता का चाहे मेरी कहानियों में कारण हो, चाहे दूसरे की ही कहानियों में कारण हो, वह ऐतिहासिक कारण है ! जिसको हम कहते हैं ऐतिहासिक मोहभंग, आजादी से मोहभंग, आजादी के मूल्यों से मोहभंग, जिसके लिए फैज अहमद फैज ने सन् 1947 में ही कह

दिया था --

ये दाग़-दाग़ उज़ाला ये शब गुज़ीदा सहर
वह इंतजार था जिसका यह वह सहर तो नहीं
ये वह सहर तो नहीं जिसकी आरज़ू लेकर
चले थे यार कि मिल जायेगी कहीं न कहीं ।

आजादी पर जो उनकी नज़्म है, उस आदमी ने उसे सन् 1947 में ही देख लिया था ; कि यह वह सहर नहीं है, यह वह सुबह नहीं है ; जबकि वात्स्यायन जी की कविता `प्रतीक` में छपी और उसमें उन्होंने कहा --

हम आज अपने देश को,
आलोक मंजूषा समर्पित कर रहे ।

यहां ध्यान देने लायक है कि दोनों की मानसिक बुनावट में कितना फर्क है । वात्स्यायन आजादी को एक मूल्य मान रहे हैं, उसको आलोक मंजूषा समर्पित करने की बात करते हैं ; परन्तु फैज उसको दाग़-दाग़ उजाला करार देते हैं, कि उसमें धब्बे हैं । अब आज डा० नामवर सिंह जब बी०एच०यू० में होने वाले भाषण का शीर्षक देते हैं तो `आधी सदी आधी आजादी` के नाम से, पर जब हम सन् साठ में कहते थे कि आजादी झूठी है तो हमें कहा जाता था कि ये सब `डिकेडेन्ट` अर्थात् पतनोन्मुख प्रवृत्ति के लोग हैं, ये सेक्स ओरियन्टेड लोग हैं, ये व्यक्तिवादी हैं । यह नहीं जानते कि इस पतनोन्मुखता का इस व्यक्तिवादिता का, इस फैंटेसी, इस प्रतीक का और इन सब का कारण क्या था ? ऐतिहासिक था वह कारण, आजादी से मोह भंग । हम पहले लोग थे जिन्होंने यह घोषित किया कि आजादी का नैतिक-बोध झूठा है ।

इस सिलसिले में एक और बात ध्यान में आयी । इस सम्बन्ध में मैं अपनी एक कहानी एक्सप्लेन करना चाहूंगा । वह कहानी है `कोरस` । `कोरस` कहानी की मुख्य विषयवस्तु यह है कि एक पूरा समूह है जो यह कह रहा है कि हमारे सामने समस्याएं हैं, एक इस तरह की काली छाया है जिसका हम पीछा कर रहे

हैं ; यह छाया क्या है ? यह काली छाया क्या है ? कि समस्याएं हैं, हमारे सामने इस देश के निर्माण की समस्याएं, इनफ्रास्ट्रक्चर खड़ा करने की समस्याएं हैं, पब्लिक सेक्टर खड़ा करने की समस्याएं हैं, और दुनिया भर की पंचवर्षीय योजनाएं बनाकर, इस देश को आर्थिक आधार पर मुक्त करने की समस्याएं हैं । और यह जो आर्थिक आधार पर हमारा कमजोर देश है, वह काली छाया है जिसका पीछा सारे लोग कर रहे हैं । उसमें दो हमारे जैसे बुद्धिजीवी भी हैं जो पीछे लगे हैं और जो यह जानते हैं कि ये सब ढिंढोरा पीटने वाले ढोंग रचने वाले, सारे के सारे भ्रष्ट अनैतिक और इतिहास में कालिमा से सम्पन्न लोग हैं ।

आज वह कहानी सार्थक है, जब उसकी विषय-वस्तु ने यह सिद्ध कर दिया है कि जिन लोगों को हमने काली छाया के पीछे लगने वाले झूठे लोग कहा था, जो कि हत्यारे थे, जो गांधी के विचारों की शव साधना करने के लिए तैयार थे कि जब वह आदमी नहीं मिलता जो एक लकुटिया लेकर चलता था । ठीक है जब वह नहीं है तो उसके विचारों के शव से काम चलायें । यानी गांधी के विचारों को तिलांजलि किसने दिया था, कांग्रेस ने, बंटवारे के तुरंत बाद गांधी ने कहा था कि कांग्रेस को तुरंत भंग कर दिया जाय । कांग्रेस को भंग नहीं किया गया और गांधी को कहा गया कि अब आप कांग्रेस के चवन्निया मेम्बर भी नहीं रहे और अब आप हट जाइए । इस पर गांधी नेकहा था कि अब ईश्वर को चाहिए कि वह मुझे उठा ले क्योंकि ये लोग अब मेरी बात नहीं सुन रहे हैं । यह जो उस कहानी की थीम है ; कि जिन्होंने आजादी को एक मूल्य बोध होने का, एक नैतिक प्रश्न होने का ढोंग रचा, ढिंढोरा पीटा, जो समस्याओं का हौआ खड़ा किया, दरअसल में जनता के सबसे बड़े शत्रु हैं ; वे एक्चुअली आत्म विस्मृति में हैं, वे एक इस तरह का काला इतिहास रच रहे हैं जो अंतत: हमारी जनता पर बहुत भारी पड़ेगा । इस बात को जानने वाले दो संवेदनशील व्यक्ति हैं । अन्तत: जब उनको लगता है कि वे हमारी पोल खोलेंगे तो लौट कर वे उन दोनों से मिल जाते हैं ।

कोरस माने एक तरह का सहगान होता है ; जनता के इन सफेद-पोश शोषकों का कहना है कि इस वक्त एक तरफ से हल्ला मचाओ कि हमारे सामने यह समस्या है, और वो समस्या है, वे हल्ला मचाते हैं । यह कहानी साठ के बाद की आजादी से मोहभंग और आजादी को नैतिक प्रश्न मानकर उसके कर्णधारों के खिलाफ लिखी गयी फैंटेसी शैली की एक कहानी है, जो लोगों की समझ में नहीं आती ।

० आज की कहानियों में व्यवस्था के प्रति विरोध का गुस्सा भरा हुआ है, परन्तु समाज को आगे का रास्ता दिखाने में आज का कहानीकार असमर्थ है, क्या ऐसा करने में उन पर आदर्शवादिता का आरोप लगने का डर है ?

नहीं, बिलकुल नहीं । कहानीकार का या किसी भी लेखक का यह काम नहीं होता कि वह समाज को रास्ता दिखाये, यह एकदम गलत मान है, जो साहित्य है, जो कहानियां हैं, वह पाठक को हमारे समाज के संवेदनशील वर्ग को, लोगों को, उनकी चेतना की धार को तेज करके समस्याओं की जटिलता को समझने में मदद करता है, और निर्णय उनको लेना होता है, कहानीकार या कवि निर्णय अपनी तरफ से लादता नहीं । वह समाज को इस तरह से रास्ता नहीं दिखाता कि कहानी में इस तरह से लिख दे या दिखा दे, बल्कि वह आपकी चेतना की, सोच की विचार की धार को जैसे शान पर चढ़ा कर थोड़ा तेज कर देता है ; जिसमें आप स्वयं यह निर्णय ले कि आप क्या कर सकते हैं । जैसे गोदान उपन्यास के अंत में प्रेमचन्द ने होरी की मृत्यु दिखा दी, और समाज के लिए कोई भी रास्ता नहीं दिखाया है, यह भी नहीं दिखाया कि पांच बीघे का काश्तकार जो अपनी ज़मीन खो बैठता है तो वह क्या करे । अब प्रेमचन्द से या किसी भी कहानीकार से यह मांग करना कि वह रास्ता दिखाए कि ऐसी स्थिति में एक व्यक्ति क्या करे, यह गलत बात है ; बल्कि

पाठक यह खुद सोचेगा कि इस तरह की कर्जखोरी की समस्या में जो वह पड़ा हुआ है, परिणामस्वरूप उसका यह हश्र हुआ तो इस स्थिति में उसे महाजनी कर्ज से हर तरह से बचना चाहिए । यह कहने की बात नहीं, इससे अपने आप आपके विचारों पर शान चढ़ गयी, इसलिए कि कितनी बड़ी दुर्घटना हो गयी । इस दुर्घटना से बचने के लिए स्वयं पाठक को निर्णय लेना चाहिए । अत: कोई भी कहानीकार या कलाकार समाज को रास्ता नहीं दिखाता, बल्कि उसके विचारों की धार को तेज करता है, उसकी चेतना को सम्पन्न बनाता है । अगर कलाकार वही काम करता है तो वह ठीक राह पर है । अगर वे पाठक की चेतना को सम्पन्न भी नहीं बना रहे हैं तो उनकी कहानियां खराब हैं ।

० आपकी कहानियों का अंत एक नए तरीके से होता है, ऐसा क्यों ? पाठक को ऐसा लगता है कि अभी जैसे कहानी को और आगे बढ़ना था।

इसके बारे में मैं कुछ नहीं कह सकता, कहानी का अंत पहले से सोचा हुआ नहीं होता, अक्सर कभी कभी बीच में लिखते लिखते कहानी का अंत हो जाता है । कभी एकदम अंतिम क्षणों में आ जाता है, कभी-कभी दो-दो अंत एक साथ रहे हैं और काफी दिनों तक यह निर्णय लेने में कठिनाई होती है कि इन दोनों में कौन सा अधिक प्रभावशाली रहेगा । लेकिन किसी कहानी का अंत आकस्मिक तरीके से नहीं होता ; यह उसके भीतर की मांग और प्रकृति के अनुसार होता है ; कहानी और आगे बढ़े यदि ऐसा पाठक को लगता है, तो हो सकता है लगे, पर मुझे तो ऐसा नहीं लगता । कुछ चीजें उसमें ऐसी होती हैं जिन्हें अनकही ही समझ लेना चाहिए ।

० जैसा कि आपने कथाओं में बताया था कि - वह कहानी या कहानीकार महान होते हैं, जो अपनी रचनाओं के माध्यम से उत्तर देते हैं, परन्तु उनसे भी महान वे कृतियां या रचनाकार होते हैं, जो अपनी रचना के माध्यम से प्रश्न खड़ा करते हैं। तो क्या हम यही मानें कि आप की कहानियां समाज के सामने प्रश्न खड़ा करती हैं ?

उत्तर तो किसी कलाकार को देना नहीं चाहिए। प्रेमचन्द ने जहां-जहां उत्तर दिया, समाधान किया, या निर्देशित किया है, वहां-वहां रचनाएं कमजोर पड़ गयीं, जैसे कि `प्रेमाश्रम`। जब भी वे वर्ग समन्वय की वकालत करने लगते हैं तो वे कमजोर दिखाई पड़ते हैं, लेकिन `गोदान` का अंत कमजोर नहीं है। पर मैं यह कहना चाहता हूं कि वह मेरा कथन नहीं था, वह तो ब्रेस्ट --- महोदय ने कहा था।

निश्चय ही यदि एक लेखक अपनी रचनाओं से सवाल खड़े करता है तो वह इसका मतलब कि वृहत समस्याओं को लेकर वह अपनी तरफ से पाठकों पर कुछ थोपता नहीं है, बल्कि अपने पाठकों पर, समाज पर, समाज के संवेदनशील वर्ग, उन लोगों पर जिनके लिए वह सोचता है, या जिन तक वह पहुंचना चाहता है, उसकी बौद्धिक क्षमता पर वह पूरी तरह विश्वास करता है। इसलिए वह सवाल खड़ा करता है और कहता है कि इसका उत्तर खोजने का प्रयास करो, क्योंकि मेरा यह काम नहीं है, और मैं भी तुम्हीं में से एक हूं, अपनी बौद्धिक उच्चता को लेखक अगर स्थापित करता है तो वह किस तरह स्थापित करता है, वह उत्तर निर्देशित करता है या उत्तर नहीं देता है। यदि वह उत्तर नहीं देता है तो वह भी अपने पाठकों और श्रोताओं के साथ एकमएक है, और लेखक इसलिए उस प्रश्न को छोड़ता है कि इसका समाधान लोग ढूंढें।

वह उत्तर जानता है कि इसका उत्तर यह नहीं हो सकता, क्योंकि समाज एक प्रक्रिया के अन्तर्गत स्थापित होता है, एक वर्तमानिकता में होता है, भविष्य

की ओर बढ़ता हुआ, अतीत को छोड़ता हुआ ; उस वर्तमानिकता में कोई जरूरी नहीं कि आप जिस करवट चाहें, उसी करवट ऊंट बैठ जाए, आप जैसे चाहें समाज उसी की ओर जाये, यह भी हो सकता है कि इतिहास उसे दूसरी ओर भी ले जा सकता है, और वह कभी-कभी उलट दिशा भी हो सकती है, आपकी सोच से अलग भी हो सकती है। परन्तु वह दिशा वही हो सकती है जो हमारे समाज के अधिकतम लोगों की इच्छाएं, उसके विपरीत समाज परिवर्तित और विकसित नहीं होता, अगर होता है तो लोग उलट देते हैं। इसलिए समाज किसी एक व्यक्ति की इच्छा से आगे या पीछे नहीं जाता, अगर कोई आदमी उसे ले भी जाता है तो जनता उसे उलट देती है, अनजाने ही उलट देती है, बहुत परिश्रम नहीं करना पड़ता जानकर भी उलट देती है। ऐसी स्थिति में किसी भी लेखक को अपनी किसी भी कलाकृति में प्रश्नों के समाधान या समाज को निर्देशित करने की इच्छा छोड़ देनी चाहिए। कोई भी बड़ा लेखक ऐसा नहीं करता, तोलस्ताय भी नहीं करते, गोर्की भी नहीं करते, स्लोखोव भी नहीं करते, कोई भी बड़ा लेखक या कथाकार नहीं करता। तोलस्ताय अपने उपन्यास 'पुनरुत्थान' का अंत किस प्रकार करते हैं, उसका पात्र मस्लाकोव सुबह उठता है तो उसको लगता है कि आज से मैं अपना नया जीवन शुरू करता हूं। अब तुम्हारे हिसाब से तोलस्ताय को यह लिखना चाहिए कि नख्लाकोव का नया जीवन कैसा रहा ; क्योंकि पाठक यह जानना चाहता है। लेकिन तोलस्ताय लिखते नहीं, यह छोड़ देते हैं कि अब आप जानिए, आप देखिए कि इतना भुगतने के बाद नख्लाकोव का नया जीवन कैसा होगा। इस लिए कहानी में या किसी कलाकृति में सब कुछ नहीं कहा जाता, पाठकों पर यह भरोसा होना चाहिए कि बाकी चीजों को वह ग्रहण करे।

0 आज की कहानियों में स्त्री-पुरुष-सम्बन्धों के नए आयाम किस ओर बढ़ रहे हैं ? इस सम्बन्ध में आपका क्या विचार है, खास कर अपनी कहानी `बिस्तर` के परिप्रेक्ष्य में ।

भाई ! मेरी यह दूसरी या तीसरी कहानी है `बिस्तर` । इसीलिए इसके सन्दर्भ में मैं ज्यादा कुछ नहीं कह सकता । कारण यह है कि यह कहानी मैंने कलकत्ते से लिख कर भेजा, मैं कलकत्ते से नौकरी छोड़ कर इलाहाबाद चला आया, यहां आने के बाद मोहन राकेश ने उसको पुरस्कृत किया, और उसको सारिका में छापा ।

उस कहानी में एक वातावरण पति के द्वारा बनाया जाता है । वह वातावरण दरअसल कहानीकार द्वारा रचा गया । अगर मैं आज वह कहानी लिखता तो उसमें एक पति को इतना निरीह और इतना मुक्त नहीं दिखाता, कि वह अपनी पत्नी की ज़िद पर उसको और साथ में बच्चे को भी सौंप आता तत्पश्चात् घर में आकर उसकी यादों में जीता । इतना मुक्त हमारा समाज नहीं है, ऐसा नहीं कि दूसरों की बीवियां दूसरे नहीं ले जाते, लेकिन इतनी सहमति हमारे समाज में नहीं । इसलिए स्त्री-पुरुष-सम्बन्धों की मुक्तता के रूप में उस की व्याख्या नहीं की जा सकती है । वह कहानी काफी कुछ बनावटी है । मेरे विचार से जब वह कहानी लिखी गयी सन् 1960 या 62 का समय था ।

बाकी स्त्री-पुरुषों के सम्बन्ध में जो है, जिस तरह से हमारे समाज में विकसित हो रहे हैं, उस तरह से हमारे कहानीकारों के कहानियों में भी एक प्रतिबिम्ब है, बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव है और ऐसा प्रदर्शन भी बहुत कुछ है, जिसे प्रेमचंद भोंडापन कहते थे, वह इन कहानियों में नहीं है, बल्कि पश्चिम से आने वाली फेमनिज्म की धारणा है, स्त्रीवाद की धारणा है, उसके तहत नारी मुक्ति को लेकर बहुत सारी कहानियां लिखी जा रही हैं । लेकिन जिसमें स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों का वैसा चित्रण है, ऐसी कहानियां बहुत विश्वसनीय नहीं लगतीं, वे एक फार्मूलाबद्ध हैं, और फार्मूलाबद्ध कोई भी रचना कभी अच्छी नहीं होती ।

000

परिशिष्ट

(क) आलोच्य कहानी संग्रह

1. दूधनाथ सिंह - `सपाट चेहरे वाला आदमी`, 1967 ई0, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद
2. ,, ,, - `सुखान्त` , 1971 ई0, ,, ,, ,,
3. ,, ,, - `भाई का शोक गीत`, 1992 ई0, ,, ,,
4. ,, ,, - `प्रेम कथा का अंत न कोई ` 1992 ई0,, ,,

(ख) सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. इन्द्रनाथ मदान (सं0)-`हिन्दी कहानी : पहचान और परख`, 1975 ई0, लिपि प्रकाशन, दिल्ली
2. इन्द्रनाथ मदान (सं0)-`हिन्दी कहानी अपनी ज़बानी`, 1968 ई0, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
3. गार्ज्ञ चार्ल्स रोडर मल -`हिन्दी कहानी अ-लगाव का दर्शन`, 1982 ई0, अक्षर प्रकाशन प्रा0 लि0, नई दिल्ली
4. डॉ0 ऊषा चौहान -`नई कहानी के कहानीकारों की आलोचनात्मक दृष्टि`, 1990 ई0, हिमाचल पुस्तक भण्डार, दिल्ली
5. डॉ0 के. एम. मालती -`साठोत्तर हिन्दी कहानी`, 1991 ई0, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद
6. डॉ0 गंगाप्रसाद विमल -`समकालीन कहानी का रचना विधान`, 1967 ई0, सुषमा पुस्तकालय, दिल्ली

7. डॉ० चन्द्रभान रावत - डा० रामकुमार खण्डेलवाल - `हिन्दी कहानी : फिलहाल`, 1980 ई०, राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली

8. डॉ० नरेन्द्र मोहन -`समकालीन कहानी की पहचान`, 1989 ई०, प्रवीण प्रकाशन, दिल्ली

9. डॉ० रामदरश मिश्र -`आज का हिन्दी साहित्य : संवेदना और दृष्टि`, 1975 ई०, अभिनव प्रकाशन, दिल्ली

10. डॉ० साधना शाह - `नई कहानी में आधुनिकता बोध`, पुस्तक संस्थान, कानपुर, 1978 ई०

11. देवी शंकर अवस्थी -`नई कहानी : संदर्भ और प्रकृति`, 1961 ई० अदार प्रकाशन, दिल्ली

12. नेमिचन्द जैन - `जनान्तिक`, 1981 ई०, संभावना प्रकाशन, हापुड़

13. नामवर सिंह - `कहानी : नई कहानी, 1966 ई०, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद

14. पुष्पपाल सिंह - `समकालीन कहानी सोच और समझ`, 1966 ई० आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली

15. बटरोही - `कहानी रचना प्रक्रिया और स्वरूप`, 1973 ई०, अदार प्रकाशन प्रा० लि०, दिल्ली

16. राजेन्द्र यादव -`कहानी : स्वरूप और संवेदना`, 1977 ई०, नैशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

17. विनय - `समकालीन कहानी : समान्तर कहानी`, 1977 ई०, द मैकमिलन कम्पनी आफ इण्डिया लि०, दिल्ली

18. संतबख्श सिंह - `नई कहानी : कथ्य और शिल्प`, 1973 ई०, अभिनव भारती, इलाहाबाद

19. संतबख्श सिंह - `नई कहानी नये प्रश्न`, 1981 ई०, साहित्यालोक, कानपुर

20. सुदर्शन नारंग (सं0) -`श्रेष्ठ फैंटेसी कहानियां`, 1980 ई0, शीष्पिक प्रकाशन, हापुड़

21. सुदर्शन नारंग (सं0) -`श्रेष्ठ सचेतन कहानियां`, 1978 ई0 शारदा प्रकाशन, दिल्ली

22. सुरेश सिन्हा -`नई कहानी की मूल संवेदना`, 1966 ई0 भारतीय ग्रन्थ निकेतन, दिल्ली

(ग) पत्रिकाएं

1. `लहर` 1964 अंक 11, 1967 अंक 3, 1968 अंक 8,9 1970-72 अंक 9, 1974-75 अंक 11, 12

2. `कहानी` 1969 अंक 1, अंक 3, 1970 अंक 5

3. `सारिका` मार्च 1962 अंक 3, जनवरी 1972, दिसम्बर 1973 दिसम्बर 1974, जुलाई 1986, नवम्बर 1987

4. `जनसत्ता सबरंग` अगस्त 1995

5. `कथा` अक्टूबर 1992 अंक 7

6. `नई कहानियां` जनवरी 1967, दिसम्बर 1968 अंक 8

7. `नई कहानी` अप्रैल 1962 अंक 12

8. `समास` 1994 अंक 3

000